UNIVERSAL
LIBRARY

OU_186216

UNIVERSAL
LIBRARY

OUP—552—7-7-66—10,000

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H428/S53H Accession No. H181

Author शास्त्री, ह.

Title आधुनिक हिन्दी-रचना

This book should be returned on or before the date last marked below.

आधुनिक हिन्दी-रचना

निबन्ध, पत्र, कहानी, सार, विस्तार,
अंग्रेजी हिन्दी अनुवाद, वाद-
विवाद और वक्तृता



लेखक
दयाराम शास्त्री
एम. ए., प्रभाकर, ओ. टी.



प्रकाशक
शारदा मन्दिर
नई सड़क :: देहली

प्रथम बार] १९५० [मूल्य ३।)

प्राप्ति स्थान

शारदा मन्दिर
नई सड़क, देहली।

दयाल बुक डिपो
११ हार्डिङ्ग रोड, नई देहली।

CHECKED 1956

Checked 1965

सर्वाधिकार लेखक के आधीन

Checked 1969

मुद्रक—
न्यू इण्डिया प्रेस, कनाट सर्कस, नई दिल्ली।

कुछ बहुमूल्य सम्मतियां :—

: १ :

"मैंने श्री शास्त्री दयाराम जी एम० ए० की 'आधुनिक हिन्दी-रचना' को अनेक स्थलों से पढ़कर देखा। इसकी परीक्षा सम्बन्धी उपयोगिता के पारखी तो शिक्षा-विभाग के विशेषज्ञ पण्डित ही हो सकते हैं, परन्तु जहां तक हिन्दी विद्यार्थियों के व्यवहार-ज्ञान का सम्बन्ध है, मैं समझता हूँ, यह पुस्तक अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगी। आधुनिकतम ढंग के सब प्रकार के *पत्र, सार* (Precis) आदि के लेखन की विधि और उनके विविध उदाहरण देकर हिन्दी-छात्रों को इनमें निपुणता प्राप्त कराने का भरसक प्रयास किया गया है। *'वाद-विवाद'* (Debates) और *वक्तृता*(Speeches) जैसी भाषण-शक्ति का विकास करने वाली उपयोगी कलाओं का इसमें प्रथम बार ही विवरण देखकर मैं कह सकता हूँ कि हिन्दी के परीक्षार्थी विद्यार्थियों के अतिरिक्त और लोगों के लिए भी यह पुस्तक उपादेय है।

डा० यशवन्तसिंह परमार
एम०ए०, एल-एल०बी०, पी०एच०डी०
सदस्य—'भारत संसद्।'

: २ :

"मैंने श्री दयाराम जी शास्त्री एम०ए० की लिखी पुस्तक *'आधुनिक हिन्दी-रचना'* को पढ़ा। व्युत्पन्न तथा अनुभवी लेखक का निबन्ध-विषयों का चयन विवेकपूर्ण और सामयिक है।

विद्यार्थियों की योग्यता और आवश्यकता को दृष्टि में रखते हुए निबन्ध सम्बन्धी खण्ड को—१ 'पूर्वावस्था और २ 'उत्तरावस्था' इन दो विभागों में बांटा है, जिससे छोटी और बड़ी सभी श्रेणियों और परीक्षाओं के विद्यार्थी लाभ उठा सकें। विषयों की मात्रा और सामग्री पर्याप्त और गवेषणापूर्ण है। शैली मौलिक और साहित्यिक है। 'पत्र-खण्ड' में भी, सामान्य विविध पत्र-श्रेणियों के अतिरिक्त, ऐतिहासिक घोषणा, पद की शपथ-ग्रहण करना और संदेश व बधाई भेजने आदि का समावेश करके इस रचना को नवीनतम और उपयोगी बनाने का प्रशस्त उद्योग किया है। हिन्दी-रचना की अन्य पुस्तकें जहां निबन्ध और पत्र-रचना के उपरान्त ही 'इतिशम्' कर दिया करती हैं, वहां इसमें कहानी लेखन, सार-लेखन, विस्तार-लेखन, वाद-विवाद और वक्तृता जैसी विद्यार्थियों के लिए परम आवश्यक बातों को भी समुचित स्थान मिला है। इस लिए यह मेरी दृढ़ धारणा है कि यह पुस्तक स्कूल, कालिज और हिन्दी परीक्षाओं के सभी विद्यार्थियों को, जिनके अधिकतम हित को दृष्टि में रखकर इसकी रचना की गई है, अवश्य ही अभीष्ट लाभ पहुँचाएगी। हिन्दी में ऐसी सुन्दर और उपयोगी रचना में सफलता प्राप्त करने के लिए लेखक हमारी बधाई और प्रोत्साहन का पात्र है।"

हरिश्चन्द्र एम०ए०,बी० टी०
प्रिंसिपल
डी० ए० वी० हायर सैकण्डरी स्कूल,
नई दिल्ली।

आमुख

'हिन्दी-रचना' पर पहिले से ही पर्याप्त रचनाओं के सुप्राप्य होने पर भी एक और रचना-रचने की धुन इसलिए सवार हुई कि वे अच्छी होने पर भी *आधुनिकतम* और *सर्वाङ्गपूर्ण* नहीं हैं। उनमें से बहुत सी तो इतनी पहिले लिखी गई हैं कि उनमें सामयिक समस्याओं का स्वभावतः अभाव ही है। शेष अत्यन्त साहित्यिक और पारिभाषिक हो गई हैं। मैट्रिक, हायर सैकण्डरी, रत्न, भूषण, आदि से प्रारम्भ करके बी० ए०, एम० ए०, हिन्दी प्रभाकर तथा साहित्यरत्न आदि सभी हिन्दी की परीक्षाओं के प्रश्नपत्रों में सामान्य, सामयिक, पारिभाषिक और साहित्यिक सभी प्रकार के विषयों पर निबन्ध या पत्र पूछे जाते हैं। अब या तो विद्यार्थी सभी प्रणालियों के विषयों पर पृथक् २ रचनाएं खरीदकर पढ़े, या एकाङ्गी रचना से ही काम चलाए। हिन्दी के परीक्षार्थी सभी छात्रों की इस साझी समस्या को सुलझाने के लिए ही यह आधुनिकतम विविध रचनाओं से भरी "आधुनिक-हिन्दी-रचना" पुस्तक प्रस्तुत करने का साहस कर रहा हूँ। परीक्षा में सफलता प्राप्ति के अतिरिक्त इसका उद्देश्य :—

(१) विद्यार्थी को विचारशील सफल लेखक,
(२) व्यवहार कुशल सभ्य नागरिक, और
(३) प्रभावशाली वक्ता बनाना है।

इसीलिए इस पुस्तक के प्रथम तीन खण्डों में लेखक की

लेखन-कला और *व्यवहार ज्ञान* को विकसित करने के लिए विविध *निबन्ध, पत्र, कहानी, सार* आदि रचनाओं और 'चतुर्थ खण्ड' में '*भाषण-शक्ति*' को विकसित करने के लिए '*वाद-विवाद*' और *वक्तृताओं* के ढंग और उदाहरण दिए गए हैं। यदि इस पुस्तक से उक्त उद्देश्य की पूर्ति हो पाएगी तो मैं अपना वर्ष भर का परिश्रम सफल समझूंगा। परीक्षार्थियों को तो भिन्न २ रचनाओं में परीक्षोपयोगी सामग्री ही ओतप्रोत मिलेगी। इसलिए उन्हें निराश होने की आवश्यकता नहीं।

भिन्न २ पत्र-पत्रिकाओं, तथा उन २ पुस्तकों के लेखकों और इसके लिखने और प्रकाशित करने आदि कामों में सहायक मित्र मण्डली का हार्दिक आभार न मानना भी मेरे लिए कृतघ्नता होगी।

त्रुटियों से बचने का शक्तिभर प्रयत्न करने पर भी उनका सर्वथा अभाव असम्भव ही है, इस लिए विद्वान् अध्यापकों से नम्र निवेदन है कि वे उनसे मुझे अवगत कराने का अनुग्रह करें ताकि आगामी संस्करण में उन्हें दूर किया जा सके।

निवेदक—
दयाराम

विषय-सूची

		पृष्ठ
निबन्ध-रचना	...	छ—ड

प्रथम खण्ड (पूर्वावस्था)

१. फुटबॉल मैच	...	१
२. अग्नि-दुर्घटना	...	५
३. आँखों देखा सरकस का तमाशा	...	८
४ विद्यार्थी-जीवन	...	१२
५. देशाटन	...	१७
६. होली	...	२२
७. दीपावली-पर्व	...	२८
८. स्त्री-शिक्षा	...	३५
९. बिजली के चमत्कार	...	४१
१०. चित्रपट	...	४५
११. समाचार-पत्र	...	५०
१२. रेडियो	...	५४
१३. हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ कवि—तुलसीदास	...	५८
१४. झांसी की रानी (लक्ष्मीबाई)	...	६५
१५. विश्व-कवि—रवीन्द्रनाथ ठाकुर	...	७१
१६. बेकारी	...	७७
१७. सैनिक-शिक्षा	...	८४

१८. समय का सदुपयोग ... ९१
१९. महर्षि दयानन्द सरस्वती ... ९८
२०. व्यायाम ... १०४
२१. स्वास्थ्य ... १०९
२२. सत्य ... ११६
२३. अनुशासन ... १२१
२४. 'अध्यवसाय' या 'पुनः करो उद्योग' ... १२७
२५. देहली ... १३१
२६. वर्षा ऋतु ... १३६

(उत्तरावस्था)

२७. ऋतुराज-वसन्त ... १४३
२८. हमारी स्वाधीनता का प्रतीक—ध्वज ... १४८
२९. महात्मा गांधी ... १५१
३०. पं० जवाहर लाल नेहरू ... १५८
३१. राष्ट्र-पति डा० राजेन्द्र प्रसाद ... १६५
३२. भारतमाता की आत्म-कहानी ... १७०
३३. ग्रामोद्धार ... १८०
३४. ब्रह्मचर्य ... १८५
३५. शिक्षा ... १९०
३६. भारतीय समाज में नारी ... १९७
३७. धन और ईमानदारी ... २०३
३८. राष्ट्र और राष्ट्रीयता ... २०९
३९. विज्ञान और मनुष्य-सेवा ... २१५
४०. भक्ति ... २२५
४१. भारतीय कृषि और कृषक ... २३०

४२. "कर्मप्रधान विश्व रचि राखा" ... २३८
४३. नागरिकता ... २४४
४४. संयुक्त राष्ट्र-संघ ... २४८
४५. संगठन ... २५३
४६. छायावाद ... २५४
४७. रहस्यवाद ... २६१
४८. सूर सूर तुलसी शशी ... २६६
४९. हिन्दी भाषा का विकास ... २७१
५०. जनतन्त्र शासन ... २७६
५१. जीवन-मरण संघर्ष ... २८२
५२. हमारी आज की समस्याएं ... २८९
५३. गणराज्य-स्थापना-समारोह ... २९५
५४. तृतीय महायुद्ध और विश्व-शान्ति ... ३०१
५५. ललित कलाएं ... ३०८

द्वितीय खण्ड

पत्र-लेखन ... ३१७

(निजी-पत्र)

१. गुरु का शिष्य के नाम पत्र—'स्वतन्त्र देश के छात्र का कर्तव्य' ... ३२७
२. पिता का पुत्र के नाम पत्र— "पूर्ण शिक्षा क्या है ?" ३३०
३. पुत्र की ओर से—(पिता के पत्र का उत्तर) ३३२
४. विदेशस्थ मित्र के नाम पत्र— 'भारत में प्रौढ़-शिक्षा योजना' ... ३३४
५. विवाहिता सखी का अपनी विवाहासन्न सहेली के नाम पत्र—"आदर्श गृहस्थ" पर ... ३३६

६. माता का पुत्री के नाम पत्र—"हिन्दू कोड बिल पर" ३३८
७. अपरिचित व्यक्ति को ... ३४२
(व्यावहारिक-पत्र)
८. पुस्तक विक्रेता के नाम—भूल सुधारने के लिए ३४३
पुस्तकें मंगाने के लिए ... ३४३
९. कपड़ा मंगाने के लिए पत्र ... ३४४
१०. मिट्टी के तेल के परमिट के लिए ... ३४५
११. पोस्टमास्टर को—मनीआर्डर लौटाने के लिए ३४५
१२. बैंक में हिसाब खोलने के लिए ... ३४६
१३. एक पोस्ट ऑफिस का हिसाब बदलवाने के लिए ३४७
१४. स्टेशन मास्टर को शिकायत ... ३४७
(प्रार्थना-पत्र)
१५. अध्यापक के स्थान के लिए प्रार्थनापत्र ... ३४९
१६. नौकरी से त्यागपत्र ... ३५१
१७. प्रिंसिपल को 'फुटबॉल खेलने का' ... ३५२
१८. याचना-पत्र ३५२
(सम्पादक के नाम खुले पत्र)
१९. रेलगाड़ियों में चौथा दर्जा न खोला जाय ३५३
२०. कम किराया : अधिक बसें ... ३५४
(निमन्त्रण-पत्र)
२१. पुत्री के विवाह पर ... ३५६
२२. पुत्र के विवाह पर ... ३५७
२३. जलपान का निमन्त्रण-पत्र ... ३५८
२४. विधेयात्मक उत्तर ... ३५८
२५. निषेधात्मक उत्तर ... ३५८

२६. बरफ़ के कारखाने को देखने की आज्ञा के लिए ३५६
२७. उक्त पत्र का उत्तर ... ३५६

(विविध-पत्र)

२८. शोक प्रस्ताव ... ३६०
२६. समाचार-पत्र लगवाने के लिए पत्र ... ३६०
३०. पढ़ाई का शुल्क क्षमा करवाने के लिए प्रार्थनापत्र ३६१
३१. अभिनन्दन-पत्र ... ३६२
३२. सदाचार-पत्र ... ३६४
३३. ऋण लेकर रसीद देना ... ३६५
३४. किसी वस्तु के बेचने की रसीद लिखना... ३६५
३५. किसी उत्तरदायित्वपूर्ण पद की शपथ लेना ३६६
३६. घोषणा निकालना ... ३६६
३७. बधाई सन्देश भेजना ... ३६७

तृतीय खण्ड

१. कहानी-लेखन ... ३७०-३८३
२. संक्षेप या सार-लेखन (Precis-writing) ३८३-३६७
३. विस्तार (Expansion) ... ३६८-४०३
४. अनुवाद-लेखन ... ४०३-४१५

चतुर्थ खण्ड

१. वाद-विवाद (Debates)
(१) भूमिका आदि ... ४१८-४२४
(२) 'मद्य-निषेध' पर वाद-विवाद ... ४२४-४२८
(३) हिन्दू-कोड बिल पर ... ४२८-४३२
(४) अभ्यास ... ४३२-४३३

२. वक्तृता (Speech)
१. भूमिका आदि ... ४३३
२. राष्ट्रभाषा (हिन्दी) और राष्ट्रलिपि (देवनागरी) पर भाषण ... ४३५
३. "अतीत की ओर दृष्टि" पर ... ४४२
४. 'भारतीय जनतन्त्र के विधान' पर ४४२
५. अभ्यास ... ४४७

— —

निबन्ध-रचना

१. आवश्यकता

मानव-मन विचारों तथा भावों का अथाह स्रोत है। जिस प्रकार एक प्रबल पार्वत्य झरना एक ही स्थान में नहीं रुक सकता, वरन् अनवरत अखण्ड धारा में प्रवाहित होता चलता है, इसी प्रकार मानव-मानस-स्रोत भी अपने विचार या भाव सलिल को अपने तक ही सीमित नहीं रख सकता। उनका प्रबल प्रवाह दूसरों के हृदय-उदधि में पहुँच कर ही विश्राम पाता है। अतः मनुष्य में भाव-व्यञ्जन करने की प्रवृत्ति स्वाभाविक है। जब वह वाणी द्वारा अपने भावों या विचारों का प्रकाशन करता है, उसे हम 'भाषण', 'वक्तृता' या 'व्याख्यान' कहते हैं। उन्नत-विचार 'वक्तृता' द्वारा जनसमुदाय तक केवल एक ही समय में पहुँचाये जा सकते हैं। जनता सदा और सभी जगह लोकोत्तर प्रतिभाशाली, अनुभवी विद्वान् के भाषणों से लाभ नहीं उठा सकती। इसके लिये मूल्यवान विचारों के संरक्षण या रिकार्ड करने की आवश्यकता पड़ती है। इन्हीं क्रमबद्ध लिखित विचारों के रिकार्ड का नाम 'निबन्ध' या 'प्रस्ताव' होता है।

२. विचार सामग्री

विचार-सामग्री को संचित करने के लिए निम्नलिखित तीन बातों की आवश्यकता पड़ती है।

(क) *विस्तृत अध्ययन*—परीक्षा या जीवन में कभी भी किसी विषय-विशेष पर अपने विचार प्रगट करने की आवश्यकता पड़ सकती है। इसलिए यथाशक्ति सभी विषयों के सम्बन्ध की पुस्तकों या पत्र-पत्रिकाओं का अध्ययन करते रहना चाहिये। अध्ययन करते समय विशेष २ बातों या गद्य पद्य के मनोहर उद्धरणों को नोट करना बहुत उपयोगी होता है। न जाने उनमें से कब किस की आवश्यकता आ पड़े। पुस्तकों में ही हमें महापुरुषों के दुर्लभ विचार संगृहीत मिलते हैं, इसलिये बिना अध्ययन के अच्छा निबन्ध-लेखक या विचारक होना कठिन है। सामयिक घटनाओं, समस्याओं तथा विचारों के लिए पत्र-पत्रिकाओं का अध्ययन हितकर होता है।

(ख) *सूक्ष्मदर्शिता* :—पुस्तकीय विचारों या अनुभवों के अतिरिक्त लेखक के मस्तिष्क के कोष में कुछ निजी अनुभव या मौलिक विचार भी होने चाहिएं। मौलिक विचारों और अनुभवों के लिए यह आवश्यक है कि लेखक जो कुछ देखे उसे अपनी आंखों से देखे और ध्यान से उसके अंगप्रत्यंग का बोध प्राप्त करे। किसी प्राकृतिक दृश्य, मेले, उत्सव, यात्रा करने या घटना विशेष को देखने के उपरान्त यदि उसके सम्बन्ध में हम उसका सजीव चित्र लिखकर खींचने का अभ्यास डालें, तो हमारी सूक्ष्मदर्शिता की शक्ति पर्याप्त रूप से विकसित हो सकती है।

(ग) *बहुश्रुतता* :—बहुश्रुत व्यक्ति बिना अध्ययन के भी सुबोध बन सकता है। कबीर, अकबर, शिवाजी आदि इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। इसलिए विद्यार्थी को बड़े बूढ़ों तथा विद्वानों के कथा वार्ता या भाषण आदि अवश्य सुनते रहना चाहिए।

३. प्रस्ताव के अङ्ग

(अ) निबन्ध का आरम्भ :—यह आवश्यक नहीं कि प्रत्येक निबन्ध लम्बी चौड़ी प्रस्तावना से ही आरम्भ किया जाय। बहुधा हम सहसा ही विषय छेड़ देते हैं। तथापि कई विषय ऐसे होते हैं जिनके सम्बन्ध में भूमिका या प्रस्तावना के रूप में बिना कुछ लिखे निबन्ध फीका और पंगु सा जान पड़ता है।

साधारणतया निबन्ध का आरम्भ निम्नलिखित बातों में से विषय के प्रकार के अनुसार, किसी एक से किया जाता है—

(क) किसी विषय से संगत सार्वभौम तथ्य के आख्यान द्वारा, किसी देश, जाति या व्यक्ति आदि की उन्नति या अवनति पर लिखते हुए हम निम्नलिखित वाक्यों से आरम्भ कर सकते हैं—

परिवर्तन प्रकृति का नियम है। सब दिन एक समान कभी नहीं होते। सुख दुःख, आशा, निराशा, उन्नति, अवनति आदि द्वन्द्वों का चक्र तो दिन और रात के चक्र के समान चलता ही रहता है।"

(ख) किसी विषय से सम्बद्ध पद्य या गद्य के उद्धरण द्वारा :—'कर्म' निबन्ध का प्रारम्भ सन्त तुलसी दास की "कर्म प्रधान विश्व रचि राखा, जो जस करहि सो तस फल चाखा।" से किया जा सकता है।

(ग) विषय से सम्बद्ध संक्षिप्त कहानी या महापुरुष की जीवन घटना से :—जैसे 'उद्यम' के लिए 'ब्रूसो और मकड़ी' की कहानी।

(घ) शीर्षक के शब्दों की व्युत्पत्ति या परिभाषा आदि से—जैसे 'सत्य' निबन्ध का आरम्भ—'जिस विषय को जैसे जानना उसे वैसे कह देना सत्य होता है'।'

(ब) निबन्ध का मध्य या उपपत्ति:—यह निबन्ध का मुख्य भाग होता है। इसमें अपने विषय के प्रतिपादन, स्पष्टीकरण, व्याख्या व पुष्टि के लिए लेखक उदाहरण, दृष्टान्त, प्रमाण, युक्ति तथा तर्क वितर्क का आश्रय लेता है। इसकी सफलता लेखक की बहुज्ञता, विस्तृत-अध्ययन, अनुभव तथा योग्यता पर निर्भर होती है।

(स) उपसंहार :—निबन्ध की प्रस्तावना की अपेक्षा उसकी समाप्ति या उपसंहार अधिक आकर्षक होना चाहिए। आरम्भ के समान उपसंहार के भी कोई नियत नियम नहीं होते, तथापि इस सम्बन्ध में निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना आवश्यक है—

(क) पूर्णता :—अन्तिम वाक्य या वाक्यों के पढ़ने मात्र से विदित होना चाहिये कि लेखक ने निबन्ध-योजना या ढांचे के अनुसार ही यहां निबन्ध-समाप्ति की है नकि अकस्मात् ही समयाभाव आदि के कारण उसे रुकना पड़ा है।

(ख) मध्य-भाग की संक्षिप्ततम कहानी :—इसमें मध्यभाग कीयुक्तियों व तर्क वितर्क आदियों को अत्यन्त संक्षेप के साथ उपसंहृत किया जाता है।

(ग) कोई गद्य या पद्य का उद्धरण :—कभी कभी आरम्भ के समान निबन्ध की समाप्ति भी किसी पद्य या गद्य के उद्धरण द्वारा की जाती हैं। जैसे 'महात्मा-गान्धी' शार्षक निबन्ध की।

४. निबन्ध की श्रेणियां

यद्यपि प्रत्येक विषय किसी न किसी अंश में दूसरे से भिन्नता रखता है, तथापि कुछ विषयों में समानताएं अधिक

और भेद कम होता है। ऐसे निबन्ध समान श्रेणी के होने के कारण समान ही शैली से लिखे जाएंगे।

निबन्धों की निम्नलिखित तीन श्रेणियां होती हैं :—

(१) *वर्णनात्मक* (Descriptive)—यह निबन्धों की वर्णन प्रधान श्रेणी है। इसके निम्नलिखित विभाग होते हैं : —

(क) प्राणिविषयक :—भिन्न २ देश के मनुष्य जलचर, स्थलचर, नभचर आदि सभी प्राणी इसी श्रेणी के अन्तर्गत हैं।

(ख) अप्राणिविषयक :—ग्राम, नगर, भवन, धातु, प्राकृतिक दृश्य, मेला, उत्सव, पुस्तक, खेल, ऋतु, वृक्ष आदि इसके अन्तर्गत हैं।

(२) *विवरणात्मक* (Narrative) :—इस श्रेणी में वे निबन्ध आते हैं जिनमें घटनाओं का क्रमबद्ध विवरण देना होता है। इसके निम्नलिखित विभाग होते हैं :—

(क) इतिहास विषयक (ख) जीवन चरित्र (ग) सामयिक घटना (घ) संस्था (ङ) आविष्कार, शिल्प आदि (च) कथा, कहानी (छ) यात्रा।

(३) *विचारात्मक* (Reflective) :—इस श्रेणी के निबन्ध विचार-प्रधान होते हैं। इसके निम्नलिखित विभाग होते हैं—

(क) अमूर्त विषय—अध्यवसाय, शिक्षा, मित्रता आदि

(ख) आलोचनात्मक—'सूर सूर तुलसी शशी'

(ग) कहावत, लोकोक्ति आदि।

(घ) साहित्यिक—रहस्यवाद, छायावाद आदि।

५. ध्यान देने योग्य कुछ अन्य बातें

(१) *विचार-तालिका और ढांचा*—'निबन्ध', जैसा कि इसके नाम से ही विदित है, वह रचना होती है जो क्रम, शृङ्खला या

नियम में बंधी हो। माला रूपी निबन्ध के भिन्न विचार ही पुष्प हैं। जैसे माला के धागे में फूलों को रंग, रूप आदि के अनुसार क्रम विशेष से पिरो देने में ही मालाकार की चतुराई देखी जाती है, ठीक ऐसे ही भिन्न २ मुख्य तथा गौण विचारों को तार्किक क्रम से अपनी रचना में यथास्थान रखने में निबन्ध-लेखक की निपुणता झलकती है।

इस लिये निबन्ध आरम्भ करने से पूर्व उसकी रूपरेखा या ढांचा बना लेना चाहिये। इस ढांचे को ही हम विचार-तालिका के नाम से पुकारते है। ढाचा विचारों को जगाने में बड़ा सहायक सिद्ध होता है।

(२) सारा निबन्ध भिन्न २ विचारों के अनुसार कई अनुच्छेदों (Paras) में विभाजित होना चाहिये।

(३) विचारों या शब्दों की पुनरावृत्ति से बचना चाहिये।

(४) निबन्ध लिखते समय उपदेशक के समान उपदेश देने नहीं छिड़ पड़ना चाहिये। 'तुम' आदि मध्यम पुरुष के स्थान में 'हम को चाहिये', आदि उत्तम पुरुष का प्रयोग करना चाहिये।

(५) वाक्य छोटे, स्पष्ट और सारगर्भित होने चाहियें।

(६) जहां जिस शब्द की आवश्यकता हो, वहाँ वही प्रयुक्त होना चाहिये। अलंकारों, वाग्धारा तथा लोकोक्तियों का प्रयोग स्वाभाविक रूप से होना चाहिये।

(७) विचारों या भावों के उतार चढ़ाव के साथ भाषा-शैली में परिवर्तन आवश्यक होता है। वही शैली स्वाभाविक और प्रशस्त मानी जाती है।

(८) वर्णानुपूर्वी (Spelling) की अशुद्धियां नहीं आनी चाहिएं।

(९) लेख सुन्दर होना चाहिये।

(१०) निबन्ध का परिमाण विषय के प्रकार और समय पर निर्भर होता है। छोटा निबन्ध अपेक्षाकृत अधिक सारगर्भित होना चाहिये।

आधुनिक हिन्दी रचना

प्रथम खण्ड

[पूर्वावस्था]

फुटबाल मैच

विचार-तालिका:—

१. प्रस्तावना—टीमों का परिचय।
२. खेल का पूर्वार्ध।
३. खेल का उत्तरार्ध।
४. निर्णय।
५. प्रतिक्रिया।

हाकी तथा फुटबाल के मैच शेष क्रिकेट, वौलीबाल, टेनिस आदि के मैचों की अपेक्षा अधिक उत्तेजनाजनक होते हैं। इनके खिलाड़ी विशेष रूप से हृष्ट पुष्ट, स्फूर्तिमान् और तीव्र होते हैं। दर्शकों को इन्हें खेलते देख कर युद्ध भूमि का-सा आभास होता है।

कुछ दिन पूर्व मैंने विलिङ्डन पेवेलियन, देहली में रेलवे और मिलिटरी टीम के बीच एक मैच देखा। यह 'पुलिस शील्ड' टूर्नामैन्ट का सेमि-फाइनल मैच था। दोनों दल अपनी अपनी खेल-कुशलता के लिए विख्यात थे ही, इसलिए दर्शक बड़ी उत्सुकता से खेल के आरम्भ होने की प्रतीक्षा कर रहे थे।

दोनों दलों का अच्छा जोड़ था इसलिए हमारी आशा यही थी कि खेल कौतुकपूर्ण रहेगा।

ठीक साढ़े पांच बजे खेल आरम्भ हुआ। मैदान दर्शकों से खचाखच भरा था। बहुत से लोग वृक्षों की शाखाओं पर सवार थे तो कई तने से साइकलें लगाए उनकी गद्दियों पर से खड़े होकर दर्शनीय दृश्य देख रहे थे। फौजियों के पास लाल और रेलवे वालों के पास सुनहरी हरी बर्दियां थीं। एक पुलिस का अधिकारी रेफरी था।

एक दृढ़ फौजी 'फोर्वर्ड' के पाद प्रहार से खेल का श्रीगणेश हुआ। रेलवे दल ने डट कर प्रतिरोध किया। सैनिक खिलाड़ियों का पलड़ा कुछ भारी दृष्टिगोचर होने लगा। रेलवे वालों की गोल की ओर ही गेंद और खिलाड़ियों का झुकाव रहने लगा। इतने में रेलवे का सुविख्यात खिलाड़ी राममोहन गेंद के पास पहुँचा। सब की दृष्टि गेंद और राममोहन के पांव की ओर थी। कैसी निपुणता से वह जादूगर सैनिक खिलाड़ियों के बीच से बच बचाकर गेंद को बाहर निकाल लाया, यह देखते ही बनता था। तीन २ और चार २ विरोधी दल के खिलाड़ी उससे आन भिड़ते, परन्तु वह हलकी हलकी इधर-उधर की पांव की ठोकरों से गेंद को उनसे छुड़ाता रहा। अभी फुटबाल भीड़ से बाहर आई ही थी कि राममोहन ने गोपालकृष्ण को सौंप दी। गोपालकृष्ण ने एक जोर की ठोकर मारी और गेंद विद्युद्वेग से सैनिकों के गोल के बीच से निकला चाहती ही थी, कि ध्यानसिंह गोलची ने ऐसा सिर का प्रहार किया कि गेंद मैदान के केन्द्र में आई। कल्याणसिंह नामक प्रसिद्ध सैनिक खिलाड़ी उस पर बाज के समान झपटा और ऐसी जोर की बूट की

ठोकर मारी कि फुटबाल उड़ती हुई गोल के सीधे ऊपर से बाहर निकली। रेफरी ने 'औट' की सीटी दी।

रेलवे गोलची ने हलके से प्रहार से गेंद को फिर राममोहन को सौंप दिया। उसने अपनी उसी चूहे बिल्ली वाली चाल से निकाल कर फुटबाल को अपने फौरवर्ड-ध्यानसिंह के पास पहुँचा दिया। ध्यानसिंह गेंद के साथ सीधा गोल में जा पहुँचा, परन्तु सोमेश्वर गोलची की चतुराई से गोल होने से बाल-बाल बच गया। गोलची की निपुणता को दर्शकों की ताड़ियों की तड़तड़ाहट ध्वनि ने पुष्ट किया और 'बहुत खूब' की तुमुल ध्वनि ने मुक्तकण्ठ से सराहा।

रेफरी ने सीटी बजाई और खिलाड़ियों ने सहसा खेलना बन्द किया। आधा समय हो चुका था। खिलाड़ी अपने अपने तम्बुओं में जल-पान के लिए प्रविष्ट हुए। दर्शकों की भीड़ विविध प्रकार की आलोचना करती इधर-उधर छिटकने लगी। चाट और सेवियों की छाबड़ियों के चारों ओर खूब चहल-पहल रहने लगी।

सीटी बजी। दोनों दल नए उत्साह से क्षेत्र में फिर उतर आए। दर्शक भी पूर्ववत् चारों ओर मैदान को घेर कर बैठ गए। खिलाड़ियों ने 'पार्श्व' बदले और खेल प्रारम्भ हुआ।

गेंद के केन्द्र में आते ही रेलवे फौरवर्ड ने उसे राममोहन के पास पहुँचा दिया। दर्शक उत्सुकता से गोल की प्रतीक्षा कर ही रहे थे कि राममोहन ने ऐसी ठोकर मारी कि गेंद सैनिक गोलची के ऊंचे उठे हाथों की अंगुलियों और गोल के पोल को छूती हुई उस ओर जा पहुँची। 'शाबास', "वाह वाह !!" की करतलध्वनि-मिश्रित गूंज से आकाश गूंज उठा। गोल स्पष्ट

था, परन्तु रेफरी ने निर्णय दिया कि गेंद पोल के बाहर से निकली। दर्शक विरोध करते रहे पर कौन सुनता था ?

अभी राममोहन गेंद को सैनिक भीड़ में से निकालने में व्यग्र ही था कि एक सैनिक ने लंगड़ी दी। राममोहन धड़ाम से भूमि पर गिर पड़ा। दर्शकों ने शेम ! शेम !! के नारे लगाए। रेफरी को विवश होकर नियम भंग करने वाले सैनिक को अयोग्य घोषित करना पड़ा।

रेलवे वालों का योग्यतम खिलाड़ी घायल होगया था। अब स्वभावतः इस दल और उनके पक्षपाती दर्शकों के मन टूट से गए थे। दूसरे दल का भी एक खिलाड़ी जाता रहा था, परन्तु उन्होंने उसके स्थान उसी जैसा और ले लिया। जिसका उन्हें भय था वह घायल हो ही चुका था।

अब सैनिक दल दुगने उत्साह से खेलने लगा। रेलवे वाले हतोत्साह थे ही। सुमेरसिंह नामक सैनिक खिलाड़ी ने इस बार विशेष चमत्कार प्रदर्शित किया। वह सिर के बल गेंद को सीधा रेलवे गोल के पास स्थित कल्याणसिंह को सौंप देता। अब कुछ काल तक रेलवे पार्श्व दबा रहा, परन्तु प्रतिरोध फिर भी दृढ़ था। रेलवे वाले सैनिक खिलाड़ियों की भीषण खेल-शैली से अन्दर अन्दर कुछ भयभीत से दृष्टिगोचर हो रहे थे। सुमेरसिंह और कल्याणसिंह ने स्थान परिवर्तन किया। सुमेरसिंह ने घड़ी की ओर देखा और उतावला हो गया : समय पूरा होने के लिये ७ मिनट शेष थे। रेलवे वाले इधर-उधर के गेंद के प्रहारों से गोल बचाया चाहते थे। परन्तु कल्याणसिंह ने सुमेरसिंह के पास गेंद पहुँचाई ही थी कि सुमेरसिंह ने ऐसा टेढ़ा सिर का प्रहार लगाया कि गोलची भांप

ही न सका और गेंद गोल के बीचोंबीच पार हो गई। तालियां पिटी। सुमेरसिंह की पीठ थपकी गई। दर्शकों में से कुछ प्रसन्न और कुछ उदास हुए। मेरे मुंह से यही निकला 'मन के हारे हार है, मन के जीते जीत।'

अभी खिलाड़ी गोल के उपरान्त दो तीन ही मिनट खेलने पाये थे कि समाप्ति की सीटी बजी।

सैनिक दल प्रसन्न और रेलवे वाले उदास दृष्टिगोचर होते थे। कोई कोई रेफरी को पक्षपाती ठहरा रहा था तो कोई उसके न्याय की पुष्टि कर रहा था। राममोहन और सुमेरसिंह की निपुणता की सब भूरि-भूरि प्रशंसा कर रहे थे। खेल समाप्त होते ही सबने अपने घर की राह ली।

अग्नि-दुर्घटना

विचार-तालिका—

१. भूमिका।

२. भागती भीड़।

३. कपड़े की दुकान में आग।

४. दारुण व करुण का दृश्य।

५. आग बुझाने का प्रयत्न।

६. हानि।

७. आग का कारण।

सायं ६ बजे का समय था। वार्षिक परीक्षा निकट होने के कारण, मैं पढ़ाई में व्यग्र था। अकस्मात् ही कानों में बचाओ! बचाओ! की कातर ध्वनि पड़ी। मैं सहसा उठकर खिड़की से

बाहर झांकने लगा, देखा बच्चों और युवकों की टोलियों की टोलियां घण्टाघर की ओर सपाटे से भागी जा रही हैं। 'क्या बात है भई ?' मैंने पूछा। पर वहां कौन उत्तर देता ? सिवाय भागने के किसी को और पड़ी ही क्या थी ?

विवश मैं नीचे उतरा एक भागते हुए अधेड़ व्यक्ति से पूछा, "क्या बात है भाई साहब ?" "आग ! घण्टाघर के पास वाली दुकानों में !!" कहता हुआ वह तो उधर ही निकला। मैंने उधर ही को दृष्टिपात किया तो आकाश लाल लाल दिखाई दिया। मैं भी भीड़ के साथ ही हो लिया।

वहां पहुँचा तो दृश्य ही बड़ा दारुण दिखाई दिया। आग की लपटें आकाश छू रही थीं। दर्शकों की भीड़ लगी थी। कुछ व्यक्ति बाल्टियों से आग बुझाने का प्रयास कर रहे थे। दर्शकों में से बच्चे और मनचले युवक तो इसे मनोविनोद का अद्भुत साधन समझ कर भान्ति भान्ति की बातें कर रहे थे। मेरे पास ही खड़े दो युवक कह रहे थे "भई लाला जी का क्या जला, यह तो गरीबों की गाढ़ी कमाई का पैसा खिसकाने का परिणाम है।" कई विचार-शील व्यक्ति आर्थिक हानि के अनुमान से ही भौंचक्के थे। पड़ोसी दुकानदारों ने अपनी दुकानें बन्द कर दी थीं, और पानी की भरी बालटियां ले लेकर सब अपनी दुकान के सामने खड़े थे।

कुछ महिलाएं व बच्चे फूट फूट कर रो रहे थे। एक महिला तो बाल नोच नोचकर आग की लपटों की ओर दौड़ी जा रही थी। "मेरा बच्चा ! मेरा बच्चा !!" की करुण पुकार ही उसके मुख से निकलती सुनाई देती थी। कुछ उत्साही युवक पिछली ओर से चढ़ कर कमरे के अन्दर सोए छोटे बच्चे को ऊपर की

मञ्जिल से निकाल कर नीचे लाये। लोगों में उसकी खूब वाह-वाही हुई। बच्चे को देखते ही उस रोती हुई महिला ने उसे छाती से लगा लिया। बुढ़िया ने बच्चे के रक्षक को खूब आशीश दिए।

अभी ऊपर की मञ्जिल के द्वार से अन्दर लपटें प्रवेश कर ही रही थीं कि 'टन् टन् टन् टन्' करता हुआ फायर ब्रिगेड आ पहुँचा। आग बुझाने वाले इञ्जनों के पहुँचते ही बच्चे और मनचले युवकों को कौतूहल-तृप्ति का दूसरा साधन मिल गया। विचारशील व्यक्तियों के भी प्राणों में प्राण आए। पड़ोसी दुकानदारों को अपनी दुकानों की रक्षा की आशा बंधी।

कुछ ही क्षण में काली बर्दी पहने हुए फायर ब्रिगेड के व्यक्ति आग में घुस पड़े। कुछ नीचे ही खड़े हो कर रब्बड़ की मोटी और लम्बी नली से आग की लपटों पर पानी की ऊर्ध्ववर्षी मोटी मोटी धाराएं छोड़ने लगे। कुछ मकान में घुस कर अन्दर का सामान पीछे को निकालने में व्यस्त थे।

१०-१५ मिनटों में आग की भीषणता कुछ कम हुई। थोड़ी ही देरी में दो आग बुझाने वाले इञ्जन और आ पहुँचे। उनसे उतरते ही १०-१५ व्यक्ति जलती हुई दो दुकानों के दोनों ओर के मकानों की छतों पर जा पहुँचे। वहां से लम्बी रबड़ की नलियों से आग पर जल-धाराएं छोड़ीं। आग उत्तरोत्तर शांत होती गई।

आग बुझने पर विदित हुआ कि ला० गैन्दामल की कपड़े की दुकान में एक गज भी कपड़ा शेष न बचा। चारों ओर राख के ढेर ही दृष्टिगोचर हो रहे थे। बूढ़े गैन्दामल की तो हिचकियां ही बंधने लगीं। उनका युवा पुत्र और कुछ इष्ट मित्र उन्हें ढाढ़स बंधा रहे थे।

आग शान्त होते ही जिज्ञासु दर्शकों के मुखों से "आग कैसे लगी ? आग कैसे लगी ?" की ध्वनि आने लगी। लाला जी के नौकर ने बताया, लाला जी हुक्का पी रहे थे और हुक्का पीते पीते ही नींद में खर्राटें लेने लगे। हुक्के की नली के तनाव से चिलम कपड़े के थान पर जा गिरी। लाला जी नींद लेते रहे, आग सुलगती रही। थोड़ी देरी में पड़ोसियों को कपड़े के जलने की गन्ध आई तो लाला को जगाया, परन्तु साधारण प्रयत्न से आग वश में न हो सकी।

एक आने के तमाखू ने चार लाख की पूंजी को भस्मसात् कर दिया और क्षण भर के सुख की अभिलाषा ने लाला जी को आजीवन चिन्ता सागर में डाल दिया।

— — —

आँखों देखा सरकस का तमाशा

कुछ वर्ष पूर्व दशहरे के अवकाश के दिनों एक पूना की सर्कस कम्पनी देहली आई। अनेक मास पूर्व से ही इस सम्बन्ध में रंग बिरंगे विज्ञापन बाजारों में लगाए गये थे। एक दिन मेरे मित्र सूरतसिंह जी ने आकर रात के तमाशे के दो टिकट दिखाए और साथ चलने का आग्रह किया। अवकाश था ही इसलिए बिना किसी 'ननु, नच' के मैं चला गया।

सर्कस का स्थान लाल किले के बाहर का मैदान था। ज्यों ज्यों हम इसके निकट पहुँचते जाते थे, त्यों-त्यों सरकस के बैण्ड बाजे की ध्वनि कानों में जोर से पड़ती जाती। ढोल नगारे आदि की ऊँची ध्वनि से आकाश उथला जा रहा था। सरकस के

गोल बृहत् वितान के चारों ओर पर्दे लगे थे। एक ओर विशाल प्रवेशद्वार बना था जो बिजली के रंगीन लट्टुओं से देदीप्यमान हो रहा था। प्रविष्ट होते ही देखा कि वितान दर्शकों से खचाखच भरा है। कुछ भूमि पर बिछी दरियों, कुछ एक ओर पंक्तियों में रक्खी कुर्सियों और शेष गोलाकार गेलरियों में बैठे हुए थे। बीच बीच में पञ्जरस्थ भूखे केसरी की गर्जना और हाथी की चिंघाड़ की भयंकर ध्वनि कानों के पर्दों को फाड़सी रही थी। माताओं की गोद के शिशु चौंक कर रोने लगते थे। कोमलांगी ललनाओं के हृदय भी भय से विदीर्ण हुआ चाहते थे।

आठ बजते ही प्रदर्शन का श्रीगणेश हुआ। सर्वप्रथम गठीले अंगों वाले कुछ युवक आए। उन्होंने गोल लोहे के गर्जों पर अपने अद्भुत व्यायाम दिखाए। उतने में आंखों ने एक अद्भुत चमत्कार देखा जिस पर अपना ही मन भी विश्वास नहीं कर सकता था। सातों के सात खिलाड़ी टांगें बिलकुल खड़ी किए हाथ के बल लोहे की सीकों पर दौड़ने लगे। अभी करतज ध्वनि की तड़तड़ाहट शान्त भी न होने पाई थी कि वे एक-एक करके ऊपर को उछल-उछल कर केवल टांगों के ही सहारे लोह शलाकाओं से नीचे लटक गए। "भई, वाह! वह देखो, एक युवती किस प्रकार सिर पर पानी का मटका थामे लोहे की तार पर से हाथ ऊपर उठाए जा रही है! इतना समतोल!!"

उतने में एक स्त्री लकड़ी के बोर्ड के पास खड़ी हो गई। एक भयानक आकार वाला व्यक्ति लगभग चार पाँच गजों की दूरी से तेज़ बर्छियां उस स्त्री के सिर को लक्ष्य बना फैंकने लगा। महिलादर्शकों ने तो भय और दया से आँखें ही बन्द कर लीं। भला इस करुणा जनक भयानक उग्र दृश्य को कोमलांगियों के

कोमल हृदय कब देखने की अनुमति दे सकते थे !! पर आश्चर्य की बात यह थी कि वे बर्छियां मुख से केवल आध इंच के अन्तर पर बोर्ड में गड़ती गईं। उस महिला का बाल भी बांका न हुआ। वाह वाह ! और करतल ध्वनि से सारा मण्डप गूंज उठा। सब यही कहते सुनाई दे रहे थे, "आह क्या ही हाथ की सफाई और चतुराई है ! अभ्यास से क्या कुछ नहीं हो सकता !!"

"तनिक उधर देखना वह लड़का अपने सिर पर सेव क्यों रखे हुए है ?" मैंने पूछा, "देखते जाइए अभी क्या कुछ होता है, सब कुछ आँखों के सामने ही आ जाएगा" मित्र ने उत्तर दिया। "उधर देखना कोने में धनुष पर बाण चढ़ाए वह धनुर्धारी क्या किया चाहता है ? लो सेव पर लक्ष्य बांधने लगा ! बालभर भी चूक क्या से क्या कर देगी ! "वाह ! वाह !! बहुत खूब !!!" की मिश्रित करतलध्वनि से गगन गूंज उठा। सेब बिंध गया पर लड़का ज्यों का त्यों पाषाणमूर्ति सा स्तब्ध खड़ा था।

उतने में विशाल द्वार से पांच घोड़े और प्रत्येक घोड़े की नंगी पीठ पर खड़ा हुआ एक सवार पण्डाल में प्रवेश करते हुए दृष्टिगोचर हुए। घोड़े खूब उछले कूदे पर निपुण अश्वारोही तनिक भी विचलित न हुए। यह लो, वह निराली वेषभूषा वाला नरपिशाच प्रविष्ट हुआ। हँसी से वृहत् वितान गूंज उठा। वह भी अन्य घुड़सवारों का अनुकरण करने लगा। विचारा घोड़े पर खड़ा भी न होने पाया था कि घोड़ा उछल पड़ा और सवार भूमि पर चारों अंग चित्त पड़ा। अब तो अधमरा सा दिखाई देने लगा। मारे हँसी के दर्शकों के पेट फटे जा रहे थे। आप विदूषक महाराज थे। यहाँ तो एक से बढ़कर दूसरा आश्चर्य

दिखाई देता है। उसी का घोड़ा उसके होंठ के पास मुँह ले जा कर अपने अधर को लपलपाता हुआ मुस्करा सा रहा है। अब दोनों उठ खड़े हुए। पशु भी विचित्र ही है। पहिले वाले घोड़ों ने सहसा चाल बदली। अब वे अपने पिछले खुरों पर ही चलने लगे। अश्वारोही अब भी नीचे नहीं गिरते मानो मोम से जीन के साथ जड़ से दिए हों।

ज़रा देखना 'हाथी' बाबू अपनी विशाल साइकल को चलाते हुए कैसे भले लग रहे हैं। सम्भवतः दफ़्तर से वापस आ रहे हैं। वाह भई बन्दरिया रानी तू भी खूब रही! तू तो मनचले हाथी के भी कन्धे पर जा विराजी!! वह जिधर जिधर संकेत करती है हाथी साइकल घुमाए ले जाता है।

अन्त में दो सिंहों के दर्शन हुए। एक शेर और एक शेरनी शेष उनके बच्चे। शेर बहुत सधा हुआ था। एक अद्भुत ही व्यक्ति उसके साथ था। वह जो कुछ कहता, सिंह वही करता। परन्तु इस प्रदर्शन से सिंह ऐसे सन्तुष्ट नहीं दीखते थे, जैसे चुलबली बन्दरिया रानी। नाक सिकोड़े क्रोध से शेरनी और बच्चे गुर्रा रहे थे, पर सिधाने वाले के हाथ की विद्युत् की छड़ी को देख कर कोपाग्नि अन्दर-अन्दर ही धधकती जा रही थी। शेर ने भी अपने दंष्ट्रा कराल मुख कुहर को जम्हाई लेने के लिए खोला। सिधाने वाला कुछ भयभीत सा हुआ। तनिक चाबुक घुमाया कि भयानक प्राणी पिञ्जरे में प्रविष्ट हुए। परन्तु शेरनी कुर्सी पर जा विराजी। उसकी क्रोध ज्वाला प्रचण्ड से प्रचण्डतर होती जा रही थी। अन्ततोंगत्वा वह भीषण ज्वाला रुक न सकी। शेरनी जोर से गर्जी! दर्शकों के भय के मारे प्राण निकले जा रहे थे। सिधाने वाला भूमि पर लेट गया, शेरनी झपटा ही चाहती थी कि दो पुरुष हाथ में

मशाल लिए घटना स्थल पर पहुँचे। शेरनी भयभीत हो पिंजरे में जा छिपी। सिधाने वाला उठा। मुख विवर्ण सा तो अवश्य हो गया, पर विशेष डरा हुआ न दीखता था। प्रतीत होता था कि ऐसी घटनाओं से ये लोग अभ्यस्त हो गए हैं।

यह सब कुछ रोमांचकारी दृश्य देख हृदय में एक विचार प्रादुर्भूत हुआ कि इस स्वार्थी मनुष्य ने अपने मस्तिष्क और बुद्धि के बल से अपने से अधिक बलवाले हिंसक प्राणियों को भी वश में कर अपनी स्वार्थ-सिद्धि का साधन बनाया है। इन स्वतन्त्रता प्रेमी प्राणियों की पराधीनता पर कभी करुणा भी जगती थी अन्यथा सम्पूर्ण खेल के अवसर पर तो हृदय में कौतुहल से गुदगुदी ही उठती रही। पता नहीं चला अढ़ाई तीन घण्टे कब व्यतीत हुए।

मैंनेजर ने आकर दर्शकों को धन्यवाद देकर खेल समाप्त किया। सचमुच वह सुखद समय और वह रोमांचकारी मनोविनोद आजीवन स्मरण रहेंगे।

विद्यार्थी-जीवन

विचार-तालिका:—

१. भूमिका—विद्यार्थी जीवन का महत्व।

२. विद्यार्थी का उद्देश्य—विद्योपार्जन तथा स्तुत्य स्वास्थ्य।

३. विद्यार्थी के गुण।

४. विद्यार्थी अवस्था के विनोद।

५. उपसंहार।

विद्यार्थी अवस्था जीवन भवन की नींव है। जिस भवन की नींव जितनी ही दृढ़ और सुचारु रूप से बनी होगी वह भवन

उतना ही अधिक भव्य, दृढ़ और स्थायी होगा। अतः जिसका विद्यार्थी-जीवन जितना ही अधिक सुन्दर रहा होगा उसका भावी जीवन उतना ही अधिक सफल होगा! सच तो यह है कि विद्यार्थी-अवस्था को सुन्दर बनाना जीवन भर सुख और शान्ति से रहना है। इसीलिए हमारे पूर्वज विद्यार्थी जीवन को सफल बनाने का भरसक प्रयास किया करते थे और इस जीवन में विलासिता, आलस्य आदि को त्याग कर तप और परिश्रम के साथ विद्योपार्जन करते थे। जिस अनुपात से विद्यार्थी जीवन महत्त्वपूर्ण है उसी अनुपात से सफलता के लिए तप, परिश्रम और जागरूकता चाहता है।

विद्यार्थी शब्द दो शब्दों के संयोग से बना है 'विद्या' और 'अर्थी' अर्थात् विद्या की अभ्यर्थना या कामना करने वाला। 'विद्या' 'ज्ञान' को कहते हैं। ज्ञानोपार्जन ही मुख्यतया विद्यार्थी जीवन का उद्देश्य है। ज्ञान के द्वारा मस्तिष्क और व्यायाम तथा सात्त्विक भोजन द्वारा शरीर को विकसित तथा पुष्ट करने से ही विद्यार्थी पूर्ण मानव बनता है। इसलिए पूर्ण मानवता के लिए विद्या और शारीरिक बल का उपार्जन आवश्यक है। ये दोनों वस्तुएं जितनी ही अधिक आवश्यक तथा बहुमूल्य हैं उतनी ही अधिक दुर्लभ व दुष्कर हैं। इसलिए इनके संचय के लिए विद्यार्थी में निम्नलिखित गुणों का होना आवश्यक है :—

(१) विद्यार्थी में परिश्रम का गुण अत्यावश्यक है। जो विद्यार्थी परिश्रमी नहीं होते वे कभी भी विद्या नहीं पढ़ सकते। विद्यार्थी सदा जागरूक होना चाहिए। आलस्य उससे कोसों दूर रहना चाहिए। क्षण-क्षण के सदुपयोग का उसे ध्यान रखना परम आवश्यक है क्योंकि विद्या का उपार्जन

क्षण-क्षण के उपयोग से ही हो सकता है। जैसा कि नीतिकार लिखते हैं—

क्षणशः कणशश्चैव विद्यामर्थं च सञ्चयेत्।
क्षणत्यागे कुतो विद्या कणत्यागे कुतो धनम्॥

अर्थात् प्रत्येक क्षण का सदुपयोग कर विद्या का, और कण-कण का ध्यान रख कर धन का संचय करना चाहिए। तनिक भी समय की उपेक्षा से विद्या कहाँ, और कण-कण की उपेक्षा से धन कहाँ? क्षण की उपेक्षा न करने से यह अभिप्राय नहीं कि विद्यार्थी के समय-विभाग में खेल कूद व विद्यार्थी जनोचित मनोविनोद के लिए स्थान ही न हो। निरन्तर पढ़ते रहने से मस्तिष्क की धारणा-शक्ति क्षीण हो जाती है। इसलिए समय-विभाग बनाकर पढ़ना और खेलना दोनों विद्यार्थी के लिए आवश्यक हैं। पढ़ाई और खेल परस्पर विरोधी नहीं वरन् इनका अन्योन्याश्रय व सहायक का सम्बन्ध है। परन्तु जो समय पढ़ाई के लिए नियत किया गया है उसमें पढ़ाई न करना और खेलने के काल में खेल की उपेक्षा करना मस्तिष्क व शरीर के विकास के लिए घातक वस्तुएं हैं।

२. विद्यार्थी में दूसरा आवश्यक गुण आत्म-संयम का होना चाहिए। आत्म-संयम से अभिप्राय अपने मन और इन्द्रियों के वश में करने से है। जिस छात्र का मन चञ्चल है और इन्द्रियां विषयरत हैं उसका ध्यान पढ़ाई में लग ही नहीं सकता। जिस प्रकार शिकारी के हाथों के चलायमान होने से लक्ष्यवेध कठिन है, उसी प्रकार चञ्चल मन और असंयत इन्द्रियों के होते विद्या लाभ रूप लक्ष्यवेध कठिन नहीं वरन् असम्भव है। इस आत्म-संयम के रहस्य को भली-भान्ति हृदयङ्गम करते हुए ही

हमारे विचारशील पूर्व पुरुषाओं ने विद्याभ्यास के साथ तप और संयम प्रधान ब्रह्मचर्य के धारण करने की प्रणाली चलाई थी। कम से कम २५ वर्ष की अवस्था तक ब्रह्मचारी निज शरीर निर्माण व विद्योपार्जन के अतिरिक्त किसी प्रकार की विषय वासनाओं में नहीं उलझता था, परिणाम-स्वरूप स्नातक बनने के उपरान्त तब का छात्र अधिक विद्वान्, बलवान् विचारशील तथा मेधावी गृहस्थी बनता था। वह भयानकतम सेनानी और चतुरतम मन्त्री बनता था। उसका शरीर और मस्तिष्क पूर्ण सामञ्जस्य के साथ कार्य करते थे। आज के छात्र अनेक प्रकार के गुप्त व्यसनों में फंसकर डिग्री प्राप्त करने के पूर्व ही शारीरिक रूप से असमर्थ और मस्तिष्क से दुर्बल बन बैठते हैं। संसार-क्षेत्र में अवतीर्ण होकर वे जो भी कुछ पद ग्रहण करते हैं उसके प्रति शारीरिक या मस्तिष्क सम्बन्धी दुर्बलताओं के कारण पूर्ण न्याय नहीं कर पाते। सिनेमा, थियेटर और शतरंज में आज का छात्र अपना बहुमूल्य समय व्यतीत करता है और वहां से बुरे संस्कार लेकर अपने भावी जीवन भवन की नींव कमजोर बनाता है।

३. विद्यार्थी में जिज्ञासा वृत्ति का होना भी आवश्यक है। उसके मन में भिन्न २ विषयों के जानने, नई बातों को सीखने और नवीन आविष्कार करने की उग्र इच्छा होनी चाहिए। विश्वभर के वैज्ञानिक आविष्कारक, दार्शनिक गम्भीर विचार तथा अन्यान्य ज्ञान विद्या व्यसनियों की जिज्ञासावृत्ति का ही परिणाम है। बाह्य देशों के विद्यार्थियों में इस गुण की अधिकता पाई जाती है। वे ज्ञान के लिए पढ़ते हैं पेट-मात्र के लिए नहीं। भारत के छात्रों में नौकरी करने की इतनी उग्र लालसा होती है

कि वह अपना जीवन लक्ष्य ही उसे बना लेता है।

इन गुणों के अतिरिक्त विद्यार्थी में आज्ञाकारिता और मधुर-भाषण के गुण भी होने चाहिए। जो छात्र माता-पिता तथा गुरु के आज्ञाकारी नहीं होते वे विद्वान् नहीं बन सकते। मधुर-भाषण से विद्यार्थी अपने सहपाठियों तथा गुरुजनों का प्रीतिभाजन बनता है। मधुर-भाषण और आज्ञा-पालन ऐसे गुण हैं जिन्हें प्रत्येक विद्यार्थी धारण कर लाभ उठा सकता है। नीतिकार ने विद्यार्थी के अन्य गुण भी बताए हैं जिनका पालन प्रत्येक छात्र के लिए हितकर है—

काकचेष्टा वकध्यानं श्वाननिद्रा तथैव च।
अल्पहारी गृहत्यागी विद्यार्थी पञ्चलक्षणः॥

अर्थात् विद्यार्थी में कौए की सी चेष्टा, बगले की सी ध्यानमग्नता, कुत्ते की सी नींद, थोड़ा आहार, और गृहत्याग ये पाँच बातें होनी चाहिएं।

विद्यार्थी अवस्था में यद्यपि विद्यार्थी को अनेक प्रकार की साधना करनी पड़ती है और तप और नियमों के शिकञ्जे में कसना पड़ता है, तथापि विद्यार्थी-अवस्था के विनोद भी विविध हैं। गृहस्थी के समान विद्यार्थी को हानि लाभ की कोई चिन्ता नहीं होती। विविध प्रकार के देशी व विदेशी कबड्डी, फुटबाल, टैनिस, हाकी आदि खेलों में उसका मन रमता है और शरीर विकसित व पुष्ट होता है। अच्छे विद्यार्थियों के लिए परीक्षा में अच्छे अंकों से उत्तीर्ण होना युद्ध विजय से कम सुखद नहीं होता। स्वस्थ विनोदी साथियों के साथ रहन-सहन व वार्तालाप से उसे अपार हर्ष व अनुभव प्राप्त होता है। अनुभवी विद्या व वयोवृद्ध अध्यापकों का सम्पर्क भी महान सुखदायक और

होता है। ग्रीष्मावकाश, आदि में छात्र-मण्डलियाँ भ्रमणार्थ दूर२ तक जाती हैं। खेलों के साम्मुख्य भी विशेष मनोविनोद के साधन होते हैं। लाहौर, दिल्ली, कलकत्ता, इलाहाबाद आदि के छात्र नदियों में किश्तियों द्वारा खूब सैर करते है। विविध प्रकार की छात्र-सभाओं व परिषदों में भी संगीत, नाटक, वादविवाद आदि द्वारा छात्रों को पर्याप्त हर्ष व अनुभव होता है।

सारांश यह कि विद्यार्थी अवस्था एक अत्यन्त मूल्यवान आयु का भाग है। शारीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक तीनों प्रकार की उन्नति से ही विद्यार्थी सफल होता है। इसके लिए उसे पर्याप्त सतर्कता व सावधानी से कार्य करना पड़ता है। सफल विद्यार्थी ही सफल गृहस्थी, वानप्रस्थी व संन्यासी बन सकता है। इसलिए प्रत्येक छात्र को अपनी छात्रावस्था पूर्ण सावधानी से भली-भांति बितानी चाहिए।

देशाटन

विचार तालिका :—

१. भूमिका—मनुष्य का घूमने का स्वभाव।

२. लाभ—(१) देशोन्नति का साधन।

(२) शिक्षा का अंग।

(३) सांसारिक ज्ञान की वृद्धि का रुचिकर साधन।

(४) दृष्टिकोण को उदार बनाता है।

(५) मनोरंजन का साधन।

(६) रीति।

३. हानि

४. उपसंहार

"कहीं पर्वतों की छटा है निराली।
जहाँ वृक्ष के वृन्द छाये घने हैं॥
लगी एक से एक प्रत्येक डाली।
मनो पान्थ के हेतु तम्बू तने हैं॥"

मनुष्य स्वभावतः नवीनता और विविधता का प्रेमी है। यदि उसे प्रतिदिन एक ही प्रकार का भोजन और वस्त्र आदि मिलें तो वह उनसे ऊब जाता है। ठीक इसी प्रकार वह जिस स्थान में व वातारण में रह रहा है उसमें भी कुछ परिवर्तन चाहता है। इस इच्छा की पूर्ति के लिये वह देशविदेश का भ्रमण करता है। इसी का नाम देशाटन है।

देशाटन स्वदेशोन्नति का अत्युपयोगी साधन है। प्रत्येक समय में ऐसे पुरुष रहते रहे हैं जिन्होंने अपना अधिकांश समय देशाटन में लगाया और देश और जाति के हितार्थ नई महत्त्व-पूर्ण गवेषणाएँ कीं। ऐसे भ्रमणशील व्यक्तियों का इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान है। भारत के इतिहास में चीन के प्रसिद्ध यात्री ह्यूनसाङ्ग और यूनानी यात्री मेगस्थनीज़ का ऊँचा पद है। अंगरेज़ों को विशाल भारत का साम्राज्य ईस्ट इण्डिया कम्पनी के यात्रियों ने ही दिलाया। कोलम्बस ने अमेरिका जैसे महान् देशों का पता लगाया। फ्रांस, यूनान और स्पेन के भ्रमणशील यात्रियों ने भी अपने देश के लिये अनेक सुविधाएं विदेशों में निकालीं। पुराकाल में भारत के समुद्री यात्री देश-विदेशों में जाकर व्यापार करते रहे। भारत के पास अनेक उपनिवेश थे। परन्तु मध्य काल में अन्ध-परम्परा और रूढ़िवाद ने देश में डेरा डाल लिया और विदेशों में भ्रमण

अपवित्र और शास्त्र-निषिद्ध माना जाने लगा। परिणामस्वरूप लोगों में संकीर्णता और कूपमण्डूकता के भाव समाविष्ट हो गए और बाहरी विस्तृत संसार से भारत का सम्पर्क टूट गया। वर्तमान काल में धर्म के ठेकेदारों ने महात्मा गान्धी को शिक्षार्थ इङ्गलैंड जाने का निषेध कर दिया था। सौभाग्यवश अब यह संकीर्णता देश में नहीं है और यहाँ के विद्यार्थीगण तथा यात्री लोग देशविदेशों में स्वेच्छानुसार आ जा सकते हैं।

आजकल देशाटन ज्ञान और शिक्षा का अत्यावश्यक अंग समझा जाता है। पुस्तकों से सुलभ ज्ञान तब तक पूर्ण नहीं समझा जा सकता जब तक कि उसमें दूर देशों में भ्रमण के अनुभव न मिलें। एक पुस्तक के कीड़े के लिये ऐतिहासिक स्थानों का कोई महत्त्व नहीं, जब तक कि उन्हें अपनी आंखों से न देख ले। वह केवल उन ऐतिहासिक स्थानों के नाम मात्र ही जानता है। वह हल्दीघाटी का स्मरण केवल इस लिये ही करता है कि वहाँ महत्त्वपूर्ण युद्ध लड़ा गया था। देहली, यूनान और रोम को भी वह इसी लिये स्मरण करता है कि ये स्थान पहिले से ही ऐतिहासिक घटनाओं और खण्डहरों के केन्द्र रहे हैं, परन्तु यदि वह स्वयं इन नगरों का अवलोकन कर वहाँ के शताब्दियों के पुराने स्मारक देख ले, तो वह ज्ञान सजीव और रुचिकर ज्ञान होगा। यही दशा भौगोलिक ज्ञान की है। हिमालय, गंगा, स्विट्ज़रलैंण्ड, कृष्णसागर, ध्रुव आदि का भूगोल की पुस्तक से ज्ञान प्राप्त करना उनको देखने से उपलब्ध ज्ञान की अपेक्षा अत्यन्त हीन अरुचिकर और अस्थायी होता है।

विश्व में रहने वाली भिन्न २ जातियों, उनके रहन सहन, चाल ढाल, और रीति रिवाजों का ज्ञान भ्रमण से ही होता है।

एक राजनीतिज्ञ के लिये विदेशों का भ्रमण कर वहाँ के शासन-प्रबन्ध, युद्ध-कुशलता आदि का परिचय प्राप्त करना अत्यन्त उपयोगी होता है। पण्डित जवाहरलाल का विस्तृत भ्रमण होने के कारण ही वह सफल प्रधानमन्त्री और विशेष रूप से निपुण-तम विदेशमन्त्री बने। सुभाषचन्द्र बोस ने जर्मन, जापान आदि विदेशों का भ्रमण कर ही ब्रिटिश सेना को यहाँ से उन्मूलन करने के सफल प्रयास किये।

सफल व्यापारी के लिये तो भ्रमण अनिवार्य वस्तु है। जब तक वह विदेश में भ्रमण कर वहाँ के भाव ताव, उत्पाद्य वस्तु-जात, किसी वस्तु का अभाव या बाहुल्य, यातायात के साधन आदि का परिचय न प्राप्त करे तब तक व्यापार में उन्नति कठिन है।

विदेश भ्रमण से हमारा संकीर्ण दृष्टिकोण बिस्तृत, सहानु-भूतिपूर्ण और उदार बनता है। मध्यकाल में हम विदेशियों को पतित तथा गुणहीन म्लेच्छ ही समझते रहे, परन्तु जब यहाँ के छात्र और यात्री यूरोप आदि के भिन्न २ देशों और नगरों में गए और उनका उन्नत जीवनस्तर, परस्पर सहकारिता व सहयोग की भावना, देशभक्ति और ज्ञानपिपासा के सम्बन्ध में प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त किया तो हृदय में से घृणा के भाव लुप्त हो गए। उनकी अच्छाइयों की अपने देश में भूरि २ प्रशंसा की। परिणाम यह हुआ कि हमारा दृष्टिकोण ही बदल गया। इस प्रकार भिन्न २ जातियों में वर्षों का वैमनस्य उन जातियों के लोगों के परस्पर मिलने जुलने से दूर हो गया। इसी कारण प्रत्येक राष्ट्र के नेता व पुरुष दूसरे देशों में भ्रमण करते रहते हैं।

देश विदेशों का भ्रमण मनोरंजन का भी प्रमुख साधन है। समस्थलों में निवास करने वालों को पार्वत्य प्रदेशों के भ्रमण से

प्रकृति के विविध मनोहर दृश्य देखने को मिलेंगे। स्थलयात्रा से ऊबे हुए को जलयात्रा में नवीन ही आनन्द व विनोद प्राप्त होगा। नगर निवासी ग्रामों में घूमता हुआ नवीन ही जीवन का पृष्ठ खुला देखेगा। सारांश यह कि भ्रमणशील व्यक्ति को कृत्रिम और प्राकृतिक विविध दृश्य देखने को मिलते हैं जिनमें उसका ऐसा चित्त रम जाता है कि अपनी भी सुधबुध नहीं रहती। किसी कवि ने यात्री के आनन्द का वर्णन करते हुए लिखा है :—

कहीं पर्वतों से नदी बह रही हैं।
कहीं वाटिका में बनी स्वच्छ नहरें॥

× × ×

कहीं दौड़ते झाड़ियों बीच हरने।
लिये मोद से शावकों को भगे हैं॥
कहीं भूधरों से झरैं रम्य झरने।
अहा दृश्य कैसे अनूठे लगे हैं॥
कहीं खेत के खेत लहरा रहे हैं।
महामोद में हैं कृषिकार सारे॥
उन्हें देख कर मूँछ फहरा रहे हैं।
सदा घूमते काँध पर लट्ठ धारे॥

यह सब कुछ भ्रमणशील पान्थ देखता है और मन बहलाता है।

देशाटन में हंसमुख उदार सङ्गी साथी होना चाहिये। अकेले भ्रमण में पर्याप्त मनोविनोद नहीं हो सकता। प्रतिदिन के भ्रमण की दिन-चर्या डायरी में लिखने से अन्य लोग भी उससे लाभ उठा सकते हैं और कालान्तर में पथिक की निजी स्मृति को भी हरा करने में डायरी बड़ी उपयोगी सिद्ध होती है। जिस देश में

भ्रमण करना हो वहाँ के सम्बन्ध में गाइड या पथ-प्रदर्शक पुस्तकें पढ़ लेनी चाहियें। इससे रुचि और भी बढ़ती है। यात्री के खाने पीने की आवश्यक सामग्री साथ होनी चाहिये। नहीं तो रोग की आशंका रहती है!

निरुद्देश्य भ्रमण से लाभ के स्थान हानि होती है। व्यर्थ धन का व्यय होता है। उनके पारिवारिकजन धनाभाव से तरसते रहते हैं और वे अपने व्यसनों की पूर्ति करते हैं। बहुत से लोग परिवारों को छोड़ कर साधु बन कर विदेश भ्रमण करते है। यह अपने कर्तव्य से पतित होना है।

हमारे पूर्वजों ने तीर्थस्थान देशाटन की प्रथा को बनाए रखने के उद्देश्य से ही बनाए थे। इन तीर्थों से अच्छी शिक्षा प्राप्त होती थी परन्तु आजकल उनका वह स्वरूप नहीं रहा। अतः वहाँ जाकर यथेष्ट लाभ नहीं उठा पाते। आजकल यात्रा के विविध वैज्ञानिक साधन सुलभ हैं। जल, स्थल या व्योम जहाँ से चाहो जा सकते हैं। इसलिये जिन के पास साधन हों उनको अवश्य ही विस्तृत भ्रमण द्वारा अपने अनुभव, ज्ञान, मस्तिष्क और दृष्टि-कोण को विकसित व विस्तृत करना चाहिये।

होली

होली हिन्दुओं का बड़ा पवित्र पर्व है। इसे वासन्ती नव-सस्येष्टि भी कहते हैं। यह ऋतुराज बसन्त का दूसरा त्यौहार है। वसन्त पञ्चमी से ही ऋतुराज वसन्त के स्वागत का प्रारम्भ होता है। जैसे जैसे वसन्त बाल्य काल से प्रौढ़ होता जाता है वैसे वैसे प्रकृति की छटा में परिवर्तन और निखार आता जाता है। उसका रूप दिनों दिन रम्य से रम्यतर होता जाता है। आज वसन्त श्र

अपने यौवन पर है। वन उपवन नगर गाम में सर्वत्र उसका नयनाभिराम वरविकास मन को हर्ष से प्रफुल्लित कर रहा है। वन उपवनों में कुसुमों की बहार है। खेत परिपक्व जौ व गेहूँ के सस्यों से तरङ्गित हो रहे हैं। भ्रमर, पपीहा कोयल आदि मस्ताते जाते हैं। पशुओं ने नवीन रोमावली के चित्र विचित्र अभिनव परिधान धारण किए हैं। खग गणों ने पुराने पक्षपट पटक नवीन पक्षावली धारण कर ली है। उनकी चारु चहचहाहट में सुन्दर सरसता का संचार हो गया है। उन्होंने अपने मस्ताने राग अलापने आरम्भ कर दिए हैं। भौंरे भी चारण के समान आम की बौर पर बैठ कर गुनगुना रहे हैं। दक्षिण पवन अपनी मतवाली चाल से चल रही है। सूर्यदेव भी अपनी टेढ़ी चाल त्याग उत्तर को ही आ विराजे हैं। जाड़ा हिमालय की कन्दराओं में छिपता फिर रहा है। मधुकर मधुर मधु से खिंचे पुष्पों की ओर उड़े जा रहे हैं। खेतों में सरसों के पौधे वसन्ती पगड़ी पहिने ऋतुराज के शरीर रक्षक सैनिक जान पड़ते हैं। जूही, चमेली, नरगिस अपनी छटा से विश्वभर को मोहित कर रहे हैं। वसन्त का बाल्यकाल समाप्त है। तारुण्य ने पदार्पण किया है। वृक्ष, पौधे, लता फूलों के उपरान्त फलित होने लगे हैं। कोयल, भंवरा, पपीहा आदि तो मदमाते थे ही पर कवि, रसिक प्रेमी व कृषक आदि भी हर्षातिरेक से उच्छृंखल से हो गए हैं। मलयाद्रि का धीर सुगन्ध समीर अठखेलियाँ करता हुआ चल रहा है। ऐसे उदार और मनोहर समय में आषाढ़ी सस्य के शुभागमन की शुभाशा भारत की प्रधान जनता और सबके अन्न दाता कृषक-समूह के मन में मोद भर देती है। ऐसे सुखद सुहावने काल में यह होलिकोत्सव आता है और सबसे हार्दिक स्वागत

पाता है ! कवि सम्राट् अयोध्या सिंह उपाध्याय ने ठीक ही कहा है—

: १ :

देख करके खेत को अपने सुअन्नों से भरा ।
जब किसानों का हृदय तल है बहुत होता हरा ॥
की गई थी जो कमाई पत्थरों का पो बरा ।
जब सुफल उसका उन्हें है, मुग्ध हो देती धरा ॥
झौंपड़ी से राजभवनों तक सुआशाएं फला ।
है विलसती दीखती सम्पन्नता की जब कला ॥

: २ :

तब उठेगी क्यों नहीं उर में विनोदों की लहर ।
क्यों न जावेगा रुधिर में प्राणियों के ओज भर ॥
रङ्ग लावेंगी उमंगें क्यों नहीं बन चारु तर ।
चौगुना हो चाव चित्तों के करेगी क्यों न घर ॥
फल स्वरूप इन्हीं सबों का पर्व होली है बना ।
जो बड़ा ही है मनोहर मुग्ध कर मन-भावना ॥

आषाढ़ी शस्य की फसल भारत की सब फसलों में सर्व श्रेष्ट है। भारत में अकाल पड़ने पर भी यह बहुत कम मारी जाती है। कभी समय था जब इस फसल से भारतीयों के ही नहीं वरन् विदेशियों के भूखे पेट भी भरते थे। ऐसे सर्वाधार शस्य की अगवाई के लिए इतनी चहल पहल व आमोद प्रमोद स्वाभाविक ही है। शस्य सम्बन्धी ऐसे उत्सव व पर्व मनाने की प्रथा केवल भारत में ही नहीं वरन् रूस जापान आदि देशों में भी विद्यमान है। योरप में सेन्ट वेलन्टाइन का दिन (St.Valentin's day) और इङ्गलैण्ड में पोल (May Pole) के उत्सव भी इसी प्रकार के होते हैं।

भारतीय उत्सवों की कुछ अपनी विशेषता है। उनमें आमोद प्रमोद के साथ धार्मिकता और वैज्ञानिकता की पुट हुआ करती है। वर्षा ऋतु की सारी गन्दगी को हटाने और वर्षा ऋतु के नवधान्य को लाजाओं से होम करने के लिए शारदी नवसस्येष्टि (दीपावलि) का पर्व नियत है। इसी प्रकार शीतकालीन वर्षा के अनन्तर अपने निवासस्थानों के परिष्कार करने और बसन्त ऋतु के नव सास्यों से होम कर वायुमण्डल के स्वास्थ्यप्रद व शुद्ध पवित्र करने के लिए यह होली का पर्व नियत किया गया है। आषाढ़ी की नवीन फसल के आने पर नए जौ तथा गेहूँ को होमने के लिए इस अवसर पर प्राचीन काल में नव सस्येष्टि या होलिकोत्सव होता था। संस्कृत में अग्नि में भुने आधे पके अन्न को 'होलक' कहते हैं। उस क्रिया के कारण ही इसे (होलकोत्सव) भी कहते हैं। आज कल भी संध्या काल में चौराहों व चौवट्टों पर बृद्रत् अग्नि धधका लोग बाले भूनते, बांटते व खाते हैं। इसे होलिकादहन कहते हैं। यह बड़ी होली के एक दिन पूर्व ही होता है। यह पुराने सम्मिलित नवसस्येष्टि का प्रतीक मात्र है।

होली प्रेम प्रसार और आनन्दोल्लास का महोत्सव है। इस दिन भारत वर्ष के प्रत्येक प्रान्त के नर नारी व आबाल वृद्ध हर्षोल्लाससे भरे रहते हैं।

अंग बङ्ग कलिङ्ग होते हैं प्रमोदों में निरत।
नाच उठता है सकल पञ्जाब हो आमोद-रत॥
यह हमारा युक्तप्रान्त प्रमत्त होता है महत्।
है मनाता मोद राजस्थान हो उन्मत्तवत्॥
डूब जाती है विनोदों बीच भारत की धरा

ब्रज उमग पड़ता है हो जाता है हरियाना हरा ॥

उपाध्याय जी

लोग छुटपन बड़प्पन का भेद भाव भूल प्रेम से गले लगते हैं। भंगी के बालक को अधिकार है कि सम्राट् के साथ रंगरलियां करे। प्रकृति के यौवन की मादकता के साथ मानव की मादकता व उल्लास भी विकास की चरम सीमा तक पहुँचते हैं। कोई गा रहा है, तो कोई बजा; कोई नाचता है तो कोई स्वांग भरता है। चारों ओर फाग की आँधी उमड़ आती है। रंग और गुलाल की वर्षा होने लगती है। कोई बन्दर बन गया है तो कोई कलन्दर। रंग की पिचकारियों पर पिचकारियां छूट रही हैं। खिलाड़ियों की टोलियों की टोलियाँ इस व्यापार में व्यस्त हैं। देखना कोई रंग से अछूता न बचने पाये।

पर यह क्या ? रंग के साथ कीचड़ और विष्ठा की भी पुताई होने लगी। अश्लील गीत और नृत्य का भी क्रम चल पड़ा। टोलियों में कुछ मदिरा पायी थी झूमते झामते लारतार टपकाते तथा धक्के खाते आ रहे हैं। इस पर्व की पवित्रता में इस बीभत्सता का मिश्रण सब भारतीयों के लिए शोक लज्जा व घृणा का विषय है। यह सब काल-गति का प्रभाव है—

काल पाकर यह रुचिर त्यौहार भी कलुषित हुआ
कसवियों का नाचना गाना अधिक प्रचलित हुआ ॥
गालियाँ बकना बहकना मद्यपान विहित हुआ।
डाल देना कीच कालिख पोतना समुचित हुआ ॥
ओज औ माधुर्य में बीभत्स आकर के मिला।
पाटलों के पुंज बीच प्रसून बिम्बी का खिला ॥

उपाध्याय जी

आधुनिक रंग बखेरने और गुलाल उड़ाने की कुप्रथा का मूल प्राचीन काल में यह प्रतीत होता है कि पुराने भारतवासी इस आमोद प्रमोद के पर्व पर इत्र आदि सुगन्धित द्रव्यों को परस्पर उपहार रूप से व्यवहार में लाते थे। उससे बसन्ती वस्त्रों के विकृत होने का भय नहीं होता था। आज कल के विकृत विदेशी लाल रंग का यही मौलिक शुद्ध स्वरूप अनुमित होता है। गुलाल का मूल भी पुष्पों का पराग या पुष्पों की पत्तियों का चूर्ण होगा। अश्लील नृत्य और गीत का मूल धार्मिक नाटक व स्तुति गीत प्रतीत होते हैं। इन विकृत पाशविक वृत्तियों से यह शूद्रों का त्यौहार माना जाने लगा है। कुछ भी क्यों न हो, पर प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति का यह कर्तव्य हो जाता है कि वह इन बुराइयों को छोड़ दे तथा अन्यों से छुड़ाने का प्रयास करे ताकि यह पर्व पुनः अपने पुराने स्तुत्य स्वच्छ व पवित्र रूप में मनाया जाने लगे।

पुराणों में होलिकोत्सव के विषय में यह कथा प्रचलित है कि इस अवसर पर अत्याचारी दैत्यराज हिरण्य कशिपु ने अपने विष्णुभक्त पुत्र प्रह्लाद के सजीव दाह के लिए अपनी मायाविनी भगिनी होलिका द्वारा चिता रचवाई थी। उसने सोचा था कि होलिका अपनी राक्षसी माया से प्रह्लाद को जलवा कर आप चिता में से बच कर सुरक्षित निकल आयगी। परन्तु परमात्मा भक्त-वत्सल है। प्रह्लाद का तो बाल भी बांका न हुआ और दुष्ट राक्षसी भस्मसात् हो गई। तभी से यह त्यौहार प्रचलित हुआ विश्वास किया जाता है। इससे इस पर्व को पौराणिक व ऐतिहासिक महत्त्व भी मिल जाता है।

दीपावली-पर्व

विचार-तालिका:—

१. भूमिका—आनन्द और सम्पन्नता का पर्व।
२. दीपावली पर्व का ऐतिहासिक महत्त्व।
३. सज-धज और मनाने की रीति।
४. उपसंहार।

"दीप जला, तिमिर हटा,
फैल गई जगमग उजियाली!
दीप जले बड़े भले,
और सजी फिर अरचन-थाली।
पर्व नया, हर्ष नया,
फिर आई है आज दिवाली।
हिलो मिलो, खिलो खिलो,
नाचो गाओ दे ताली।
आज दिवाली।"

दीपावली का त्यौहार समूचे भारतवर्ष तथा अन्य पूर्वी द्वीपों में भी मनाया जाता है। त्यौहारों में यह सबसे बड़ा और अपनी आनबान का एक ही त्यौहार है। 'एक अमेरिकन भारत-यात्री से पूछा गया, "भारत में तुम्हें सबसे अधिक लुभावनी वस्तु क्या दीखी।" उसने उत्तर दिया—'दिवाली वाली रात।' दीपावली शब्द दीप = दीपक और अवली = पंक्ति के मेल से बना है। आनन्द की पराकाष्ठा के प्रकाशनाथ अब तक भी दीपोत्सव की प्रथा है। विवाह आदि मंगल-कृत्यों पर विशेष प्रकाश किया जाता है। घृत दीपक सम्पन्नता और मंगलता के सूचक भी माने जाते हैं। दीपावली का त्यौहार जब प्रचलित

हुआ होगा वह किसी परम आनन्द की सीमा प्रकट करने के लिए तथा उस उत्कट आनन्द की स्मृति हरी रखने के लिए ही हुआ होगा, यही इसका तात्पर्य है। साथ-साथ यह भी सत्य है कि यह एक आमोद-प्रमोद का काल माना जाता है। सुख, शान्ति, समृद्धिमय जीवन की चरमसीमा दीपावली में प्रकट होती है।

यह त्यौहार अति प्राचीनकाल से मनाया जा रहा है। इसका ऐतिहासिक सम्बन्ध राजा बलि से भी है क्योंकि दीपावली के समारोह के दिनों में एक दिन का नामकरण ही बलि प्रतिपदा कर दिया है। यह दिन आज भी परम शुभ माना जाता है। परन्तु उसके पीछे जो चमत्कारमय और स्फूर्तिप्रद घटनापूर्ण इतिहास भरा पड़ा है उसे हम भूल सा गए हैं।

अस्तु, वह घटनाचक्र इस प्रकार है—भारतवर्ष पहिले से ही स्वर्णमय देश है इसलिए सदा ही विदेशी लुटेरों का इस पर दान्त लगा रहा। प्रागैतिहासिक या पौराणिक काल में एक प्रतापी सुविख्यात दैत्यवंश का नाम आता है जो ईरान निवासी था। इसका आदि पुरुष हिरण्याक्ष था जिसने बहुधा भारत पर आक्रमण कर विपुल धनराशि का अपहरण किया, परन्तु राज्य स्थापित करने की उसकी अभिलाषा न थी। परन्तु उसने मारकाट और लूट-पाट इतनी की कि देश बीरान हो गया, मानों पृथ्वी रसातल में धसा चाहती थी। परन्तु महापुरुष वाराहावतार ने उसका वध कर इस भूमि का उद्धार किया। उसी की स्मृति में काश्मीर में एक स्थान का नाम ही वराहमूलक या 'वारामूला' नियत हुआ।

हिरण्याक्ष के पश्चात् उसके भाई हिरण्यकशिपु ने भारी

तैयारी करके भारत पर सफल आक्रमण किया और अपना आतंकपूर्ण शासन स्थापित कर लिया। सुव्यवस्था की ओर उसका ध्यान न गया। लोगों ने विद्रोह किए पर कुचल दिए गए। अन्ततोगत्वा उसी के पुत्र प्रह्लाद ने भी आततायी पिता का विरोध किया। सिंहवत् पराक्रमी 'नरसिंह' ने उसकी रक्षा की। लोगों ने प्रह्लाद का विदेशी राज्य उसके गुणों पर मोहित होकर स्वीकार किया। परन्तु राज्य की वास्तविक बागडोर इन्द्र राजा के हाथ में रही।

प्रह्लाद के पुत्र विरोचन ने नाममात्र का राजा न बनना चाहा। उसने प्रकट रूप से राज्य छोड़ दिया परन्तु नास्तिकपन का प्रचार करता रहा। वह भारतीयों को सभ्यता से पतित कर देश

उसका पुत्र बलि उसी जैसा नीतिज्ञ था। उसने यहाँ की जनता के हृदय को पहिचाना और यज्ञ के बहाने लोगों की श्रद्धा और विश्वास का पात्र बन गया। उसने देशों में व्यवस्था और शान्ति दोनों स्थापित किए। ब्राह्मणों को उसने 'किंचित्प्रदानेन' दक्षिणा आदि दे देकर प्रसन्न कर लिया। परन्तु उच्चपदों पर अपने दैत्यबन्धुओं को ही नियुक्त करता रहा। भारत की भारतीयता के नाश के गुप्त षड्यन्त्र सफलता की ओर अग्रसर हो रहे थे। परन्तु वामनावतार ने लोगों को समझाया कि बलि का राज्य सुराज्य तो है किन्तु स्वराज्य की तुलना नहीं कर सकता। आन्दोलन दिन-प्रतिदिन दृढ़मूल होता गया और अन्ततोगत्वा बलि को राज्य हस्तान्तरित करने को विवश कर दिया गया।

भारतीयों के हाथों में पुनः राज्यसत्ता आने के उपलक्ष में

स्वतन्त्रता दिवस बड़ी धूमधाम से मनाया गया। चारों ओर आनन्द ही आनन्द छा गया। चिर-अभिलषित सुख-शान्ति-समृद्धि हस्तगत हो गई। वैश्यों को व्यापार बढ़ाने का अवकाश मिल गया। समारोह में दीपोत्सव किया गया। वैश्यों ने उसमें सबसे अधिक भाग लिया। नए बही खाते खोल कर नया कारोबार प्रारम्भ कर दिया। यह प्रथा अब तक भी प्रचलित है। अतः प्रथम दीपावली प्रथम स्वतन्त्रता दिवस के उपलक्ष में मनाई गई। क्योंकि स्वतन्त्रता से बढ़कर कोई सुख नहीं और पराधीनता से बड़ा कोई दुःख नहीं—

'सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम्'

तुलसीदासजी ने भी कहा है—

"पराधीन सपने सुख नाहीं।"

एक विदेशी दस्यु रावण एक आर्य-महिला को हरण करने का दुस्साहस करता है। आर्य जाति के सुपूत राम ने सुदूर दक्षिण से सुबाहु और मारीच आदि के सैनिक कटकों को तहस नहस कर उपद्रवों के मूल स्रोत लंका पर भी जय प्राप्त करली। वहाँ अपनी नीति पर कार्य संचालित करने वाले रावण के ही भाई विभीषण को स्थापित कर सीता के साथ पुष्पक विमान से अयोध्या पहुँचे थे। विदेशी आक्रमणों से देश को छुटकारा दिलाने वाले प्रजा के देश और हृदय सम्राट् राम का अभूतपूर्व स्वागतोत्सव हुआ। घी के दीपक जले। स्थान-स्थान पर राम के अद्भुत पराक्रमशाली चरित्र की कथाएं कही गईं। आज भी इस पर्व पर यही कुछ होता है। इस समारोह से भी हमारी स्वतन्त्रता का आंशिक सम्बन्ध है।

इस दिन का महत्त्व दो महापुरुषों के इसी दिन निर्वाण को प्राप्त हो जाने से और भी व्यापक हो जाता है। जैनियों के तीर्थङ्कर और आर्यसमाज के प्रवर्तक महर्षि दयानन्द का निर्वाण इसी शुभ दिन पर हुआ था। अपने उद्देश्य को पूर्ण कर प्रभु की गोद में पहुँचती हुई आत्माओं और प्रभु के निमल मेल के अवसर भी आध्यात्मिक रूप से उत्सव और समारोह के कारण हुआ करते हैं। इसी प्रकार सिक्खों का भी इस पर्व से घनिष्ठ सम्बन्ध है। सारांश यह कि भारत का बच्चा-बच्चा इसे हृदय से अपनाता है।

ऋतु सम्बन्धी महत्त्व भी इस पर्व को कम प्राप्त नहीं है। वर्षा ऋतु समाप्त हो चुकी है। नए ज्वार, बाजरा, मकई और धान से कृषकों के भण्डार भर चुके होते हैं। प्रसन्नता और प्रभु का आभार प्रदर्शित करने के लिए वह यज्ञ करता है, दान देता है और अपने कृषि के प्रमुख साधक बैलों को खूब खिलाता-पिलाता और घृत दीप जलाता है।

इस त्यौहार के आने से एक मास पूर्व से ही तैयारियां प्रारम्भ हो जाती हैं। लोग घरों व दुकानों की सफ़ाई व लिपाई-पोताई करते हैं। स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से भी यह लाभप्रद है, क्योंकि वर्षा ऋतु में उत्पन्न मलेरिया आदि के कीटाणु इससे मर जाते हैं। वायु यज्ञों से विशुद्ध हो जाती है। वर्षा से विकृत भवनों का परिष्कार हो जाता है। सरसों के तेल के दीपक भी कीटाणुओं के नाशक होते हैं।

जिस पर्व की अगवानी की पहिले से ही तैयारियां होती हैं आखिर वह सजधज के साथ आ पहुँचता है। प्रत्येक नगर और ग्राम की शोभा देखते ही बनती है। मिठाई, खिलौनों और

भाण्डे बर्तनों की दुकानों पर तो चांदी ही बरसती है। सजावट भी उनकी निराली ही होती है। मिठाई के भरे थालों की सीढ़ी सी बन जाती है जिसका अन्तिम सिरा दुकान की छत से छुआ होता है। दिन भर बच्चों के पटाखे पटकते रहते हैं, परन्तु ज्यों-ज्यों शाम होती जाती है और गलियों में दर्शकों, मिष्ठान्न आदि के ग्राहकों की भीड़ आने-जाने लगती है तब तो पटाखों और गोलों से आकाश उथला जाता है। सांय-सांय धड़ाम, सांय-सांय धड़ाम की ध्वनि गगन को भेदन करती रहती है! धीरे-धीरे तैल और घृत दीपकों, बिजली के लट्टुओं और मोमबत्तियों के रंगबिरंगे प्रकाश से सारा नगर या ग्राम झलमली

[redacted]

आलोक तो दूर से ही दृष्टि हर लेता है। और गांव के चारों ओर जगमग करते दीपकों के बीच खड़ा व्यक्ति अपने को स्वर्ग में ही खड़ा समझता है। जहां ग्रामों या कसबों में बिजली नहीं, वहां पर तेल के दीपकों से दूर से देखने से अमावस्या की रात्रि मोतियों की लड़ियों से जगमगाती सी दिखाई देती है।

सभी के घरों में भांति-भांति के स्वादिष्ट भोजन बने होते हैं। मिष्ठान्न का आदान-प्रदान चलता रहता है। गृहस्थियों के घरों से यज्ञ, धूपबत्ती और अगर की सुगन्धि आती है। गलियों में बारूद की धूआंधार मची रहती है। फूलझड़ियों से अमावस्या

की रात्रि का गगन रंगबिरंगे फूलों के लटकते गुच्छों से अद्भुत ही शोभा देता है।

इस रात्रि को हिन्दू लोग और विशेष रूप से वैश्य लक्ष्मी-पूजन करते हैं। उनका विचार है कि जिस घर में अधिक प्रकाश रहता है उसमें लक्ष्मी प्रवेश करती है। सारांश यह कि सारे व्यक्तियों के भाव कुछ ऐसे होते हैं मानो किसी दैवी शक्ति की प्रतीक्षा में बैठे हों।

दूसरी रात को गोवर्धन पूजा होती है। गोवर्धन पहाड़ का प्रतीक गोबर का बनाया जाता है। पास ही गोबर के गवाले हाथ में लाठियां लिए खड़े होते हैं। इसमें इन्द्र की पूजा अभिप्रेत है। पूजा में खील बताशे धूप दीप नैवेद्य चढ़ाया जाता है। रात को यह सब कुछ होता है तो दिन में राम भरत मिलाप। दिल्ली में घण्टा घर की गेलरी पर राम और भरत के मेल का अद्भुत अभिनय प्रदर्शित किया जाता है। चारों ओर लाखों की संख्या में दर्शक मिलाप का दर्शन करने को खड़े होते हैं।

भइया दूज लड़कियां मनाती हैं। अपने भाइयों को मालाएं पहिनाती और तिलक करती हैं और उनकी दीर्घ-आयु की प्रार्थना करती हैं।

दीपावली को सारे कृषक कृषि के प्रमुख सहायक बैलों को भी खूब खिलाते-पिलाते और सेवा टहल करते हैं। उस दिन उनसे कोई काम नहीं लेते।

इस पवित्र जातीय त्यौहार पर जूए खेलने को स्वर्ग प्राप्ति का उपाय मानकर उचित समझना इसकी पवित्रता को दूषित करना है। इस कुप्रथा के परिणाम स्वरूप कई माताओं और बहिनों के तो उनका पतिदेव और भाई जूए में जेवर ही हार

आता है। कई शाह इसी दिन फक्कड़ बन बैठते हैं। इस प्रकार दीपावली के मंगलमय दीपक के साथ ही कई घरों के दीपक तो इसी दिन बुझते हैं। वे दिवालिया हो जाते हैं। पटाखों और आतिशबाजियों से भी देश के धन की अकारथ हानि होती है। कई बच्चों और बड़े बूढ़ों की तो इस बारूद के खेल से जान ही चली जाती है। इसलिए यदि मनोविनोद का साधन कुछ और रक्खा जाय तो हितकर हो। द्यूत को तो शीघ्र से शीघ्र ही समाप्त कर देना परम आवश्यक है।

स्त्री शिक्षा

विचार-तालिका:—

१. आधुनिक स्त्री-शिक्षा की अवस्था।

२. स्त्री शिक्षा की आवश्यकता। स्त्री शिक्षा से स्त्री समाज को लाभ।

३. स्त्रियों को किस प्रकार से शिक्षित किया जाय? स्कूल कालिजों द्वारा या किसी अन्य साधन से?

४. किस प्रकार की शिक्षा उनके लिए हितकर हो सकती है?

(क) वर्तमात स्त्री-शिक्षा प्रणाली की समालोचना।

(ख) सुधार के उपाय।

अच्छी वस्तु सभी युगों में समानरूप से सब के लिए ही उपादेय होती है। 'शिक्षा' सब से श्रेष्ठ वस्तु है। शारीरिक, मानसिक और नैतिक शक्तियों को विकसित करने का नाम शिक्षा है। पुरुषों की इन शक्तियों का विकास जिस प्रकार शिक्षा से किया जाता है, उसी प्रकार स्त्रियों की इन शक्तियों

का विकास भी करना आवश्यक है। पुरुष के समान स्त्रियों का शिक्षित होकर मानवजाति की उन्नति में सहयोग देने का पूर्ण अधिकार है। स्त्रियों को इस अमृत से वञ्चित रखना उनके साथ घोर अन्याय करना तथा अपने पांव-कुठाराघात करना है। मनु महाराज ने स्त्रियों के लिये शिक्षा की स्पष्ट रूप से व्यवस्था की है। प्राचीन इतिहास इसका साक्षी है। सर्वप्रथम गणित विद्या पर प्रमाणिक ग्रन्थ लिखने का श्रेय विदुषी लीलावती को ही है। जिन्होंने इसी नाम की प्रथम गणित पुस्तक लिखी। मण्डन मिश्र जैसे धुरन्धर वेदों के पण्डित को शास्त्रार्थ में परास्त करने वाले शंकराचार्य को भी पराजित करने वाली मण्डन मिश्र की धर्मपत्नी ही तो थी। दोनों के शास्त्रार्थ में वही तो मध्यस्थ बनी थी।

मुस्लिम संस्कृति के भारत में पदार्पण करते ही यहां पर्दा प्रथा प्रचलित हुई। इससे स्त्रीशिक्षा के प्रचार व प्रसार में बाधा पड़ गई। दूसरे पराधीनता के कारण जनता निर्धन हो गई थी और स्त्री शिक्षा के व्यय के भार को वहन न कर सकी। तीसरे शासितों पर शासकों की रीति नीति तथा सभ्यता का गहरा प्रभाव पड़ना अनिवार्य होता है। मुस्लिम संस्कृति सदा से स्त्री-शिक्षा की विरोधी रही। हिन्दुओं ने भी इसका अन्ध अनुकरण किया। परिणाम यह हुआ कि जो स्त्रियां कभी पूज्या समझी जाती थीं, वे ही अब अशिक्षित फूहड़ बन कर पतिदेव की जूतियां समझी जाने लगीं। "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता" अर्थात् जहां स्त्री जाति का मान होता है वहां देवता रमण करते हैं का उच्च भाव ही विलीन हो गया। सन्त तुलसी दास ने 'ढोल गंवार शूद्र अरु नारी, ये सब ताड़न के अधिकारी'

कह कर अशिक्षिता स्त्रियों का अन्धकारमय भविष्य ही मानो लिख दिया था।

अंग्रेजी शासन के अभ्युदय के साथ पुनः स्त्री जाति को समुचित मान की आशाकिरण झलकने लगी। महर्षि दयानन्द ने सर्वप्रथम स्त्रियों के लिए शिक्षा मन्दिर का द्वार खोला। आर्यसमाज की शिक्षा-सम्बन्धी संस्थाओं ने इस दिशा में स्तुत्य कार्य किया। परन्तु भारत में जहां ७ या ८ प्रतिशत ही लोग शिक्षित हैं वहां स्त्रियों की शिक्षा का तो कहना ही क्या ? आज कल लोग स्त्री-शिक्षा को धर्मविरुद्ध नहीं समझते, तथापि अनेक पुराने विचारों के व्यक्तियों को वर्तमान स्त्रीशिक्षा प्रणाली से आपत्ति है। पर्याप्त अंश तक उनका कथन यथार्थ भी है। परन्तु यह तो मानना ही पड़ेगा कि शिक्षा की प्रणाली चाहे कोई भी क्यों न निर्धारित की जाय पर स्त्री-जाति का शिक्षित होना पारिवारिक और सामाजिक उन्नति के लिए अनिवार्य है। आज जब जापान आदि देशों में ९६ प्रतिशत महिलाएं शिक्षित हो गई हैं, तब भारत में 'स्त्रीशिक्षा होनी चाहिए या नहीं' पर ही विचार व वादविवाद चल रहे हैं। यह हमारे पिछड़े रहने का परिणाम है।

अस्तु, अशिक्षित माता परिवार के लिये कदापि विशेष हितकर सिद्ध नहीं हो सकती। वह बहुधा लाड़-दुलार में ही सन्तान का अहित कर बैठेगी। रोग की अवस्था में अशिक्षित माताएं वैद्य डाक्टरों की चिकित्सा की अपेक्षा जादू टोने तथा झाड़ने फुकारने पर अधिक विश्वास करती हैं। परिणाम प्रायः चिन्ताजनक होता है। बच्चों, वृद्धों तथा रोगियों आदि के लिये कौन सा आहार हितकर हो सकता है इसके सम्बन्ध में भी

अशिक्षित माताएं कुछ नहीं जानतीं। घर का हिसाब-किताब रखना भी उन के सामर्थ्य से परे की बात है। शिक्षित पति यदि अपने समय या धन आदि से कुछ अंश बचा कर देश व जाति के लिये उपयोग करना चाहे तो अशिक्षित पत्नी अज्ञानता से बाधक बन सकती है। क्यों ? वह इसका महत्त्व नहीं समझ सकती। अशिक्षित माता की सन्तान भी विशेष रूप से शिक्षित या अच्छे संस्कारों वाली नहीं हो सकती। तभी वेद भगवान् प्रतिपादन करते हैं—'मातृमान् पितृमान् आचार्यवान् पुरुषो वेद' अर्थात् जिसके माता पिता व आचार्य सब विद्वान् हों, वही पूर्ण शिक्षित हो सकता है। मनोविज्ञानवेत्ताओं का कहना है कि बच्चों में अच्छे या बुरे संस्कार ५ वर्ष की अवस्था तक ही पड़ जाते हैं। इस अवस्था तक बच्चा माता के ही पास अधिक रहता है। अच्छे संस्कारों के लिये अच्छे वातावरण का होना अनिवार्य है। अशिक्षित माता गाली-गलोज, कटु भाषण तथा 'हउए' आदि के मिथ्या भय दिखाने से वातावरण को बच्चे की मानसिक उन्नति के लिए सर्वथा प्रतिकूल बना देती है। शुद्धता और उसके लाभों की भी अज्ञानता से उपेक्षा कर बैठती है। सारांश यह कि शिक्षित पति पतंग के समान ऊंची उड़ान भरने के लिये सतत उद्योग करता चलता है और अशिक्षित पत्नी पतंग के डोरे के समान झटक झटक कर नीचे घसीटती चलती है। वह इसमें निर्दोष है। दोष है पुरुष जाति का जिन्होंने तुच्छ स्वार्थ को दृष्टि में रख महान भावी कल्याण पर दृष्टिपात नहीं किया और मानव की आधी संख्या को ही अशिक्षित रखने का अपराध सिर पर लिया।

आजकल महिलाओं को वोट का अधिकार प्राप्त है। विचारी

अशिक्षित स्त्रियों से इसके सदुपयोग की आशा रखना दुराशा-मात्र है। गत दो विश्व के महान् युद्धों में यूरोप पर आपत्ति आई। पुरुषों को कृषि, वाणिज्य, कार्यालय आदि को छोड़ कर अस्त्र शस्त्र ग्रहण करने पड़े। परन्तु तब भी कार्य रुका नहीं, सुशिक्षित स्त्रियों ने ये सब कार्य अपने हाथों में लिये और योग्यता के कारण सुचारु रूप से पूरे किये। अब तो स्त्रियां युद्धों में भी कार्य करने लगी हैं। इस उत्थान के समय में आधी संख्या को अशिक्षित रहने देने जैसा भयानक अपराध क्षम्य नहीं हो सकता। इसके बिना स्वतन्त्र भारत उन्नत नहीं हो सकेगा। परिवार, देश और जाति की उन्नति में स्त्रियों की अशिक्षा रोड़ा है। इसे दूर करना ही होगा।

आज स्त्रियों की शिक्षा का विरोधी कोई नहीं रहा परन्तु आधुनिक अंग्रेज़ी ढंग की शिक्षा का विरोध व्यापक रूप धारण करता जा रहा है। भारत भूमि के लिये यह प्रणाली उपयोगी सिद्ध नहीं हुई। इससे लड़कियाँ, विलासिनी, अकर्मण्य और भारतीयत्व के आदर्श से च्युत हो गई हैं। कई स्थानों पर तो पृथक कन्यापाठशालाओं का प्रबन्ध न हो सकने के कारण सहशिक्षा ही चल रही है। परिणाम दुश्चरित्रता हो रहा है। एक ओर लड़कियों के मस्तिष्क में शैक्सपियर की समालोचना ठूँसी जा रही है तो दूसरी ओर स्वास्थ्य सम्बन्धी शिक्षा की अवहेलना हो रही है। पाकशास्त्र पर भी यथोचित ध्यान नहीं दिया जाता। फ़ैशन इतना बढ़ जाता है कि गृहस्थिनी बनने पर पति के लिये पत्नी देवी का पालन पोषण सफेद हाथी बाँधने से कम नहीं रहता। उसके साथ विवाह का उत्साह कोई युवक तब करेगा जब पिता की ओर से पर्याप्त दहेज का प्रलोभन दिखाया जायगा।

घर के काम से भी शिक्षित स्त्रियाँ घृणा व लज्जा अनुभव करती हैं। अतः आवश्यक हो जाता है कि शिक्षा प्रणाली में सुधार व परिवर्तन किया जाय। यह सब कुछ होते हुए भी भारतवर्ष के स्वतन्त्रता आन्दोलनों में शिक्षा के कारण स्त्रियों का महत्त्व-पूर्ण स्थान रहा है। सरोजिनी नायडू, विजयलक्ष्मी, सुभद्राकुमारी चौहान, शन्नोदेवी आदियों ने अपना तथा देश का नाम उज्वल किया।

अस्तु, स्त्रियों के लिये प्राचीन शिक्षा-प्रणाली जिसमें भारती-यता और धार्मिकता का अंश अधिक है, अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकती है। उनका चरित्र, उनके परिवार, तथा देश व जाति के लिये अमूल्य रत्न है। जो भी शिक्षा प्रणाली उसकी रक्षा में सहायक हो वही उपादेय है। क्योंकि चरित्रगिरि से पतन हो जाने पर परिणाम अनर्थ परम्परा ही होता है। हिन्दी संस्कृत में शील-रक्षा पर पर्याप्त साहित्य व ऐतिहासिक सामग्री है। अंग्रेजी में इसका अभाव सा ही है। इसके व्यर्थ में वर्णानु-पूर्वी (Spelling) रटवाने से भी कोई लाभ विशेष दृष्टिगोचर, नहीं होता। अन्य विषयों में गृह कार्यों में सहायक पाकशास्त्र स्वास्थ्य शास्त्र, पशुपालन, शिशुपालन आदि उपयोगी विषयों पर विशेष ध्यान दिलाना चाहिये। गणित आदि विषय व्यवहार योग्य पढ़ाए जाने चाहियें। इसके लिये जापान व जर्मनी की शिक्षा प्रणाली जो हमारी शिक्षा प्रणाली से पर्याप्त अंश में मिलती जुलती है, अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली की अपेक्षा अधिक सहायक सिद्ध हो सकती है। इस परिष्कृत शिक्षा प्रणाली से ही गार्गी, सीता, सावित्री, कुलोत्तमा तथा लीलावती आदि बन सकती हैं। प्रचलित दूषित शिक्षा प्रणाली से नहीं।

बिजली के चमत्कार

विचार-तालिका:—

१ भूमिका विश्व परिवर्तन में स्थान।

२ इतिहास।

३ लाभ।

४ उपसंहार।

वर्तमान युग आविष्कारों का युग है। थोड़े ही वर्षों में इन अद्भुत आविष्कारों ने संसार तथा मानवसमाज को आमूलचूल परिवर्तित कर छोड़ा है। इस विश्व और जीवन के परिवर्तन में बिजली का प्रमुख स्थान है। वाष्प का स्थान धीरे २ इस विद्युत् शक्ति को ही मिल रहा है।

पहिले इसके विषय में लोगों का ज्ञान बहुत कम था। १८वीं शताब्दी में डा० गिल्बर्ट ने इस शक्ति को समझने का प्रयत्न किया। इसीने इसका नाम 'इलैक्ट्रिसिटी' रक्खा। इसके उपरान्त फ्रैंकलिन ने भी इस दिशा में पर्याप्त छानबीन कर इसको विकास की सीढ़ी में अग्रसर किया। सर्वप्रथम १८०० ई० में वोल्टा (Volta) ने बिजली उत्पन्न करने के लिए एक रासायनिक बैटरी (chemical battery) का आविष्कार किया। फेरेडी ने मेग्नीटो-विद्युत्-उत्पादक (Magneto-electric-generator) निकाला। इसके पश्चात् १८३७ में कुथ (Cooth) और ह्वीटस्टन (Wheatston) ने विद्युत् टेलीग्राफ का आविष्कार किया।

टेलीग्राफ बिजली के मुख्य आविष्कारों में से एक है। इसके द्वारा काल और स्थान की पर्याप्त बचत हुई है। अब तो डाक्टरों ने पक्षाघात, गठिया आदि नस तथा वायु सम्बन्धी रोगों

की चिकित्सा के लिये इसका प्रयोग करना प्रारम्भ कर दिया है। अन्य रोगों के लिए भी इसको उपयोग किया जाता है। १८०० से तो विद्युत् प्रकाश के लिये भी प्रयुक्त की जाने लगी है। अमेरिका निवासी अल्वबैल द्वारा टेलीफान का आविष्कार किया गया।

आजकल बिजली सभ्य जगत् के जीवन की आवश्यकता समझी जाती है। अब लकड़ी या कोयले जलाकर आग पर रोटी बनाने की कोई आवश्यकता नहीं रह गई है। इतना श्रम कौन करे? ज़रा दीवार पर का बिजली का बटन दबाना! लो, बटन दबते ही बिजली की अंगीठी धधकने लगी; सेको चाहे रोटी बनाओ। न फूंक मारो न राख ही हटाओ। शिमला रहो चाहे मंसूरी, हिमपात हो चाहे ओस गिरे, केवल बिजली की अंगीठी साथ रक्खो। भई वाह! तो यह बिजली हुई या कल्पलतिका, या जादूगर की जादू की छड़ी? यदि कार्यवश ग्रीष्म ऋतु में भी शिमला या मंसूरी न जा सको तो मत जाओ। एक छत या मेज़ पर का पंखा साथ रखो। बटन दबाते ही फर्र फर्र करता हुआ ऐसी वायु देगा कि यह भी सुध न आएगी कि दिल्ली में हो या शिमला में। सन् १८८४ में प्रीस (Poreese) ने तारहीन टेलीग्राफ का अनुसन्धान किया। १८९६ में मार्कोनी महोदय ने इसीका प्रदर्शन किया। अब क्या था, उन्नति का नया ही पथ निकल आया। प्रत्येक जहाज तारहीन सैट (Wireless set) रखने लगा और अनेक खतरों से सुरक्षित होने लगा है। इस पथ पर एक पद और रक्खा तो रेडियो की उत्पत्ति हुई। घर बैठे-बैठे विश्वभर के ताजे समाचार, संगीत, वार्तालाप, किस्से कहानियां, कविता

और वक्तृताएं सुन लो। केवल रेडियो बौक्स और रेडियो प्रोग्राम की पुस्तक ही अपने पास होनी चाहिये।

पहिले ही कहा गया है कि तारहीन टेलीफोन का आविष्कार विद्युत् जादूगरनी का अद्भुत खेल है। ऊंची उड़ान भरने वाला वायुयान इसके द्वारा किसी भी रेडियो स्टेशन से सम्बन्ध जोड़ सकता है। टेलीविज़न एक और ही बिजली का महत्तम आश्चर्य है। अभीतक तो हम रेडियो द्वारा देशविदेश के समाचार, गान, भाषण आदि ही सुन कर भौंचक्का रह जाते हैं, अब दूरदर्शक (टेलीविज़न) यन्त्र द्वारा सुदूरस्थ वक्ता, गवैया या अभिनेता का रूप रंग भी देख सकेंगे। पश्चिमी देशों में इनका उपयोग किया जा रहा है। यहां भी शीघ्र ही यह आने वाला है। फिर देहली के ही चित्रपट देखकर सन्तोष क्यों करेंगे? पैरिस, बर्लिन, इङ्गलैण्ड और मास्को आदि की फिल्में भी घर ही बैठे क्यों न देखा करेंगे? विश्वभर के सुविख्यात नगरों बाज़ारों, नदियों, पर्वतों, झीलों और ऐतिहासिक स्थानों को अपनी बैठक से ही देखा करेंगे। ट्रेनें और गाड़ियां भी बिजली से चलने लग पड़ी हैं जिससे कोयले या पैट्रोल के धूएं की दुर्गन्ध से स्वास्थ्य बिगड़ने से बड़ा बचाव होता है। स्विटज़रलैण्ड में बिजली की गाड़ियों का प्रायः प्रयोग हो रहा है। संसार की सबसे शीघ्रगामी विद्युत् रेलगाड़ी जर्मनी ने बनाई है। इसकी प्रगति १०० मील प्रतिघण्टा है। मिलों और कार निर्माणियों (कारखानों) में भी वाष्प का स्थान विद्युत् लेती जा रही है। भारत में भी बड़ी २ नहरों के प्रबन्ध में विद्युत् का प्रयोग किया जा रहा है। सिन्ध, पंजाब और संयुक्त प्रान्त के कुछ भागों में सिंचाई के काम में इसकी बड़ी सहायता ली गई है। पश्चिमी

अमेरिका में तो चिरकाल से वाटर-सप्लाई में इसका उपयोग किया जाता है। हिमाचल में सुकेत में पर्याप्त विद्युत्-उत्पादन की योजना भारतीय सरकार के सामने है। इसी प्रकार अन्यत्र भी प्रपातों और नदियों से निकट भविष्य में पर्याप्त विद्युत् उत्पन्न कर कृषि और उद्योग धन्धों का विकास किया जाएगा।

बिजली के सारे काम गिनाना कठिन है। आधुनिक आविष्कारों की यह रानी है। वैज्ञानिकों ने इस चञ्चला को बुद्धि और मस्तिष्कबल से अचला बनाकर जो चाहा सो इससे करवाया। मानव-सुख और विलासिता की पूर्ति में इसका प्रमुख स्थान है। कामधेनु और कल्पलता का नाम साहित्य और पुराणों में सुनते आए हैं कि ये जो कल्पना करो वही दे देते हैं। ये दोनों स्वर्ग में कहे जाते हैं। भूलोक की कामधेनु और कल्पलता तो बिजली ही है।

भला आज विद्युत्-कल्पलतिका हमारे लिये क्या कुछ नहीं कर रही है? हमारी ट्रामकारों को यह चलाती है, हमारे भवनों, गली, कूचों और सड़कों को यह प्रकाशित करती है; सर्दी में भवनों को गर्म और गर्मी में ठण्डा यह रखती है। यह हमारे लिए भोजन बनाती; कमरे साफ करती और कपड़ों पर लोहा करती है। हमारे कारखानों का संचालन और असाध्य रोगों की चिकित्सा इससे होती है। रूस आदि ठण्डे देशों में गर्मी में उत्पन्न होने वाले फलदायक वृक्षों की उत्पत्ति में यह सहायक होती है। सिंचाई के लिए पानी निकालने में इसका उपयोग होता है। सहस्रों मील दूर के लोगों से बातचीत इसकी सहायता से होती है। उनके गाने तथा नृत्य इत्यादि घर बैठे बिठाए इसीसे देख और सुनो। निकट भविष्य में इसके द्वारा

और भी अधिक आश्चर्यकनक चमत्कारों की सृष्टि की सम्भावना है। यह जादूगरनी जो कुछ करे सो थोड़ा ही समझिए। यदि भारत ने इसकी उद्योगधन्धों और कृषि आदि उपयोगी कार्यों में भी पर्याप्त सहायता ली तो यह भूमि शीघ्र ही स्वर्गभू बन जाएगी।

—:चित्रपट:—

विचार-तालिका:—

१. भूमिका—सर्वप्रियता।

२. लाभ—शिक्षा तथा समाज के प्रचार में सहायक, मनाविनोद का साधन।

३. हानि—आचरण का पतन आदि।

४. उपसंहार—इनका सुधार।

वर्तमान युग के मनोविनोद के वैज्ञानिक साधनों में से चित्रपट का प्रमुख स्थान है। विश्व में चित्रपट-कला दिन प्रतिदिन जितनी फूलती फलती जा रही है, उतनी और कोई नहीं। केवल इङ्गलैंड में ही ४००० सिनेमा भवन हैं जिनमें लाखों की संख्या में लोग कार्य करते हैं। भारत में भी बम्बई, कलकत्ता, आदि बड़े २ नगरों में सिनेमा-स्टूडियो हैं, जहां एक वर्ष में अनेकों नई फिल्में तैयार की जाती हैं। कोई भी नगर ऐसा नहीं जिसमें सिनेमा हाल न हो। दैनिक, साप्ताहिक या मासिक कोई भी ऐसा पत्र नहीं, जिसमें सिनेमा के विज्ञापन न हों। कई पत्रों में तो केवल सिनेमा विषयक लेख तथा फिल्मों पर की गई समालोचनाएं ही होती हैं। नगरों में नवयुवक तथा नवयुवतियों में से शायद ही कोई ऐसा हो, जिसने चित्रपट के दर्शन

न किए हों। चित्रपट की इस सर्वप्रियता का कारण यह है कि इसके समान मनोविनोद का साधन अभी तक दूसरा नहीं निकला। आधुनिक युग में जीवन संघर्ष प्रतिदिन वृद्धि पर है। दिन भर के निरन्तर कार्य भार से थका मांदा व्यक्ति कुछ न कुछ मनोविनोद की सामग्री की अपेक्षा रखता है। प्रत्येक व्यक्ति कवि या भावुक नहीं होता जो सूर्योदय, सूर्यास्त, चन्द्रतारे आदि को देख कर थकावट के भार को दूर कर सके तथा दूसरे दिन के लिए नवीन शक्तियों के साथ समुद्यत हो सके। सिनेमा दो-अढ़ाईघण्टों में ही बड़े से बड़े कथानक को परिपूर्णरूप से दर्शकों के सम्मुख रखता है। नाट्यशालाओं में ऐसा नहीं होता। युद्ध के दृश्य, मृत्यु, बड़ी सेनाएं, पर्वत, समुद्र, नदियां, युद्ध आदि नाट्यशाला में नहीं दिखाए जा सकते। चित्रपट में ये सब संभव हैं। कृत्रिम तथा प्राकृतिक सभी प्रकार के दृश्य चित्रपट में देखे जा सकते हैं। नवीन से नवीन उत्तम संगीत यहां सुनने को मिलता है। यही कारण है कि पूर्ववर्ती सभी मनोविनोदों के साधनों को पीछे छोड़ कर सिनेमा ने इतनी उन्नति की है। सिनेमा में जो हम व्यय करते हैं, उससे कहीं अधिक पाते हैं। भूत वर्तमानवत् सजीव बन कर सजीव रूप में ही हमारे सन्मुख आता है। रामराज्य, सीता स्वयंवर, भक्त प्रह्लाद, अमृत-मन्थन आदि का चित्रपट में सफलता के साथ अभिनय हो रहा है, जिससे प्राचीन संस्कृति की जनता के हृदयों पर गहरी छाप पड़ती है। राम-रावण युद्ध, पलासी की लड़ाई, पुरु सिकन्दर युद्ध आदि सब कुछ सिनेमा में प्रत्यक्ष सा दीखता है। ज्यों २ कोई घटना पुरानी होती जाती है, त्यों २ वह विस्मृति के गर्त्त में छुपती जाती है। सिनेमा उसे पुनरावृत्त कर पुनर्जीवित

करने में सहायक बनता है। इस प्रकार इतिहास के प्रत्यक्ष ज्ञान के लिये चित्रपट बड़ा सहायक सिद्ध हुआ है तथा हो सकता है।

भौगोलिक ज्ञान भी इससे पर्याप्त बढ़ता है। प्रायः भूगोल का विषय नीरस-सा होता है, पर चित्रपट के द्वारा वह अति रुचिकर बनता है। हिमालय के गौरीशंकर आदि शिखरों को जैसे का तैसा चित्रपट में निहारिए। अपने नगर के छोटे से सिनेमा घर में ही सारे लन्दन, टोकियो, बर्लिन, रोम और न्यूयार्क की सैर कीजिए। आज उत्तरी ध्रुव के हिमाच्छन्न प्रदेशों की यात्रा के अनुभव कुछ ही दूरी पर स्थित चित्रपट में देखिए। अफ्रीका की मरुभूमि तथा कृष्ण सागर आदि को अपने वास्तविक आकार में इन्हीं आंखों से देखिए। यदि आप प्रकृतिप्रेमी हैं तो गङ्गोत्तरी के मनोहारी दृश्य कुछ ही पैसे टिकट के लिए खर्च कर देखिए। हमें भयानक बमबारी तथा उसका ध्वंसकारी दृश्य भी ज्यों का त्यों सिनेमाघरों में देखने को मिलता है।

पश्चिमी देशों में शिक्षा सम्बन्धी फिल्में तैयार की गई हैं जिनसे विद्यार्थी इतिहास, भूगोल, वनस्पतिशास्त्र आदि भिन्न २ विषयों का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करते हैं। भारत में भी ऐसी फिल्में तैयार की गई हैं, पर बहुत ही कम संख्या में। इसे शिक्षा का उपयोगी साधन बनाने की ओर फिल्म निर्माताओं को विशेष ध्यान देना चाहिये। चण्डीदास, गरीब की लड़की, महात्मा आदि फिल्मों द्वारा जनता में जो छूआछूत आदि के विरुद्ध भाव भरे जा रहे हैं वे उपदेशकों की लम्बी २ वक्तृताओं से शायद ही भरे जा सकें। सामाजिक बुराइयों के दूर करने में तो सिनेमा सहयोग दे ही रहा है, साथ ही जनता में देशभक्ति, एकता,

जातीयता आदि की भावनाएं भर रहा है। यदि फिल्मनिर्माता इस दिशा में और सतर्कता से और रुचि से कार्य करें तो चित्र-पट जाति व समाज का महान् हित कर हो सकता है। सूरदास, मीरा आदि की फिल्मों से जनता का शुष्कप्राय हृदय भक्ति की ओर खिंचा है। सारांश यह कि सिनेमा जाति में धर्म, भक्ति, श्रद्धा, देशप्रेम, जातीयता, राष्ट्रीयता, अन्तर्राष्ट्रीयता आदि के भाव भरने में समर्थ है।

जहां फूल है वहां कांटा भी है। जहां सिनेमा से इतने लाभ हैं, वहां कुछ त्रुटियां भी हैं। दर्शकों को इसके देखने की ऐसी लत लग जाती है कि छुड़ाए भी नहीं छूटती। वे अपने अन्य कार्य को गौण और चित्रपट को प्रधान समझने लग जाते हैं। विद्यार्थी का चित्त पढ़ाई से ऊब जाता है। हर समय फिल्म संसार उनकी आंखों के सामने घूमा करता है। खेल देखने के लिए वे स्कूल या कालेज से भी अनुपस्थित रहने में संकोच नहीं करते। मां बाप से यदि पैसे न मिले तो चुरा कर या पुस्तक बेचकर ही व्यसन पूर्ति करेंगे। खेल देखने से जो कालांश बच पाया, उसे फिल्मी गीतों की बहुशः आवृत्ति में व्यय करते हैं। बहुत किया तो सिनेमा के स्टार्ज की अभिनय-कुशलता, कथानक के रुचिकर, अरुचिकर, संक्षिप्त या अधिक विस्तृत होने, चरित्र-चित्रण के प्रशस्त या शोचनीय होने आदि की चर्चा करेंगे। स्वप्न में भी सिनेमा की फिल्म दिखाई देती है। सारांश यह कि उसका बाह्याभ्यन्तर सिनेमा सम्बन्धी संस्कारों से ही पूरित हो जाता है। पढ़ाई सम्बन्धी संस्कार व विचार हृदय को खचाखच भरा हुआ देख कर दूर से ही नौ दो ग्यारह हो जाते हैं। अश्लील चित्रों के देखने से छात्रों से सच्चरित्रता या ब्रह्मचर्य

की रक्षा की आशा करना आकाश कुसुम के समान दुराशा मात्र है। फिल्म की कृपा से कुछ ही दिनों में चर्मचक्षु तो जाते रहते हैं, प्रज्ञाचक्षु खुलते तो हैं पर वे देख सकते हैं पूर्वदृष्ट फिल्मों को ही।

फिल्मनिर्माताओं की लोभवृत्ति नवयुवक व नवयुवतियों को और भी गढ़े में धकेलने का कार्य करती है। वस्तुस्थिति यह है कि मानव की निम्न प्रवृत्तियां (Lower imotions) शीघ्र ही उत्तेजित हुआ करती हैं। फिल्मनिर्माता उसका दुरुपयोग कर अश्लील फिल्मों का निर्माण करते हैं। शिक्षाप्रद फिल्मों की अपेक्षा अश्लील फिल्मों के देखने में युवादर्शक व दर्शिकाएं अधिक रुचि रखते हैं। क्योंकि उन्हें तो अपने पैसों से प्रयोजन है। भाड़ में जाए जाति का चरित्र और उज्ज्वल भविष्य। उनका तो इसी में हित है कि सब लैला मजनू बनें।

यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो अपने आपे में यह कला उपयोगी अधिक और हानिकारक कम है। अधिकांश त्रुटियां सरकार और जनता का इस ओर ध्यान देने से दूर की जा सकती हैं। सरकार को चाहिए कि केवल कम्पनी के आर्थिक हित के लिए जाति के चरित्र को दूषित न होने दे। फिल्मनिर्माताओं पर जनता की रुचि को परिष्कृत करने का उत्तरदायित्व निहित है। यदि वे शिक्षाप्रद फिल्में ही तैयार करें तो कुछ ही दिनों में दर्शक जनता 'सूरदास' आदिके समान शिक्षाप्रद फिल्मों में ही रुचि लेने लगेगी और अश्लील फिल्मों के लिए दुराग्रह न करेगी। जनता का भी कर्तव्य हो जाता है कि वह अपने हित की वस्तु से ही मनोविनोद करे हानिकारक से नहीं। पैसे और चरित्र दोनों का ह्रास तो असह्य हानि हो जाती है। यदि ये

तीनों इस ओर ध्यान दें तो यह मनोहर आविष्कार जितना लोकप्रिय हो गया है उतना ही लाभप्रद भी हो सकता है। बहुत सी 'प्रभात' आदि कम्पनियों ने इस ओर स्तुत्य कदम उठाया है। आशा है निकट भविष्य में चित्रपट जनता के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगी।

समाचार पत्र

विचार तालिका:—

(१) भूमिका:—साहित्य में समाचार पत्र का स्थान व आवश्यकता—अस्थायी होने पर भी आवश्यक व सर्वप्रिय। (२) उद्देश्य:—जनता तक देश विदेशों के समाचार पहुंचाना। साधन—सूचनादायिनी एजेन्सियां। (३) लाभ:—अधिकारीवर्ग के कार्य की समालोचना द्वारा सुधार में सहायक—शिक्षा सम्बन्धी महत्व। विद्वान् लेखकों के भिन्न२ विषयों पर लेख व्यवहार ज्ञान की वृद्धि के साधन, कहानी आदि साहित्यिक अङ्गों के समावेश से अधिक रुचिकर, सामाजिक कुरीतियों के निवारण में इन का महत्त्वपूर्ण हाथ। आपत्ति में धन संग्रहार्थ उपयोग। विज्ञापन द्वारा अधिक लाभ। (४) हानि। (५) इतिहास, (६) उपसंहार।

वर्त्तमान काल में साहित्य के विभिन्न अङ्गों में से जितना महत्त्व 'समाचार-पत्रों' का है उतना अन्य किसी अङ्ग का नहीं। ये आज जीवन की महान् आवश्यकता बन गए हैं। ऐसे अनेकों मनुष्य हमें प्रत्येक नगर व कसबे में मिल जाएंगे जिन्हें समाचार-पत्र पढ़े बिना कल न पड़ेगी। दिल्ली जैसे विशाल नगर में तो विलासप्रिय लोगों की नींद ही तब खुलती है जब समाचार-

पत्र बेचने वालों की 'अखबार बाबू जी अखबार !' की ध्वनि कानों में पड़ती है।

समाचार-पत्र, स्थायी साहित्य नहीं, इसे प्रातः पढ़ के हम ताक पर डाल देते हैं, पर इस उपेक्षा से इस का महत्त्व स्थायी साहित्य से घट नहीं जाता। स्थायी साहित्य को तो जब चाहें पढ़ सकते हैं, आज नहीं तो कल सही, पर यह तो उस गुलाब के फूल के समान है जिस में कल तक वह सुगन्ध; वह ताज़गी और वह कोमलता नहीं रहेगी।

समाचार-पत्रों का मुख्य कार्य जनता तक देश विदेशों के विभिन्न प्रकार के समाचार पहुँचाना है। इस के लिए पत्रकारों को बड़ी सावधानी सतर्कता तथा परिश्रम से काम करना पड़ता है। उन्हें संसार के प्रत्येक प्रधान देशों की समाचार एजेन्सियों से अपने सम्बन्ध रखने पड़ते हैं, जिन से वह टेलीग्राफ़, वायरलैस (बेतार की तार) इत्यादि साधनों द्वारा स्थानीय समाचार शीघ्र से शीघ्र प्राप्त कर लेते हैं। ये प्रेस एजेन्सियां अपने कार्य में इतनी प्रवीण हैं कि जो घटना विदेशी प्रदेशों में आधी रात को हुई होती है उस का समाचार हम प्रातःकाल के समाचार-पत्र में पढ़ रहे होते हैं। इसी प्रकार इन पत्रों द्वारा हम सब देशों के साथ एक प्रकार के सम्बन्ध स्थापित करने में सफल हो जाते हैं तथा उन के अच्छे गुणों व रीति रिवाजों को अपने देश में प्रचलित कर सकते हैं। इन्हीं पत्रों द्वारा ही तो रूस की पञ्चवर्षीय शिल्प योजना जनता तक पहुँची जिसे विश्व के प्रत्येक व्यक्ति ने अपनाने की इच्छा प्रकट की।

समाचार-पत्र जनता की मांग को अधिकारी वर्ग तक पहुंचाने का एक बड़ा साधन है। इसी के द्वारा जन-समाज अधिकारि-

मण्डल के बनाए नियमों पर अपनी पक्ष या विपक्ष में अनुमति दे सकता है। अधिकारिवर्ग भी जनता तक अपनी बात इसी के द्वारा पहुँचाता है।

इन पत्रों का शिक्षा सम्बन्धी महत्व भी कुछ कम नहीं। इन में बड़े२ विद्वानों के लेख तथा सुयोग्य सम्पादकों के अग्रलेख निकला करते हैं, जो न केवल सामाजिक वरन् राजनैतिक तथ्यों को भी जनता तक पहुँचाते हैं। पत्र तो ज्ञान का भंडार होते हैं। इन्हें नित्य पढ़ने वाला व्यक्ति बिद्वानों की अपेक्षा अधिक व्यवहार-कुशल तथा अनुभवी होता है। चटनी भी भोजन के स्वाद को बढ़ा दिया करती है, इसी लिए पत्रों में भी आए दिन कहानियां, कविताएं, चुटकले तथा व्यंग्यचित्र (कारटून) आदि प्रकाशित होते रहते हैं, जो पाठक के लिए मनोरञ्जन की सामग्री जुटाते हैं। इन्हीं से, इन में पाठकों की रुचि बढ़ती है।

समाचारपत्रों का सामाजिक कुरीतियों के निवारण में भी एक बड़ा हाथ है। ये इनके नग्न-स्वरूप को जनता के सामने रखकर इनकी जड़तक उखाड़ फैंकने में समर्थ होते हैं। आज कल वृद्ध-विवाह के उदाहरण हमें उतनी संख्या में उपलब्ध नहीं होते जितने कि आज से बीस वर्ष पूर्व। समाचार पत्रों के व्यंग्य भरे लेखों, व्यंग्यचित्रों तथा तत्सम्बन्धी कहानियों व कविताओं ने भी इन्हें दूर करने में पर्याप्त हाथ बटाया है।

जब कभी देश में किसी प्रकार की विपत्ति आ पड़ती है, तब पत्रकार जनता से धन एकत्रित करने तथा पीड़ितों की सहायता करने में सदा अग्रसर रहते हैं। भारत में बिहार-भूकम्प, कोयटा भूकम्प, बंगाल, दुर्भिक्ष, शरणार्थी सहायता आदि के लिए धन-संग्रह में समाचारपत्र अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुए हैं।

आर्थिक तथा व्यापारिक क्षेत्र में भी इनसे कुछ कम लाभ नहीं होता। विज्ञापनों द्वारा क्रेता तथा विक्रेता दोनों ही एक दूसरे के सामने आ जाते हैं। नौकरी की खोज में मारा मारा फिरने वाला ग्रेजुएट सर्वप्रथम समाचार-पत्रों के विज्ञापन के स्तम्भों पर ही दृष्टिपात करता हैं। व्यापारी और जनता वस्तुओं के भाव ताव का पता समाचार-पत्रों के विज्ञापनों से लगाते हैं।

समाचार-पत्रों का उत्तरदायित्व भी महान् है। वह एक देश अथवा जाति के भविष्य को बना भी सकते हैं, और बिगाड़ भी सकते हैं। आजकल पत्र किसी न किसी समाज की ओर से चलते हैं। उसी समाज व दल कीं नीति को उन्हें अपनाना होता है। दलों में परस्पर विरोध बढ़ाने के लिए समाचार-पत्र निन्द्य सिद्ध हुए हैं। भारत वर्ष में साम्प्रदायिक आग धधकाने का काम भी समाचार पत्रों का ही रहा है। बहुधा सरकार समाचार-पत्रों को अपने प्रचार का साधन बनाती है। सत्य पर प्रतिबन्ध लग जाता है। युद्ध काल में किसी पक्ष की जय परा जय का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करना बड़ा कठिन हो जाता है। जनता पर इनका बड़ा गहरा प्रभाव पड़ता है। जनता तो वही सोचती, करती व चाहती है जिसके सम्बन्ध में वे समाचारपत्रों में सुनते हैं।

महारानी अलिज़बिथ के काल में पहिला पत्र इङ्गलैण्ड में निकला। भारत में पहिला पत्र देहली में निकला। सरकार की ओर से १७४६ ई० में इण्डिया ग़ज़ट प्रकाशित हुआ। आज कल तो भिन्न २ भाषा, दल, व नीति के मासिक, साप्ताहिक, और दैनिक पत्र तथा उनके विशेषांकों की भरमार है। दिन में देहली जैसे बड़े स्थानों में दो दो बार समाचार पत्र छपने लगे हैं। विलायत आदि में तो तीन बार भी समाचार पत्र निकलते हैं।

यदि सत्य को ही धुरी समझकर समाचार पत्र अपना कार्य करें, तथा दलबन्दी की पक्षपातपूर्ण नीति को न अपनाएं, तो समाचार पत्र सभ्य व उन्नत देश को और भी अधिक सभ्य व उन्नत करने का महान् साधन हैं। समाचार पत्रों का भविष्य अत्यन्त उज्ज्वल है। ग्रामों की ओर इनका प्रचार व प्रसार द्रुतगति के साथ होना आवश्यक है। पिछड़ी ग्रामीण जनता समाचार-पत्रों से ही आज के युग के सम्बन्ध में कुछ जान कर इसके साथ चल सके गी।

रेडियो

विचार-तालिका :—

१. भूमिका:—आश्चर्यजनक आविष्कार।

२. इतिहास।

३. लाभ—(क) मनोरञ्जन का साधन।
(ख) उपयोगी प्रोग्राम।
(ग) शिक्षा सम्बन्धी महत्त्व, भारत को इसकी अत्यधिक आवश्यकता।

४. रेडियो के साथ टेली विजन का मेल और प्रभाव।

५. हानि। ६. उपसहार:—भविष्य।

वर्तमान युग के आविष्कार में रेडियो का आविष्कार अत्यन्त आश्चर्यजनक है। हजारों और लाखों मीलों की दूरी पर से घर बैठे २ हम विश्व भर के समाचारों से परिचित हो जाते हैं। अलादीन के दीपक (Lamp) के घिसाने के समान तनिक स्विच घुमाया कि संसार के किसी भी देश की सैर कर ली।

आश्चर्य तो यह है कि बिना किसी सम्बन्ध के हम वहीं की भी ध्वनि सुन सकते हैं।

पहिले पहिल १६ वीं शताब्दी के अन्त में बेतार के तार द्वारा सन्देश भेजने की चेष्टा की गई थी। इस वायरलैस (Wireless)के आविष्कारमें इटली के वैज्ञानिक मारकोनी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। अन्यान्य योरुप के वैज्ञानिकों ने बेतार की तार द्वारा संवाद भेजने की कला को उत्तरोत्तर विकसित किया, जिसके परिणामस्वरूप आज रेडियो का महत्त्वपूर्ण आविष्कार उन्नत हो सका। दूर देश के बड़े नगरों में रेडियो स्टेशन बना लिए गए हैं, जहां से हर प्रकार के प्रोग्राम प्रसारित (ब्राड कास्ट) किए जाते हैं। भारत में भी देहली, बम्बई, लखनऊ, मद्रास, कलकत्ता आदि स्थानों पर रेडियो स्टेशन स्थापित किए गए हैं।

आज रेडियो न केवल मनोरञ्जन का साधन मात्र है, अपितु यह हमारी दैनिक आवश्यकता की वस्तु बन गया है। हमारे मनोरञ्जन के लिए सब की रुचि-अनुकूल हर प्रकार के गीत, फिलमी रिकार्ड, पक्के राग, कविताएं, कहानियां समाचार आदि ब्राडकास्ट किए जाते हैं कि तनिक भी उठने को जी नहीं चाहता। घर में ही सबके सब शान्ति के साथ सुनने में मग्न हो जाते हैं।

मनोरञ्जन के साथ २ इसका शिक्षा सम्बन्धी महत्त्वभी कुछ कम नहीं आए दिन बड़े २ विद्वानों तथा राजनीतिज्ञों के भाषण ब्राडकास्ट किए जाते है, जिन से न केवल हमारी ज्ञान वृद्धि होती है, अपितु शब्दों के ठीक उच्चारण, ध्वनि के यथोचित उतार-चढ़ाव तथा विषयों के क्रमिक विकास आदि के सम्बन्ध में हम भली भांति अभिज्ञ हो जाते हैं। घर बैठे २ हमें सामयिक समाचारों के विषय में शीघ्र ज्ञान हो जाता है। भारत जैसे देश में

तो इसकी अत्यन्त आवश्यकता है। यहाँ की जनता अशिक्षित है, तथा ग्रामों में बसी हुई है, स्त्री समाज की तो और भी अधिक हीनावस्था है। अशिक्षित जनसमाज समाचार पत्रों को नहीं पढ़ सकता और न ही वह अन्य साधनों से ज्ञानोपलब्धि कर सकता है। रेडियो सुनना उनकी इस कमी को पूरा कर सकता है। यदि एक अशिक्षित व्यक्ति भी नियमपूर्वक रेडियो सुनता रहे, तो वह भी थोड़े समय में एक शिक्षित व्यक्ति के समान ही उससे आनन्द व ज्ञान लाभ कर सकता है। कम से कम उसे अपने अशिक्षित रहने का हार्दिक शोक तो नहीं रहता। कृषक समाज के लिए यह अत्यन्त उपयोगी प्रमाणित हो रहा है। कृषकों को ठीक रूप से खेती बाड़ी करने के उपाय, अच्छे बीज की पहिचान, उनके बोने का समय, अन्नघातक कीड़ों से छुटकारा पाने के सरल साधन आदि बताकर रेडियो भारत की भूमि को अधिक से अधिक उपजाऊ बनाने में सहायता कर रहा है। स्त्रियों की घरेलू दशा सुधारने, उन्हें भी आज के सांसारिक वातावरण से परिचित रखने में रेडियो का एक बड़ा हाथ है। नियमित रूप से रेडियो सुनने वाली महिला, चाहे वह अशिक्षित अथवा अल्पशिक्षित भी क्यों न हो न केवल गृहस्थ धर्म पालन में निपुण हो सकती है, अपितु भौगोलिक तथा समाजिक तथ्यों से भी परिचित हो जाती है।

विशेष २ पारिभाषिक विषय, शारीरिक विज्ञान, कृषि, भूगोल, यात्रा आदि सम्बन्धी विशेषज्ञों के विद्वत्ता व अनुभव-पूर्ण भाषणों से उस विषय के विद्यार्थी को विशेष ज्ञान उपलब्ध होता है। पश्चिमी देशों में तो रेडियो को उच्चकोटि की शिक्षा का उपयोगी साधन बनाया गया है। इस दिशा में उन्नति के लिए पर्याप्त

अवसर है।

पश्चिमी देशों में रेडियो के साथ आजकल कहीं २ टेली विजन का मेल कर देने से इसे और भी आश्चर्यमय व उपयोगी वस्तु बना दिया गया है। अभी तक तो हम सुदूर देश के गवैये तथा वक्ता आदि के गति और भाषण के शब्द मात्र ही सुन पाते थे, परन्तु अब टेलीविज़न की सहायता से उन्हें हम देख भी सकते हैं। एक स्थान पर नाटक आदि के संलापों के साथ अभिनेताओं के विवध हास्य लास्यादि समन्वित अभिनय घर बैठे ही बैठे देख लीजिए। महापुरुषों के भाषणों के साथ विश्वभर उनके दर्शन भी कर सकता है। अभी भारत में इसका प्रचलन नहीं होने पाया, परन्तु प्रवेशमात्र हो चुका है। आशा है शीघ्र ही हम कानों के विषयों के साथ २ चक्षु के भी विविध दृश्य देखेंगे।

परन्तु प्रत्येक वैज्ञानिक आविष्कार दुधारा कृपाण के समान होता है। इसका इस प्रकार से प्रयोग करना कि अपने को हानि न पहुँचे; बड़ी बुद्धिमत्ता का कार्य है। रेडियो से भी अनेक हानियां हो सकती हैं। इसके तनिक से दुरुपयोग से दो देशों की घनिष्ठ मित्रता का तन्तु टूट सकता है तथा इसके द्वारा जनता के कान किसी के विरुद्ध, उचित अनुचित का ध्यान न रख कर, भरे जा सकते हैं। उदाहरणार्थ सुविख्यात हिट्लर को ही लीजिए। उसने इस वैज्ञानिक साधन का दुरुपयोग किया। जर्मन की जनता को शत्रुओं के विरुद्ध भड़काने के अतिरिक्त अपने युद्ध-विजय के मिथ्या दावे कर वास्तविकता से अन्धकार में रखा। परिणाम यह हुआ कि जर्मन जाति पूर्ण-पराजय तक यह भी न विचार सकी कि हम में कुछ कमजोरी

भी है । यही दशा पाकिस्तान के रेडियो की है। उसमें बहुधा जनता को विषमय साम्प्रदायिकता की शिक्षा दी जाती है जिसके कारण भारत से मित्रताविच्छेद कभी भी हो सकता है ।

यदि ये त्रुटियां दूर हो जायें तो रेडियो का भविष्य अत्यन्त ही उज्ज्वल हो सकता है । वह दिन शीघ्र आने वाला है जब रेडियो स्टेशन का प्रयोग हिटलर व चर्चिल जैसे युद्ध-प्रेमी जीव राष्ट्रों को शान्ति और मित्रता-विच्छेद व युद्धज्वाला भड़काने के लिए नहीं कर सकेंगे, वरन् महात्मा गांधी जैसे शांतिप्रिय महापुरुषों की विश्वशान्ति की शिक्षाओं और योजनाओं से अखिल विश्व प्रभावित होगा। सब देशों की दूरी दूर होगी और सब एकतासूत्र में बंध कर सहानुभूति के साथ दूसरे के दुःख में हाथ बटाने का प्रयास करेंगे ।

हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ कवि—तुलसीदास

"दुःख के माथे सिल परे नाम हृदय ते जाय ।
बलिहारी वा दुःख की पल पल नाम रटाय ॥"

महानता कहीं आकाश से नहीं टपक पड़ती, न ही उसे कोई कृपा करके उपहार रूप से ही दे देता है। महानता वह सोने की चमक दमक है, जो तप और कष्टों की भट्टी में जल कर ही प्रकाश में आती है। उसके लिये कष्ट-कण्टकों से आकीर्ण बीहड़ पथ पार करना पड़ता है। हमारे चरित्र-नायक कवि शिरोमणि

तथा भक्तप्रवर तुलसीदास भी महान् थे, और सुविख्यात थे। परन्तु इस महानता और ख्याति के लिये उनको बहु मूल्य चुकाना पड़ा—संसार के सुख और भोग सब त्यागने पड़े। उनका जीवनसुमन कष्ट-कण्टकों में ही खिला। इसी लिये उसमें इतनी मिठास, और यश की सुगन्धि थी। वे उन महान आत्माओं में से थे जो सदा जन्म से मृत्यु तक दुःखों से मुठभेड़ करते रहे। उनका जीवन कष्ट-कण्टकों का अमित कोष ही बना रहा।

भारतीय जनता के सर्वश्रेष्ठ कवि सन्तप्रवर भक्त तुससीदास के जन्मस्थान तथा तिथि के सम्बन्ध में विद्वानों में पर्याप्त मत-भेद है। बाबा वेणीमाधवदास के अनुसार इनके यमुना के किनारे दूबे-पुरवा नामक ग्राम के मुखिया थे। बाबा रघुवरदास ने 'तुलसी चरित' में लिखा है कि सरवार में पम्हौली से २३ कोस की दूरी पर कसया ग्राम में इनके प्रपितामह परशुराम मिश्र जो गाना के मिश्र थे—निवास किया करते थे। तीर्थाटन करते वे चित्रकूट पहुँचे। वहाँ से वापिस न लौट कर वहीं राजापुर में बस गए। इनके पोते तुलसीराम ही आगे गोस्वामी तुलसीदास नाम से विख्यात हुए। उक्त दोनों लेखकों के अनुसार इनका जन्म सम्वत् १५५४ है। कुछ लोगों का मत यह है कि ये राजापुर में नहीं वरन् 'सूअर खेत' में जन्मे थे जो गोंडे जिले में सरयू के किनारे पर एक तीर्थस्थान है। उनकी भाषा और इधर उधर बिखरे कुछ उद्धरणों से यही ठीक लगता है कि ये चित्रकूट और अयोध्या के निकटवर्ती किसी स्थान में निवास करते थे। इससे इनका जन्मस्थान राजापुर ही निश्चित प्रतीत होता है। उनका आना जाना गोंडा, अयोध्या में भी होता रहता था।

तुलसीदासजी के पिता का नाम आत्माराम और माता का

नाम हुलसी था और ये सरयूपारीण ब्राह्मण थे। जनश्रुति है कि अभुक्त मूल में जन्म होने के कारण अमंगलमय समझ कर इनके माता पिता ने इन्हें त्याग दिया। इसकी पुष्टि आन्तरिक प्रमाणों से भी होती है—

"मातु पिता जग जाय तज्यो" कवितावली।
"जननी जनका तज्यो जनमि" विनयपत्रिका।

बाबा वेणी माधव इनके त्यागने के कारण इनमें जन्मकाल में कुछ अनहोनी बातें बताते हैं—'गोस्वामीजी ने जन्मते ही 'राम राम' का उच्चारण किया और उनके पूरे बत्तीस दान्त थे। पाँच वर्ष के बालक-से लगते थे। अतः कुशकुन समझ कर इन्हें त्याग दिया गया। विनयपत्रिका "तनु तज्यो कुटिल कीट ज्यों तज्या मातपिता हूं" पंक्ति द्वारा इसकी भी पुष्टि होती है। कारण कुछ भी क्यों न हो परन्तु विचारे बालक को जन्मघुट्टी के साथ आपदाओं का दूध पीना पड़ा। परित्यक्त बालक द्वार-द्वार पर मुट्ठी भर अन्न मांगता फिरता था, इधर उधर टुकड़े की खोज में फिरता था। कवितावली में इसका करुण चित्र खींचा है—

बारे ते ललात बिललात द्वार-द्वार दीन,
जानत हौं चारि फल चारि ही चनक को।

बाल अवस्था खुलकर खाने और खेलने का समय होता है, पर परित्यक्त बालक राम के नाम पर राम की दुहाई देकर सबके सामने गिड़ गिड़ाता, बिलखाता और पाँव पड़ता है—"बालपने सूधे मन राम सनमुख भयो, राम नाम लेत मांगी टूकटाक मैं।" मिलता क्या अवज्ञापूर्ण दुत्कार! "बालदसा हूँ न खेल्यो खुलत सुदाऊं मैं'—बाहुक। विनय पत्रिका। विचारे गोस्वामी को पेट के कारण ही धक्के खाते फिरना पड़ा—'उदर लागि ललात फिरेउ'

इसी लिये विश्व उन्हें दुःखमय ही दीख पड़ा "दुखिहु दुखित" वि० प०।

अस्तु, पिता के त्यागने पर भी माता ने बालक को मुनिया नामक दासी को पालने पोसने के निमित्त सौंप दिया। परन्तु दुर्दैव अभागे बालक के इस सुख को भी ईर्ष्या की दृष्टि से देखने लगा। पाँच वर्षोंपरान्त निर्दय विधि ने दासी को भी सदा के लिये उठा लिया। विचारा तुलसी घी दूध का तो कहना ही क्या छाछ तक के लिये तरसता—'छाछी को ललात' विचारा दुर्बल गात तुलसी दांत निकाले द्वार द्वार पर बिलखा करता—"असन बसन बिन बावरो जहँ तहँ उठि धायो" "द्वार द्वार दीनता कहि काढ़ि दर परि पाई।"

अन्त में बाबा नरहरिदास ने इन्हें पास रख लिया और शिक्षा दीक्षा दी। इन्हीं से तुलसीदासजी राम कथा का श्रवण किया करते थे। जब इनके गुरु वहाँ से काशी आए तो गोस्वामी जी भी साथ आए। सौभाग्यवश वहाँ इन्हें धुरन्धर विद्वान् महात्मा 'शेष सनातनजी' मिले। वेद-वेदांग, दर्शन, पुराण आदि का अध्ययन तुलसीदासजी ने इन्हीं से किया। १५ वर्ष तक मनोयोग और परिश्रम से विद्याध्ययन कर गोस्वामी राजापुर लौट आए।

अब गोस्वामीजी युवक हो गए थे। विद्या में भी पारङ्गीण थे। अब इन्होंने सब युवकों के समान गृहस्थ में उस सुख को पाना चाहा जो जन्म से लेकर अब तक इनके साथ साथ आँखमिचौनी का खेल खेल रहा था। एक बार एक भारद्वाज गोत्री ब्राह्मण यमद्वितीया को राजापुर में स्नान करने आए। वे गोस्वामीजी की विद्या, और शील पर मुग्ध हो गए। फलतः रत्नावली नामक

अपनी पुत्री का विवाह इनसे सम्पादित कर दिया। तुलसीदासजी प्रेमी प्राणी थे, परन्तु सबने इन्हें दुत्कारा। पत्नी-प्रेम में कुछ आनन्द का आभास मिलने लगा। परन्तु दैव यह भी न देख सका। एक दिन जब इनकी पत्नी मायके गई हुई थी, तो तुलसीदासजी विरह व्याकुल हो रात को ही यमुना पार कर वहाँ पहुंचे। सोचा था पत्नी भी विरह में तड़पी हुई उनका स्वागत करेगी। परन्तु जैसा स्वागत उनका हुआ वह निम्नलिखित पद्य में चित्रित है—

लाज न आवत आपको दौरे आवहु साथ।
धिक् धिक् ऐसे प्रेम को कहा कहूँ मैं नाथ॥
अस्थि चर्ममय देह मम तामें जैसी प्रीति।
तैसी लौ श्रीराम मंह होति नतो भवभीति।

प्रेम की भिक्षा के लिये पसारी हुई हृदय की झोली में वैराग्य के सूखे दाने पड़े। वासनामय प्रेमधारा का प्रवाह अन्य दिशा को ही मुड़ गया। एकमात्र विश्व से बाँधने वाली लड़ी उनकी धर्मपत्नी थी परन्तु आज उनसे भी नाता टूटा। "पाश तोड़ डाला" "तोरी तरक तराक हौं। (बाहुक)"

गृहस्थ में भी सुख न पा "वैराग्यमेवाभयम्' के अनुसार दुःखियों को अभय दान देने वाले वैराग्य की ओर शान्ति की लालसा से लपके। पुनः घोर तप की तीव्र तरङ्गों में जीवन नौका डूबने उतराने लगी। २० वर्ष तक भूख प्यास और धूप छाया की चिन्ता न कर देशाटन किया। अनेक तीर्थों की यात्रा के उपरान्त पुनः काशी आए। यहीं जप तप करने लगे। परन्तु लोग पाखण्डी समझ कर जो मुँह में आता कह सुनाते—

"*धूत कहौ अवधूत कहौ रजपूत कहौ जोलहा कहौ कोऊ,*

कोऊ कहै करत कुसाज दगाबाज बड़ो कोउ कहै" कवितावली।

परन्तु धीरशिरोमणि सन्तप्रवर तुलसी इन सब खलोक्तियों को ऐसे सहते थे जैसे पर्वत वर्षा की बौछार सहते हैं—

वृन्द अघात गिरि सहे कैसे।
खल के बचन सन्त सहे जैसे॥" अमर सुधा।

परन्तु उनको राम की रक्षा पर पूर्ण विश्वास था। उस ही के सहारे वे अब तक भी जीवन नैया खेते आ रहे थे और आगे भी वही सहारा था। फिर वे खलों से क्यों डरते—"कौन को आस करै तुलसी जो पै राखिहै राम तो मारि है को रे।"

१६३१ में अयोध्या जाकर इन्होंने रामचरित मानस लिखना प्रारम्भ किया और २ वर्ष ७ मास में समाप्त किया। सांसारिक अनुभव तथा प्रकाण्ड पाण्डित्य, अनुभूतिपूर्ण तल्लीनता, अनुपम प्रतिभा और सच्ची राम भक्ति के कलात्मक मिश्रण से इस काव्य का आकार प्रकार कुछ अद्भुत ही बन पड़ा है। राम पर प्रथम कृति होती हुई भी अन्तिम हुई। इसके उपरान्त का राम काव्य पिष्टपेषणमात्र कहा जा सकता है। इसके अतिरिक्त दोहावली, कवितावली, विनयपत्रिका, प्रश्नावली, रामाज्ञा, रामललानहछू आदि कृतियां भी इन्हें साहित्य क्षेत्र में अमर कवि घोषित करती हैं।

तुलसीदास जी का प्रादुर्भाव हिन्दी क्षेत्र में एक चमत्कार ही समझना चाहिए। हिन्दी काव्य की शक्ति का इनके काव्य-क्षेत्र में पूर्ण विकास हुआ है। इनकी काव्य कुशलता का रहस्य इनके संस्कृत साहित्य के पूर्ण पाण्डित्य में निहित है। सब प्रकार के छन्दों और अलंकारों का इन्होंने स्वाभाविक रूप से प्रयोग किया है। पाण्डित्व प्रदर्शन के लिए एक अक्षर भी नहीं

लिखा। प्राचीन हिन्दू संस्कृति और गौरव को संस्कृत में निःशेषतया रूपान्तरित कर पुनरुज्जीवित करने का श्रेय तुलसीदास को ही है। संस्कृत के अतिरिक्त ब्रज और अवधि तीनों पर इनका पूर्ण अधिकार है। इनका रामचरित मानस तो साहित्यिक और धार्मिक दोनों दृष्टियों से हिन्दू जाति का प्राण ही बन गया है। यदि यवन काल से हिन्दू जाति में उसने वास्तविक हिन्दुत्व न भरा होता तो आज हिन्दू नाम लेवा भी शायद ही कोई दृष्टिगोचर होता। अतः हिन्दू, हिन्दी और हिन्दुस्तान पर तुलसीदास का महान् उपकार है। अपनी अमर आदर्श कृतियों द्वारा इन तीनों को सदा आप्यायित रखने के लिए इन्होंने महान् परिश्रमपूर्ण जीवन बिताया।

इनकी भक्ति भी सक्रिय भक्ति थी। वह जाति को आलस्य निद्रा में सुलाने वाली सुरा नहीं थी वरन् जीवन का सन्देश देने वाली अमरसुधा।

गोस्वामीजी ने जो कुछ होश सम्हालने पर किया सो देश और जाति को सौंप दिया। वह भारती के भण्डार की बहुमूल्य कृति है। परन्तु अटूट आपदाओं की बाढ़ के थपेड़ों से जीवन-यात्रा के अन्तिम दिनों में इनकी जीवनतरी पर्याप्त जीर्ण-शीर्ण हो चुकी थी। संयमी निष्ठावान् एवं बलिष्ठ तपस्वी को भी शारीरिक कष्ट सहने पड़े। अनेक व्याधियों ने बिचारे तुलसी को अधीर कर डाला। आखिर कष्टों की भी कोई सीमा होती है। सुखदुःख का पहिया चलता रहे तो कुछ सन्तोष हो भी, परन्तु तुलसीदास के जीवन रथ में तो दुख के ही पहिए घूमते रहे। 'वेदन कुभांति सो सही न जाति राति दिन'

"यह दशा हो गई—पांय पीर, पेट पीर, बाहु पीर, मुँह

'पीर, जर जर सकल सरीर पीर भई है।"

अन्तिम काल में इनके शरीर पर विषैले फोड़े हो गए थे। डा० माताप्रसाद गुप्तजी के मतानुसार यही इनके निधन के कारण बने। परन्तु तथ्य यह है कि निर्वाण से पर्याप्त पूर्व वे ऐसे वेदनामुक्त हो गए जैसे बुझने से पूर्व दीपक।

कुङ्कुम रंग सुअंग जितो मुख,
चन्द सो चन्दन होड़ परी है।
बोलत बोल समृद्ध चवै,
अवलोकत सोच विषाद हरी है।
गौरी कि गङ्ग विहङ्ग वनि वेष,
कि मञ्जुल मूरति मोद भरी है।

अन्त में सुख और शान्ति से ही संवत् १६८० में महात्मा ने प्राण त्यागे। हिन्दी साहित्य का भानु अस्त हुआ।

संवत् सोरह सौ असी, असी गंग के तीर।
श्रावण शुक्ला सप्तमी, तुलसी तज्यो शरीर॥

झांसी की रानी

(लक्ष्मी बाई)

विचार-तालिका—

१. भूमिका—भारत सदा से वीर और वीरांगनाओं का पालना। झांसी की रानी का स्थान।

२. जन्म और बाल्यकाल। विवाह। पति-मृत्यु। अंग्रेजों की राज्यापहरण चेष्टा।

३. १८५७ की राज्यक्रांति।

४. लक्ष्मीबाई का स्वतन्त्रता युद्ध में भाग। अद्भुत वीरता।
५. स्वर्गवास।
६. उपसंहार।

हौं देख्यौ अचरजु अबै, झांसी दुरग अपार।
दृग-कमलनि अंगार त्यों, कर कमलनि तरवार ॥ १ ॥
भई प्रगटि रणकालिका, गढ़ झांसी पारतच्छ।
सुभट संहारे लक्ष्मी, लच्छ लच्छ करि लच्छ ॥ २ ॥
जय झांसी-गढ़ लच्छमी, राजति त्रिविध अनूप।
गति चपला, दुतिचन्द्रिका, समर चण्डिका-रूप ॥ ३ ॥

वियोगी हरि

इस पुण्यभूमि पर अनादिकाल से समय समय पर इस प्रकार के अलौकिक पराक्रम के धनी नर तथा नारी जन्म लेते रहे हैं जिन से यह ही भूमि 'वीर-प्रसू' कहलाती है। ऐसे पूर्व पूर्व आदर्श वीर तथा वीरांगनाएं उत्तरवर्ती सन्तान के लिए प्रकाश के स्तम्भ और स्फूर्ति के स्रोत बनते चले आ रहे हैं। आदर्श वीर और वीरांगनाओं की अटूट लड़ी रूपी मंगलमय बन्दनवार से ही भारत की स्वतन्त्रता वेदी सजाई गई है। उस आधुनिक वीरांगनाओं की वन्दनवार में वीर रानी लक्ष्मीबाई का स्थान प्रमुख है। उसकी ओर दृष्टिपात करते ही वीर रस में मदमाती कोमलाङ्गी ललनाएं भी कह उठती हैं—

रुधिर लक्ष्मी का अरे, इन रगों में बह रहा है।
"सो न जाना शान्त हो कर"—स्वर उसी का कह रहा है।
पुरुष जब है, प्रकृति है आधार, जो संतत रहेगी,
अबला नहीं अबला रहेगी"

कुमारी रवि जैन

अस्तु, अबलाओं को सबला बनाने वाली लक्ष्मीबाई का जन्म १८५७ के प्रथम विकटतम स्वतन्त्रता युद्ध के साथ सम्बद्ध था। उसके अद्भुत पराक्रम और युद्धोत्साह को देख कविगण आज भी उसकी भूरि भूरि प्रशंसा करते नहीं थकते।

बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसी वाली रानी थी।

अस्तु, हमारी चरित-नायिका नारीललामभूता लक्ष्मीबाई का जन्म झांसी में संवत् १८११ में हुआ था। इनके पिता का नाम मोरो पान्त था। लक्ष्मी का जन्म का नाम 'मनुबाई' था। मनुबाई को जन्म से ही भारतीय प्रत्न तथा नवीन वीर और वीरांगनाओं के चरित्र सुनने का सौभाग्य प्राप्त होता रहा। महाभारत और रामायण आदि के वीरों और बीरांगनाओं की वीरता की कहानियां सुनकर इनकी धमनियों में त्वरा से रुधिर संचार होने लगता था। जब मनुबाई कुछ वयस्का हुई तो उसका गंगाधर राव के साथ पाणिग्रहण संस्कार हो गया। पाणिग्रहणकाल में ही प्रचलित प्रथा के अनुसार इनका नाम परिवर्तित कर मनुबाई से लक्ष्म बाई रक्खा गया। अल्पकाल तक ही लक्ष्मी को गार्हस्थ्य सुख बदा था। विवाह के कुछ काल उपरान्त ही इनके पतिदेव स्वर्ग सिधारे।

अंग्रेजों के लिए इस राज्य को ब्रिटिश राज्य में मिलाने का यही स्वर्णमय अवसर था। रानी लक्ष्मीबाई ने पर्याप्त जोर लगाया कि उसे पुत्र गोद लेने की अनुमति दी जाय परन्तु गवर्नर जनरल के कानों में जूं तक न रेंगी। परिणामस्वरूप झांसी का राज्य ब्रिटिश राज्य का अंग बना दिया गया। झांसी की वीर रानी लक्ष्मीबाई के हृदय पर इसकी गहरी चोट लगी।

यह आग उसके अन्दर अन्दर ही सुलगती रही।

सन् १८५७ में भारत में सैनिक विद्रोह हुआ। यह विद्रोह वस्तुतः भारत की प्रथम स्वतन्त्रता की लड़ाई थी। इसका श्रीगणेश मेरठ से हुआ और प्रसार दिल्ली, लखनऊ आदि बड़े शहरों तक पहुँचा। रानी लक्ष्मीबाई ने पहिले तो अंग्रेजों का विरोध नहीं किया परन्तु जब अंग्रेजों का अविश्वास ही समझा तब वह भी अन्दर अन्दर धधकती क्रोध और घृणा की ज्वाला को प्रचण्ड रूप धारण करने से न बचा सकी। साथ ही उस जलती ज्वाला पर घी छिड़कने का काम एक अंग्रेज सेनापति ने झांसी पर आक्रमण कर किया। अभी तक झांसी पर भारतीय वीरों का ही राज्य था। अब क्या था, झांसी की रानी ने भी युद्ध का बिगुल बजा दिया। रानी ने स्वयं सेना की बागडोर अपने हाथ में ली। सेना संख्या में बहुत थोड़ी थी परंतु वीरता में अनुपम थी। अंग्रेजी सेना के समान सधे हुए सैनिक भी झांसी की रानी के पास न थे, परन्तु उसकी क्षतिपूर्ति उनका युद्धोत्साह और नवोल्लास कर रहा था। रानी का मुख वीरोल्लास और रोष से चमकता हुआ अद्भुत ही शोभा धारण कर रहा था। तुमुल युद्ध का श्रीगणेश हुआ। अंग्रेजी सेना ने मुट्ठी भर भारतीय युवकों के अनुपम पराक्रम को देख कर दांतों तले अंगुली दबाई। झांसी की रानी तो चण्डीदेवी से भी प्रचण्डतर दृष्टिगोचर हो रही थी। घोड़े पर चढ़ी हुई दोनों हाथों में दो लपलपाती नंगी तलवारें लिए पट्टा खेलती हुई लगाम मुंह में थामे थी। शत्रुओं के छक्के छूट रहे थे। एक महिला का—अबला का इतना साहस! रानी ने शत्रुओं के काट काट कर ढेर लगा दिए। जिधर रानी का घोड़ा मुड़ता शत्रुओं में त्राहि त्राहि मच जाती,

परन्तु शत्रु-दल तूफानी लहरों के समान बहुत बड़ी संख्या में प्रतिवार सामने आता। आखिर इने गिने सैनिक और सीमित साधन कब तक टिक सकते थे ?

रानी ने सोचा, यदि वह ग्वालियर तक किसी प्रकार जीवित पहुँच पाती तो शायद उसे कुछ वीर-कुमुक मिल जाती। इसी विचार से वह अंग्रेजी सेना के बीच से शत्रुओं को काटती छांटती किले से निकली। अंग्रेजी सैनिकों ने पीछे घोड़े दौड़ाए ताकि रानी को जीवित ही बन्दी बना लिया जाय। कहते हैं रानी की पीठ पर ढाल के नीचे अपने भाई का पुत्र था जिसे वह गोद लिया चाहती थी परन्तु गवर्नर डलहौजी ने स्वीकृति न दी। ग्वालियर के लिए बीच में एक नाला आता था। रानी का घायल घोड़ा उस पर फांद न सका। उतने में अंग्रेजी सैनिक वहीं पहुँच गए। अंग्रेजी सैनिकों के प्रहार से रानी की आंख बाहर निकल आई। सिंही ने एक बार घोड़ा मोड़ा और दोनों सैनिकों को यमपुरी पहुँचा दिया। उतने में रानी का भाई आ पहुँचा। उसकी थाती (पुत्र) उसे सौंप चलता किया। रानी बहुत घायल हो गई थी। पीछा करने वाले सैनिक पीछे लगे थे। रानी ने अन्तिम श्वास तक उनका अनुपम वीरता से सामना किया और अन्त में लड़ते-लड़ते अपने प्राणों की अन्तिम आहुति स्वतन्त्रता-यज्ञकुण्ड में डाली। मृत्यु ने प्राणों के बदले रानी को अमरयशःशरीर प्रदान किया। "Death gives life to some persons" मृत्यु किन्हीं २ व्यक्तियों को जीवनदान देती है। लक्ष्मीबाई को भी नया जीवन मिला।

जिस रूप से रानी उस पवित्र स्थान पर पहुँची, उसका वर्णन करते हुए महाराष्ट्री कविवर तांबे लिखते हैं—

घोड़्यावर खंदा स्वार,
हातात नंगी तलवार,
रूमझुमा करित ती वार,
गोर्यांची कोंड़ी फोडित-फाडित वरि इथे आली ।

वीरप्रवर सैनिक के तुल्य घोड़े पर सवार होकर, हाथों में बिजली के समान नंगी तलवारें लिए, तलवारों को खनखनाती हुई गोरे सैनिकों को काटती छांटती वह वीरांगना यहां (ग्वालियर के समीप) पहुँची ।

अस्तु, यह भी कहा जाता है कि वहां लहूलुहान हुई रानी पीछा करने वाले गोरे सैनिकों को मार कर घास के लगे ढेरों में घुस गई और घास को आग लगा कर भस्म हो गई । गोरे सैनिक धूएं को देखकर समझ गए कि जीवित क्षत्राणी का हाथ आना असम्भव है । दूसरी प्रसिद्धि के अनुसार उसके भक्त एक सेवक ने जो उसके साथ था, उसे भूमि पर लिटाया और दाहकर्म किया ।

उसी स्थान पर झांसी की रानी का एक स्मारक बना है, जो यात्रियों की श्रद्धा और स्फूर्ति का स्रोत है । महाराष्ट्री सुविख्यात कवि तांबे के स्वर से स्वर मिलाते हुए आइए हम भी उस हुतात्मा वीरांगना के प्रति अपनी अश्रु-श्रद्धाञ्जलि समर्पित कर अपना कर्तव्य पालन करें—

"रे हिन्द बांधवा थान या स्थली अश्रु दोन ढाली ।
ती पराक्रमाची जोत मावके इथे झांशी वाली ॥"

तांबे

ऐ हिन्द वासियो, आओ, इस पुण्यभूमि पर जहां कि एक

सुमहान पराक्रम वाली अद्भुत ज्योति बुझी है, वहां उसके स्मरणार्थ अपनी आत्मीयता से पुण्यस्मृति में दो चार आंसू बहाएं।

: विश्वकवि—रवीन्द्रनाथ ठाकुर :

१. भूमिका—रवीन्द्र और गांधी। विश्व को आर्य संस्कृति की महान् देन।

२. जन्म। ३. शिक्षा। ४. कार्य। ५. उपसंहार।

जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वराः।
नास्ति येषां यशःकाये जरामरणजं भयम्॥

उन सुकर्मी कवि सम्राटों की विजय हो जिनके यशरूपी शरीर को बुढ़ापे और मृत्यु का तनिक भी खटका नहीं।

भारतवर्ष का बच्चा बच्चा और विश्व भर के सभी सुशिक्षित व्यक्ति महात्मा गांधी और विश्वकविसम्राट् रवीन्द्रनाथ टैगोर को भली भान्ति जानते हैं। विश्व-विभूतियों को जन्म देकर भारत-भूः ने जगत् को दिखा दिया है कि उसकी महान् आत्माओं को उपजाने की शक्ति अभी भी कम नहीं हुई। ये दोनों विश्व के लिए आर्य संस्कृति की महान् देन हैं। रोम्यां रोला का यह कथन अक्षरशः ठीक है—

"गांधी और रवीन्द्रनाथ एक हिमालय से निकल कर पूर्व और पश्चिम में बहने वाली गंगा और सिन्धु की धारा के समान हैं। रवीन्द्र और गांधी संसार को आर्य संस्कृति की दो महान् देन हैं। एक में उसके हृदय की सुकुमारता और दूसरे में उसकी तेजस्विता चमक रही है। दोनों इतने महान् हैं कि हमारी स्थिति

कबीर की भान्ति हो जाती है—"गुरु गोविन्द दोनों खड़े, काके लागूं पांव ?"

परन्तु आगे कबीरदास जी कहते हैं—'बलिहारी गुरु आपने गोविन्द दियो बताय।' महात्मा जी के भी स्फूर्तिदाता गुरु रवीन्द्रनाथ पर महात्मा जी स्वयं भी बलिहार थे, विश्व भी बलिहार है। वही गुरुप्रवर इस लेख के चरितनायक हैं।

गुरुवर बंगाल के बनर्जी वंश के वंशज हैं। समाज में प्रतिष्ठा पाने के कारण यही वंश 'ठाकुर वंश' के नाम से अधिक प्रसिद्ध हो गया है। टैगोर इसी का अंग्रेजी रंग में रंगा रूप है। यह परिवार एक सम्पन्न जमींदार कुल के अतिरिक्त संगीत, साहित्य और चित्रादिकला का भी मर्मज्ञ चला आ रहा था। इसी वंश में कविवर के पिता देवेन्द्रनाथ ठाकुर और इनके (रवीन्द्र के) दादा द्वारकानाथ ठाकुर का जन्म हुआ था। ब्रह्मसमाजी होने के कारण इनके पिता और पितामह दोनों अन्धविश्वासों और रूढ़ियों से बच पाये थे। जातिबन्धन होने पर भी सर्वप्रथम इङ्गलैण्ड जाने का साहस इनके पितामह द्वारकानाथ ने ही किया। परन्तु रवीन्द्रनाथ जी के पिता भारतीय अन्धविश्वास और रूढ़ियों के कट्टर विरोधी नहीं थे। प्रार्थना और तप की ओर इनकी विशेष प्रवृत्ति और रुचि थी। यही संस्कार हमारे चरितनायक रवीन्द्र के हृदय में बद्धमूल हो गए।

इसी कुल में ६ मई १८६१ ई० को रवीन्द्रनाथ ठाकुर का प्रादुर्भाव हुआ। ये अपने भाई बहिनों में सबसे छोटे थे। इनकी माता का नाम शारदा देवी था। शारदा देवी भी बड़ी आस्तिक श्रद्धालु थीं। बालक रवीन्द्र पर अपने पिता के ध्यान, प्रार्थना और एकान्त प्रेम आदि का अच्छा प्रभाव पड़ा। उनके उत्तरोत्तर

शारीरिक व मानसिक विकास के साथ ही साथ आध्यात्मिकता का भी सामञ्जस्यपूर्ण विकास होता गया।

"कस्यात्यन्तं सुखमुपनतम्" आत्यन्तिक सुख विश्व में किसको बदा है। कवि को जहां सम्पन्न और ऊंचे परिवार में जन्म, और सद्विचारों के धनी माता-पिता को प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त था, वहां उनके ललाट पर बाल्यकाल में ही वात्सल्यमूर्ति स्वर्ग से भी गरीयसी माता की जुदाई की वक्ररेखा भी लिखी गई थी। मातृविहीन बालकको पिता की पूरी देख रेख न मिली। वे अपने अध्यात्ममार्ग की ओर अधिक आकृष्ट थे। इसके अतिरिक्त उन्हें घर का कामकाज भी देखना पड़ता था। रवीन्द्रनाथ जी को स्कूल में भेजा गया अवश्य, परन्तु नीरस स्कूल के वातावरण में सहृदय कवि का चित्त कैसे रमता? अन्ततः घर में ही पढ़ाई का प्रबन्ध करना पड़ा।

रवीन्द्रनाथ बचपन से ही एकान्तप्रेमी थे। नदी, वन, चांदनी रात आदि के देखने में इनका सौन्दर्यप्रिय मन बहुत ही रमता था। इनके घर में भी कवित्व शक्ति के विकास के लिए बड़ा ही अनुकूल वातावरण था। इनके बड़े भाई द्विजेन्द्रनाथ और बहिन स्वर्णकुमारी अच्छी कविता किया करते थे। इसलिए अनुकूल वातावरण में रवीन्द्र ने छोटेपन से ही कविता बनाना प्रारम्भ किया।

सन् १८७७ में १७ वर्ष की आयु में रवीन्द्रनाथ टैगोर पहिली बार इङ्गलैण्ड गए। वहां कुछ काल के लिए यूनिवर्सिटी कालिज लन्दन में विद्या-अध्ययन करते रहे। कुछ वर्षों के उपरान्त वे फिर भारतवर्ष लौट आए और २० वर्ष की अवस्था में अपने पिता की गांव की भूमि आदि की देख रेख के लिए गांव

पर चले गये। वहां उन्हें कविता करने के लिए अच्छा वातावरण और पर्याप्त काल मिल गया। यह गांव गंगा के तट पर स्थित था। कभी कवीन्द्र रवीन्द्र नाव में बैठ धारा के बीचों बीच बड़ी दूरी तक तरङ्गों के साथ चले जाते। यहां इनके जीवन के सबसे सुखमय दिन व्यतीत हुए। प्रकृति की गोद में बैठ यहां इन्होंने अद्भुत प्रकार की रचनाएं कीं। इन रचनाओं के कारण ये चारों ओर विख्यात होने लगे। इनकी प्रतिभा का विकास सर्वाङ्गीण था। काव्य जगत् की कोई ही शाखा ऐसी होगी जो इनसे अछूती बची हो। नाटक, कहानी, गम्भीर से गम्भीर विषयों पर लेख, तथा उपन्यास सभी आपने सफलतापूर्वक लिखे। इनका 'बलिदान' नाटक बंगला साहित्य का सर्वश्रेष्ठ नाटक है। चित्रांगदा भी अपने ढंग की अपूर्व कृति है। गीतिकाव्य को भी श्रेष्ठता की अन्तिम सीमा तक पहुँचाया। 'सोनार तरी' नामक कविता संग्रह में रहस्यवादी विचारों का अच्छा विकास हो पाया है। 'चित्रा' और 'उर्वशी' सौन्दर्यपूजा की दृष्टि से अनुपम रचनाएं हैं।

रवीन्द्रनाथ में देशभक्ति भी कूट कूट कर भरी थी वह युग ही ऐसा था जब युवक शीघ्र ही पश्चिमी सभ्यता में रंग कर उसका अन्धानुकरण करते थे। परन्तु रवीन्द्रनाथ अपनी संस्कृति और वेषभूषा पर ही लट्टू थे। वे प्राचीन आर्य आदर्शों के पीछे चलने और जाति को चलाने के पक्षपाती थे।

वे कहा करते थे—"तुम अपने आपको पहिचानो। अपना जीवन शुद्ध और समृद्ध करो। तपस्या से तुम्हारी शक्ति अपने आप बढ़ने लगेगी, फिर किसी की ताकत नहीं जो तुम्हारा अपमान करे।"

१९१९ की अमृतसर की जलियां वाला की निरपराध भारतीयों की अविवेकपूर्ण रक्तपात की दुर्घटना से कवि का भावुक हृदय पसीज गया। उन्होंने वायसराय को हृदयद्रावक शब्दों में हृदय वेदना को प्रकाशित करते हुए एक पत्र लिखा और अपनी (सर) की उपाधि को लौटा दिया।

वे समझते थे कि विश्व को शान्ति-सन्देश पहुंचाने के लिए एक आदर्श शिक्षा-केन्द्र को आवश्यकता है। इसी भावना से प्रेरित होकर इन्होंने १९०१ में शान्तिनिकेतन विद्यालय की स्थापना की। इसमें भारतीयता के साथ साथ नवीन पश्चिमी शिक्षा की अच्छाइयां भी ग्रहण की गईं। भारतीय विद्यार्थी के मानसिक विकास के लिये इसमें कला, सौन्दर्य और ईश्वरप्रेम की शिक्षा दी जाती है। इस विद्यालय की विश्व भर में ख्याति हुई और बाहर से भी आकर छात्र शिक्षा प्राप्त करने लगे। दीन बन्धु एण्ड्रूज और पीयर्सन् यहाँ के विख्यात अध्यापकों में से थे जो बाहर से आकर यहां अध्यापनकार्य करते रहे।

इस आश्रम में कवि का मन खूब रमा। सारे भारतवासी कविवर को 'गुरुवर' ही पुकारने लगे। महात्मा गांधी भी उन्हें 'गुरु' कहते थे। इनकी पत्नी ने भी आश्रम में विद्यार्थियों की तनमन से शुश्रूषा कर विश्वगुरु का हाथ बटाया। परन्तु दुर्भाग्य वश १९०२ के नवम्बर मास म इनकी अर्धाङ्गिनी का स्वर्गवास हो गया। इससे कविवर को मर्मान्तकवेदना हुई। अभी इस घाव का तनिक भी अंश भरने न पाया था कि दो वर्ष उपरान्त ही इनकी पुत्री के स्वर्गवास ने घाव पर नमक छिड़कने का काम किया। १९०५ में वृद्धा पिता भी स्वर्ग सिधारे। कवि के

करुण हृदय के उद्गार इस काल की इनकी 'स्मरण' 'खवैया' और 'नौका डूबी' नामक करुणारस से स्पष्ट झलकते हैं। आखिर ज्ञानी गुरु मोह पर विजय प्राप्त कर मृत्यु के रहस्य को समझते हैं और शोक के वशीभूत नहीं होते।

अब गुरुवर ने पश्चिमाभिमुख प्रस्थान किया। सर्वप्रथम वे इङ्गलैंड गए। यहां इनका आपरेशन भी हुआ। इसी काल इन्होंने अपनी बङ्गला पुस्तक विश्वविख्यात 'गीताञ्जलि' का अंग्रेजी में अनुवाद किया। इससे पश्चिमी जगत् की आँखें खुलीं और कविवर की महानता का अनुमान लगाया। इसके उपरान्त वे अमेरिका गए। वहां इनका अभूतपूर्व स्वागत हुआ। १९०३ में ये पुनः भारत लौटे। कुछ ही दिनों पश्चात् गीताञ्जलि पर इन्हें विश्व-साहित्य का नोबल पुरस्कार मिला।

उदारमना गुरुवर ने राष्ट्रीयता और अन्तराष्ट्रीयता के आदर्शों और भावों को पूर्ण रूप देने के लिये 'विश्वभारती' नामक संस्था की स्थापना की जहां छात्रों को विश्वसंस्कृति की शिक्षा मिलती है। यह संस्था गुरुवर का प्राण ही रही। विश्वभर से छात्र यहां आकर बन्धु बन्धु के समान हिलमिल कर रहते हैं। भारतीय कला संस्कृति और संगीत की यहां उच्च शिक्षा मिलती है। कविवर यहां अध्यापक और संस्थापक के रूप से रहते थे और इन्होंने अपना सारा तन मन धन इसी पर अपर्ण कर दिया।

इस प्रकार नगर छोड़कर देहात की एकान्त गोद में मानव मात्र के हित के लिये साधना करते हुए ८ अगस्त, १९४१ गुरु पूर्णिमा के दिन अस्सी वर्ष की अवस्था में विश्व से वह अमूल्य विभूति सदा के लिये आँखों से ओझल हो गई।

महात्मागांधी ने गुरुवर के चरणों पर अपनी श्रद्धाञ्जलि चढ़ाते हुए लिखा—"गुरुदेव हिन्दुस्तान की सेवा के मार्फत सारे जगत् की सेवा करना चाहते थे। और सेवा करते करते चले गए। उनका देह ही अधूरा है। उनकी आत्मा तो अमर है जैसे हम सब की है। उनकी प्रवृत्तियां जैसी व्यापक थीं और प्रायः सभी ऐसी पारमार्थिक थीं कि उनकी मार्फत वह अमर रहेंगे। शान्तिनिकेतन, श्रीनिकेतन, विश्वभारत की ये सब एक ही कृषि के नाम हैं। वे गुरुदेव का प्राण थीं। उन्हीं के लिये दीनबन्धु गये व बाद में गुरु देव।"

बेकारी

विचार-तालिका :—

१. भूमिका—भूखा मरता क्या न करता ?

२. भारतवर्ष में दुर्भिक्ष और बेकारी के कारण।

(१) विदेशी राज्य।

(२) त्रुटिपूर्ण शिक्षा-प्रणाली।

(३) उद्योग धन्धों का अभाव।

३. शिक्षा-प्रणाली सुधारने से शिक्षित वर्ग की बेकारी दूर की जा सकती है।

४. उद्योगीकरण से ग्रामीण लोगों की बेकारीदूर की जा सकती है।

बुभुक्षितः किन्न करोति पापम्। (भूखा मरता क्या न करता) भूख बड़ी बला है। विश्वभर के सारे कामधन्धे इस जठराग्नि की प्रचण्ड लपटों को शान्त करने मात्र के साधन हैं।

भूखा व्यक्ति संसार में कुछ भी नहीं कर सकता। उसे तो केवल पेट-भरने की लगी रहती है। इसके लिये चाहे कोई भयानक अपराध ही क्यों न करना पड़े। 'भूखे भक्ति न होय गोपाला, ये लो अपनी काठ की माला।' संसार में सब से प्रबल प्रवृत्ति (instinct) भूख की है। कविवर रहीम तो इस भूख से सताए विश्व की दुर्दशा देख पेट को पीठ ही बनाया चाहते हैं—

'रहिमन कहत सुपेट सों, क्यों न भयो तू पीठ।
रीते अनरीते करे, भरे बिगारत दीठ॥

भूख को बुझाने के लिये जब किसी देश के कुछ लोगों को रोटी नहीं मिलती तब वे सरकार और समाज के विरुद्ध षड्यन्त्र और विद्रोह करने पर उतर आते हैं। इसलिये अच्छे देश और सुन्दर शासन की सर्व प्रथम पहिचान यही है कि वहां के लोग सम्पन्न हों और खाने-पीने की कमी न हो। सुख और शान्ति, शिल्प और कलाकौशल वहीं पनपते हैं जहां पेट के लिये रोटी की निश्चिन्तता हो। रोटी के बिना सब कुछ फीका है। पंजाबी में एक कहावत प्रसिद्ध है– "पेट न पइयां रोटियां, सभी गल्लां हैं खोटियां।" देश में सभी को रोटी तभी मिल सकती है, यदि सब की आजीविका का सुप्रबन्ध हो। परन्तु सारे देशवासियों की आजीविका का प्रबन्ध करना सरकार के लिए इतना सुगम नहीं जितना कहना। बढ़ती हुई जनसंख्या को पहले के ही वृत्ति, कृषि, उद्योग धन्धे आदि साधनों से लालित पालित करना कुछ ही वर्षों में कठिन नहीं, वरन् असम्भव हो जाता है। दशा यहां तक बिगड़ती है कि भूखे भेड़ियों के समान वहां के युवक दूसरे देशों पर झपट कर उनकी रोटी छीनने पर

उतारू हो जाते हैं। गत दो विश्व युद्धों में जर्मनी के युवकों ने ही विश्व शान्ति को भंग किया। जर्मन, जापान, इटली और इङ्गलैण्ड आदि उन्नत देश भी जब विविध प्रकार के वैज्ञानिक साधनों और शिक्षा के रहते भी बेकारी की समस्या को सदा के लिए नहीं सुलझा पाते तो भारतवर्ष जैसे पराधीनता से सद्योमुक्त देश के लिए ऐसा करना सर्वथा असम्भव है।

भारतवर्ष के किसी न किसी प्रान्त में कभी न कभी दुर्भिक्ष या बेकारी अवश्य रहती है। यही कारण है कि अन्य देशों के समान यहाँ सेना के लिये अनिवार्य सेना-प्रवेश की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। स्वयं ही युद्ध-काल में इतने बेकार युवक अल्प वेतन पर ही सेना में भर्ती होने के लिए आ जाते हैं कि सरकार की आवश्यकता पूरी हो जाती है। दुर्भाग्यवश युद्धके उपरान्त तुरन्त ही उन्हें नौकरी से हटा दिया जाता है और कुछ ही दिनों में बेकारों की संख्या इतनी बढ़ जाती है कि बी० ए० और एम० ए० बूट की पालिश करते हुए मिलते हैं। अन्य देशों में इतनी विकट रूप में बेकारी की समस्या देश के सामने नहीं आती। भारतवर्ष में बेकारी के निम्न लिखित कारण हुआ करते हैं:—

एक हाथी के पाव में सब के पांव आ जाते हैं। (१) क्या पीछे क्या अब और क्या आगे, भारतवर्ष में अन्य देशों की अपेक्षा बेकारी के अधिक प्रसरित होने का मुख्य कारण विदेशी शासन है। दुर्भाग्यवश भारत ऐसे औद्योगिक देश के आधीन रहा, जिसके यहां कल कारखानों का जाल सा बिछा है। वहां प्रश्न वस्तुओं के निर्माण का नहीं वरन कच्चा माल (Raw material) प्राप्त करने का है। इस

विशाल भूभाग भारत में अंग्रेजों ने जान बूझ कर कल कारखानों के व्यवसाय को प्रोत्साहन नहीं दिया। फलतः यहाँ का कच्चा माल अल्पमूल्य में ही इङ्गलैंड के कल कारखानों में भ्रमण कर रूपान्तरित होकर पुनः यहीं आकर मंहगा बिकता रहा और अब भी बिक रहा है। इससे वहां के पूंजीपतियों और श्रम-जीवियों दोनों का ही कल्याण होता रहा परन्तु भारत के श्रम-जीवी कार्य न पाने से भूखों मरते रहे। कल कारखाने न होने से बेकारी का उक्त कारण बना ही हुआ है और आगे भी जब तक स्वतन्त्र भारत यहां की आवश्यकता को पूरा करने के लिये पर्याप्त मात्रा में उद्योगधन्धों को विकसित नहीं कर पाता, तब तक यह बेकारी का भूत भागने का नहीं।

दूसरे ब्रिटिश शासकों ने यहां जो अंग्रेजी ढंग की शिक्षा दीक्षा दी वह भी जीविका के लिये विशेष सहायक सिद्ध न हो सकी। उस शिक्षा का उद्देश्य ही कार्यालयों के लिए क्लर्क उत्पन्न करना था। अब जितनों को क्लर्की मिली उनका निर्वाह होता रहा, शेष हाथ धरे नौकरी के लिए प्रतीक्षा करते रहे। अभी पहिले के शिक्षा प्राप्त युवकों को स्थान भी न मिलने पाया था कि क्लरकी के कारखानों (कालिजों) ने एक बड़ी क्लर्कों की संख्या को बी० ए०, एम० ए० के प्रमाणपत्रों से विभूषित कर बीस तीस रुपये मासिक वेतन पर ही बिकने के लिए मण्डी में ला छोड़ा। आखिर निश्चयपूर्वक उक्त घृणित वेतन का मिलना भी शक्य नहीं रह जाता। खेती बाड़ी, व्यापार या किसी उद्योग-धन्धे से स्वतन्त्रतापूर्वक आजीविका कमाने की न उसे शिक्षा ही मिलती और न वह 'बाबू' कहलाने पर ऐसा करने का उत्साह ही करता। कभी २ तो ऐसा काम

करने से पूर्व आत्मघात कर अपनी विधवा पत्नी को, दो चार अनाथ बच्चों को भिक्षावृत्ति द्वारा पालने या मृत्यु के हाथ सौंपने को अकेला छोड़ उस पार चल देता है। कविवर मैथिलीशरण गुप्त जी ने ऐसी अधूरी शिक्षा का चित्र खींचते हुए ठीक ही कहा है—

जाकर विदेश अनेक अब तक युवक अपने आ चुके,
पर देश के वाणिज्य-हित की ओर कितने हैं झुके?
हैं कारखाने कौन से उनके प्रयत्नों से चले?
क्या क्या सुफल निज देश में उनसे अभी तक हैं फले॥
बिगड़े हमारे अब सभी स्वाधीन वे व्यवसाय हैं,
भिक्षा तथा बस भृत्यता ही आज शेष उपाय हैं।
पर हाय! दुर्लभ हो रही है प्राप्ति इनकी भी यहां,
यह कौन जाने इस पतन का अन्त अब होगा कहां?

भारत में केवल शिक्षित-वर्ग ही बेकारी का शिकार बनता हो, ऐसी बात नहीं है। अशिक्षित ग्रामीण भी वर्ष में कई मासों तक बेकार रह कर जीवन का बहुमूल्य काल हाथ पर हाथ धरे बिताता है। भारतवर्ष कृषि-प्रधान देश है। यहां की बहुत बड़ी संख्या ग्रामों में रह कर खेती बाड़ी करती है, परन्तु खेती बाड़ी का काम वर्ष के कुछ मासों में ही रहता है। शेष समय में ग्रामीणों को समय का सदुपयोग करने के लिए न ग्रामों में उन्नत उद्योग-धन्धे ही हैं न वे करना ही चाहते हैं। ताश और शतरंज ही उनका बहुमूल्य समय काटने का साधन है। जो थोड़े बहुत हाथ के ग्राम्य उद्योग-धन्धे कपड़ा बुनने, जूता बनाने आदि के हैं भी, वे कलों में बने माल की सफाई और कम मूल्य में समता नहीं कर सकते। इससे ग्रामीण इस दिशा में विशेष उत्साही

और प्रयत्नशील नहीं दीखते। थोड़े से भी दुर्भिक्ष के झटके से विचारे ग्रामीणों में त्राहि २ मच जाती है। अतिवृष्टि और अनावृष्टि से तो वे कभी कभी ही बच पाते हैं। परन्तु अशिक्षित होने के कारण सरकार के कानों तक वे अपनी धीमी दुःखभरी पुकार कभी ही पहुँचा पाते हैं।

पहिली प्रकार की बेकारी को दूर करने का उपाय तो प्रचलित शिक्षा-प्रणाली में परिवर्तन और सुधार करना है। अब देश स्वतन्त्र हो गया है। शिक्षा ही जाति की जड़ है, यह समझते हुए इसे यथासम्भव और यथाशक्ति उपयोगी बनाना चाहिए। क्लर्की तो शिक्षा का गौण ध्येय है, मुख्य ध्येय तो व्यक्ति को सब प्रकार की कठिनाइयों से निकलने में सहायता करना है विशेषतया आर्थिक संकट से। आर्थिक संकट और बेकारी से मुक्त करने वाली शिक्षा व्यापार, उद्योगधन्धे, कृषि, वैद्यक आदि की शिक्षा हो सकती है। ज्यों ज्यों विद्यार्थी अधिक २ शिक्षित होता जाय त्यों त्यों उसके जीविका के उपाय भी विस्तृततर होने चाहिएं। स्नातक या ग्रेजुएट निकलने पर उसे कई व्यवसायों का विशेषज्ञ होना चाहिए। इसके लिए महात्मा गान्धी द्वारा प्रोत्साहित वार्धा-शिक्षाप्रणाली भी उपयोगी सिद्ध हो सकती है। कृषि, डाक्टरी, इञ्जनीयरिंग, चित्रकारी आदि अनेकानेक व्यवसायों की शिक्षा से भी देश की बेकारी की जड़ें उखाड़ी जा सकती हैं। यह सब सम्भव तभी हो सकता है जब विद्यार्थी नौकरी को ही श्रेष्ठ न माने, वरन् विदेशों के शिक्षित व्यक्तियों के समान नौकरी को जीवन का अन्तिम उपाय समझे। महत्त्व स्वतन्त्रवृत्ति को दिया जाना चाहिए। इस धारणा मात्र के बदलने से यह समस्या काफी सुलझ जाएगी। उपाय एक नहीं, अनेक

निकल आएंगे। क्योंकि (Where there is a will, there is a way)जहां इच्छा होती है वहां कोई उपाय भी अवश्य निकलआता है।

दूसरे प्रकार की बेकारी अशिक्षित ग्रामीणों से सम्बन्धित है। इसका उपाय देश को भान्ति भान्ति के उद्योगों से सम्पन्न बना देना है। यदि प्रत्येक कृषक कृषि के अतिरिक्त एक आध अन्य उद्योग धन्धा भी सीख ले तो वह कभी भी बेकार नहीं रह सकता। इससे दुर्भिक्ष की अवस्था में भी उसको इतनी दुरवस्था का लक्ष्य न बनना पड़ेगा। कृषि के लिए नवीनतम वैज्ञानिक साधन काम में लाने की आवश्यकता है, ताकि उसके बल से एक ही वर्ष में उसी खेती में से कई फसलें ली जा सकें। इससे जहां कृषक प्रतिमास कार्यव्यस्त रहेगा, वहां उसकी आय में भी पर्याप्त वृद्धि होगी। भान्ति २ के भेड़ बकरी आदि पशुओं के पालन से भी उसकी बेकारी की समस्या किसी अंश तक दूर की जा सकती है। जनता और सरकार दोनों के संयुक्त प्रयास से यह कार्य शीघ्र ही सम्पन्न हो सकता है। आशा है स्वतन्त्र भारत ने जहां अन्य कई समस्याओं को हल किया वहां यह समस्या भी सुलझाए बिना न छूटेगी। तभी देश में रामराज्य की सुख और शान्ति का जनता अनुभव करेगी।

सैनिक-शिक्षा

विचार-तालिका :—

१. भूमिका—सेना राष्ट्र वाटिका की बाड़ ।
२. शस्त्र से सुरक्षित राष्ट्र में ही शास्त्र या ज्ञान वृद्धि सम्भव ।
३. सैनिक निर्बलता आक्रमणकारियों को निमन्त्रण ।
४. सैनिक शिक्षा के बिना देश में अनुशासन असम्भव ।
५. विद्यार्थियों को सैनिक शिक्षा दी जाय ।
६. विलासिता और सैनिक वृत्ति का विरोध । कुछ उदाहरण ।
७. भारत पर अपनी और पड़ोसियों की रक्षा का भार ।
८. उपसंहार ।

"ललाटदेशे रुधिरं स्रवत्तु वीरस्य यस्य प्रविशेच्च वक्त्रे ।
तत्सोमपानेन समं भवेच्च संग्रामयज्ञे विविधत्प्रदिष्टम् ॥

भग्न ललाट में से टपकता हुआ रुधिर जिस वीर सैनिक के मुख में प्रवेश कर रहा हो, उसके लिये वह पवित्र संग्राम-यज्ञ में विधिपूर्वक पान किये हुए सोमपान के तुल्य होता है ।"

राष्ट्र एक सुविशाल रम्य उपवन है। उसमें भिन्न-भिन्न क्यारियां हैं। किसी क्यारी में साहित्य रूपी वासन्ती सरसों फूल रही है तो कहीं दार्शनिकता के तरुवर आकाश से बातें कर रहे हैं। कहीं संगीत, चित्र, मूर्ति और स्थापत्य आदि कलाओं की रंग-बिरंगी पुष्पिता लतिकाएं लहरा रही हैं, तो कहीं राजनीति का आम्र अपनी विशाल शाखाओं से विद्वान् रूपी भृङ्गों को आश्रय देकर विविध प्रकार के विशेषज्ञ पान्थों को छाया प्रदान कर रहा है। कहीं धर्म की चम्बेली अपनी मनोमुग्धकारी सुरभि से दर्शकों को अपनी ओर आकर्षित कर रही है, तो कहीं व्यापार

की बेल देश-विदेशों में फैला चाहती है। विविध प्रकार के उद्योग- धन्धों के पनपते पौधों को देख जी की कली खिल जाती है। फसलों से लहराते खेतों को देख कृषक-माली फूला नहीं समाता। विविध प्रकार के सम्प्रदाय-का कभी कभी २ अपनी चञ्चू-चोटों से परस्पर प्रहार करते हुए कोलाहल मचाते दृष्टिगोचर होते हैं। इस फूले फले उपवन की सुषमा निरखते ही बनती है। जी चाहता है मरने के उपरान्त भी यहीं जन्म हो।

परन्तु भीषण शत्रु रूपी वन्य पशु के इसमें प्रवेश करते ही हा-हाकार और 'त्राहि, त्राहि' की कातर ध्वनि से आकाश उथला जाता है। शत्रुओं के 'मारो, काटो; छीनो, झपटो' आदि के नारों से उपवन की शान्ति सहसा नौ दो ग्यारह हो जाती है। साहित्य, संगीत और धर्म के ग्रन्थों के पुष्पों की कोमल पंखुड़ियों से शत्रु के लिए स्नान के लिए पानी गर्म होने लगता है। दार्शनिक विहग बन्दी बन कर शत्रुओं के पिंजरों में पड़े उनके ही प्रसादनार्थ अपना राग सुना सुना कर शत्रु के मनोरंजन का साधन बनते हैं। कोमलाङ्गी अङ्गना-कोकिलें भी अपनी काकली से या तो अत्याचारी बन्दी कर्ताओं का मनोविनोद करती हैं या चित्तौड़ की चिता सुलगा हजारों की संख्या में प्राणों की पूर्णाहुति चढ़ाती हैं। माली के देखते देखते अंगूर, सेव और आम के फलों का हिंस्रक भोग लगाते हैं। माली के पल्ले छिलके भी नहीं पड़ते। इस रम्य राष्ट्र-उपवन में ही यहीं के सोने से सुनहरी मस्जिद के मचान पर से निरपराध आबालवृद्ध तरुण और वयवती युवती और अनजान अबला चिड़ियाओं के शिकार (कत्ले आम) का शाही फर्मान निकलता है। विश्व-भर में सब से बहुमूल्य कोहनूर हीरा भारत में हुआ तो क्या ?

उससे सजनी चाहिए इङ्गलैंड की राजकुमारी। क्यों ? ऐसा क्यों ? यह कहां का न्याय ? न्याय नहीं विश्वव्यापी निर्णय है—"जिसकी लाठी उसी की भैंस।" तभी तो बनारस के विशाल मन्दिर सुनहरा औरङ्गजेबी मस्जिद बने।

परन्तु माली ! यह तो बताओ कुछ बन्यहिंसक-पशु उपवन को इस प्रकार तहस नहस करने का दुस्साहस कैसे करते हैं ? क्या कहा, बाड़ के बिना ? सच है माली ! राष्ट्र उपवन की बाड़ है—उसकी दृढ़ सेना और बाड़ के डरावने कांटे हैं विविध शस्त्रास्त्र। जो माली केसर की क्यारियों आदि से पहिले बाग के चारों ओर कांटेदार लोहे की तार या झाड़ियों की बाड़ खड़ी कर देता है उसी का बाग फूलता फलता और उजाड़ने से बचता है। साहित्य और संगीत, धर्म और संस्कृति, ज्ञान और विज्ञान देश की रक्षा नहीं कर सकते। सपेरे के वीन के सरस सुर को सुन साँप भाग नहीं जाता वरन् फन उठा निकटतर आ जाता है और अन्त में डंक मारता है। यूनान, ईरान, और चीन जो पुरानी सभ्यता और ऊंची संस्कृति के पालने कहलाते थे, तब शत्रुओं से पद-दलित हुए जब इनकी संस्कृति, धर्म और साहित्य विकास के शिखर पर आरूढ़ थे। भारत से जब बौद्धधर्म और संस्कृति विदेशों में भी सुदूर तक फैल चुकी थी तब भारत मुट्ठी भर आक्रान्ताओं से पद-दलित हुआ। अहिंसा की पावनी जाह्नवी ही भारत के लिये डुबाने वाली 'बेतरनी' बनी। परन्तु जहां इस अहिंसा को धार्मिक ग्रन्थों के पृष्ठों पर ही लिखा रहने दिया और जीवन में नहीं ढाला, वहां राष्ट्र-वाटिका में घुसे बन्य पशुओं को या तो वहीं प्राणाहुति चढ़ानी पड़ी या दुम दबा कर भागना पड़ा ! रूस पर आक्रमण कर जर्मनों की यही

दशा तो हुई। हमारे नीतिकार ज्ञान, धर्म साहित्य आदि के उगाने आदि से पूर्व शस्त्र शिक्षा का विधान करते आए हैं, क्यों कि शस्त्र के विना शास्त्र सुरक्षित नहीं रह सकता। 'शस्त्रेण रक्षिते राष्ट्रे शास्त्र चिन्ता प्रवर्तते।"

सैनिक शक्ति-विहीन देश अत्याचारी आक्रमण-कारियों को आक्रमण के लिए ललचाता रहता है। एबीसीनिया को निर्बल देखकर ही मुसोलिनी को आक्रमण का साहस हुआ। जर्मनी ने पोलैंड आदि देशों पर उनकी सैनिक-शक्ति के अपेक्षाकृत कम होने से आक्रमण कर दिया! छोटे से जापान ने ४० करोड़ की जन संख्या वाले विश्व में सब से बड़े देश चीन पर धावा बोल दिया। ३८ करोड़ की आबादी वाला अहिंसा का उपासक भारत अभी अभी ही अनेक शताब्दियों के उपरान्त पराधीनता राहु के पञ्जे से मुक्त हो पाया है, और वह भी वीर सुभाष की 'आजाद हिन्द सेना' के भय और अपनी सैनिक शक्ति के युद्ध में ह्रास होने के कारण ही। 'लीग आफ नेशन्स' असफल रही सैनिक बल न होने से। अब का राष्ट्रसंघ इस रहस्य को समझता है इसलिए उसके सामने अपनी एक अन्तर्राष्ट्रीय सेना खड़ी करने की योजना है।

साधारण व्यक्ति और एक सैनिक में अन्तर केवल अनुशासन का होता है। सैनिक अनुशासित होता है सामान्य व्यक्ति अनुशासन-विहीन। अनुशासन जाति का प्राण है। अनुशासन विहीन जाति बहुसंख्यक होती हुई भी बड़ी नहीं मानी जाती, क्योंकि भेड़ों का झुण्ड भी एक भेड़िए के बच्चे का सामना नहीं कर पाता। भेड़ें उसे देखते ही भगदौड़ मचाना प्रारम्भ करती हैं। यदि अनुशासित होकर उसका सामूहिक रूप

से सामना करें तो कोई कारण नहीं कि वे सफल न हों। चींटियों का अनुशासन विख्यात है। पंक्ति बद्ध हो जब लाखों की संख्या में निकलती हैं तो सैनिक प्रदर्शन (Military Parade) का आनन्द आता है। सांप ने मार्ग रोका, तो उसी से चिमट कर यमपुरी पहुंचाया। महात्मा गान्धी अहिंसा के पुजारी होते हुए भी असहयोग आन्दोलन के लिए युवकों को अनुशासन में रहने की शिक्षा दिलाते थे। उसमें भी अनुशासित अहिंसक सैनिक सफलता पाते थे। भारत शताब्दियों से पराधीन रहा। इसलिए इसे अनुशासन जैसी वस्तु नहीं सिखाई गई। परिणाम स्वरूप स्टेशनों पर टिकट लेते, चलते फिरते उसके जनसमुदायों और भेड़ की भीड़ में कोई अन्तर नहीं दीखता। यदि देश में प्रत्येक व्यक्ति को अनिवार्य सैनिक शिक्षा मिले तो ऐसी अवस्था न देखनी पड़े। कम से कम छात्रों को तो सैनिक शिक्षा स्कूल के जीवन से ही मिलनी चाहिए ताकि भावी जाति अनुशासित हो सके।

युवकों में सैनिक भावना, स्फूर्ति और अनुशासन-प्रेम भरने के साथ ही साथ विलासिता से घृणा उत्पन्न करनी चाहिए। विलासी व्यक्ति भीषण सैनिक बन ही नहीं सकता। इन विलासी प्राणियों से देश रक्षा होने की नहीं। वियोगी हरि लिखते हैं--

क्षण देखे मुख आरसी क्षण साजत सिंगार।
कहा कटेहैं सीस ये बने ठने सरदार॥

नैपोलियन के देश फ्रांस के युवकों को विलासिता सर्पिणी के डसते ही वहां की सैनिक-शक्ति ऐसी खोखली हो गई कि खूँखार जर्मन सैनिकों के सामने ६-१० दिनों में ही हथियार डालने पड़े। यदि विद्यार्थियों में सैनिक-शिक्षा का प्रचार हो

जाय तो उनके चरित्र के सुधार की भी पर्याप्त सम्भावना है। विलासिता और फैशन के साथ ही काम वासनाओं का साहचर्य है, इनके उड़ते ही वे स्वयं कम हो जाएंगी।

भारत में ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र जाति को सैनिक श्रेणी में नहीं माना गया। इससे देश की बड़ी भारी हानि की सम्भावना है। अंग्रेजों का निर्वाह सैनिक वृत्ति वाली गोरखे; डोगरे, सिक्ख मरहट्ठों आदि से हो जाता था। इसलिए शेष जातियों को उपेक्षा से इसके (सेना वृत्ति के) अयोग्य परिगणित कर लिया। इसलिए भी अनिवार्य सैनिक शिक्षा की आवश्यकता है ताकि इनके दुर्बल होने की सम्भावना न रहे।

भारत की स्वतन्त्रता और पाकिस्तान के निर्माण के साथ ही साथ भारतभूमि की रक्षा का उत्तरदायित्व यहां की सरकार और युवकों पर आ पड़ा है। राजपूतों की क्षमा-नीति और पूर्ववर्ती बौद्ध और जैनियों की अनुचित अहिंसावृत्ति से जो हानियां हुई हैं, उनसे अनुभव प्राप्त कर भारत को अभेद्य तथा शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित सेना बनानी चाहिए। पहिले खैबर के संकीर्ण दर्रे से कुछ ही सैनिकों से विदेशी आक्रमणकारी रोके जा सकते थे, परन्तु अब रावी से भी इधर तक वे बस चुके हैं। भारत के उत्तर में भी काश्मीर में वे अन्दर तक घुस आए हैं। सैंकड़ों मीलों के समुद्री तट की भी रक्षा का भार है। वायव्य-आक्रमणों से तो भारत का कोई भी नगर निकटवर्ती पड़ोसी देशों से कुछ ही घण्टों में बम्बार्ड किया जा सकता है। ऐसी विकट परिस्थिति में तो नेवी, हवाई और स्थल शक्तियों को दृढ़ बनाने से ही स्वतन्त्रता की रक्षा सम्भव हो सकेगी। इस लिए आपत्ति आने से पूर्व ही युवकों को बिना किसी जाति-

पांति के भेद भाव के सैनिक शिक्षार्थ दीक्षित करने में ही देश और जाति का कल्याण है। भारत के धर्म, कृषि, उद्योग, ज्ञानविज्ञान, आदि तभी निश्चिन्त हो कर उन्नति कर सकते हैं जब भारत को बाह्य आक्रमणकारियों का भय न रहेगा।

इसके अतिरिक्त सुदूरपूर्व के मलाया, सुमात्रा, इण्डोनेशिया आदि देश भी नेतृत्व और रक्षा के लिए भारत का ही मुख ताकते हैं। इनकी स्वतन्त्रता तभी स्थिर रह सकती है जब भारत स्वयं दृढ़ हो। इसके साथ ही भारत ने अन्तर्राष्ट्रीय रक्षा का भार भी सहन करना है। इस लिए किसी भी कोण से आपत्ति आने पर उसे दूसरे निर्बल की सहायता के लिए भी कटिबद्ध रहना पड़ेगा। यदि रूस और अमेरिका अपना स्वत्व और शान्ति बिना सैनिकशक्ति के नहीं रख सकते तो भारत भी कैसे रख सकता है? इस लिए भारत के लिए सब रोगों की एक मात्र औषधि एक है और वह है देश में सैनिकशिक्षा का प्रचार। क्या युवक क्या युवतियां सभी को सैनिकशिक्षा मिलनी परम आवश्यक है।

समय का सदुपयोग

विचार-तालिका :—

१. भूमिका—मनुष्य ने मस्तिष्क-बल से प्राकृतिक शक्तियों को भी वश में कर डाला, परन्तु समय के वह भी आधीन है।
२. समय के अनुसार चलने से लाभ।
३. हम भागते हुए काल को कैसे पकड़ सकते हैं ?
४. समय के दुरुपयोग से हानि।
५. नैपोलियन का उदाहरण।
६. समय के सदुपयोग के लिए समय-विभाग की आवश्यकता।
७. उपसंहार।

सब कामों का समय नियत है, कहते हैं ऐसा धीमान।
बोते हैं लुनते फिर जैसे, समय देखकर चतुर किसान॥
आज उचित करना है जिसका, करो आज उसको धर धीर।
कल का जो हो काम आज क्यों, कल ही करना उसको "मीर"

अमीर अली मीर

मनुष्य के बुद्धि चमत्कार से चमत्कृत होकर आज विश्वभर की अजेय समझी जाने वाली प्राकृतिक शक्तियां उसकी वशवर्तिनी और आज्ञाकारिणी होगई हैं। चञ्चला वियद्विहारिणी विद्युत् आज संकीर्ण तारों के सीकचों में बन्दी होकर मनुष्य के पंखे घुमाती, अंगीठी सुलगाती, लोहा करती और रोटी पकाती फिरती है। अलंघ्य उदधि को चीरते हुए अग्निपोत एक तट से दूसरे तक बिना किसी आपत्ति के पहुँच जाते हैं। गगनमण्डल तो मनुष्य के लिए वायुयानों में बिहार करने की बिहारस्थली ही बन गया है। अग्निदेव कागज़ की डिबिया (माचिस बोक्स) में बैठे

प्रतीक्षा कर रहे हैं कि कब मनुष्य को मेरी आवश्यकता पड़े। वह मुझे तनिक सा घिसे कि मैं सेवा में उपस्थित होकर उसकी कार्यसिद्धि कर पाऊँ। बन्यगज मनुष्य का वाहन बन बैठा है। शेर उसकी विद्युत् छड़ी को देख कर ही मारे भय के उसके सामने नाचता, सिर झुकाता और दया की भिक्षा मांगता है। परन्तु यदि कोई वस्तु इस प्राणी-शिरोमणि मनुष्य के तनिक भी वश में न हो पाई तो वह है प्रबल काल। यह निर्दयी काल जब आता है तो यह भी देखने का प्रयास नहीं करता कि अमुक व्यक्ति के अमुक कार्य अभी समाप्त भी हो पाया या नहीं। आखिर कूच करता हुआ व्यक्ति पीछे वालों को अपने अनुभव से समय पर कार्य करने की शिक्षा देता हुआ प्रस्थान कर चलता है—"नहि प्रतीक्षते मृत्युः कृतमस्य न वा कृतम्।" मृत्यु प्रतीक्षा नहीं करती कि इसने यह कार्य कर भी लिया है या नहीं।

स्वयं भी काल बड़ा ही समयानुवर्ती है। वह आलसियों के लिए भला क्यों प्रतीक्षा करने लगा! 'Time and tide wait for none' समय और बाढ़ किसी की प्रतीक्षा नहीं किया करते। समय के प्रदर्शक सूर्य चन्द्रादि भी युग युगान्तरों से अपने नियत किए हुए काल पर ही उदय और अस्त होते चले आ रहे हैं। छः ऋतुएं भी अपने नियत समय पर आकर विश्व उद्यान का शृङ्गार कर चली जाती हैं। प्रकृति के सभी पदार्थ जड़ होते हुए भी समय का मूल्य समझते हैं। वसन्त ने दो मास का ही काल पाकर विश्वभर की वनस्पतियों को हरा-भरा कर डाला और समय पर प्रस्थान के लिए तैयार हो गया। परन्तु अभागा नर स्वयं ही छला जाता है। काल उसे अवसर देता चलता है, वह आज से कल और कल से परसों पर ही

अपना काम टालता जाता है। वह समझता है मैं समय बिता रहा हूँ, परन्तु उसे पता नहीं रात और दिन रूपी दो कृष्ण और श्वेत कीड़े जीवन वृक्ष की जड़ को कुतरने में लगे हुए हैं। एक दिन आता है जब उसे हताश होकर बली काल के समक्ष उसका लोहा मानना पड़ता है—"कालो न यातो वयमेव याताः" "हम समझते थे बिताते काल को, हाय यह बीता नहीं हमको ही उल्टा बिता दिया।"

जब हम काल का कुछ बिगाड़ ही नहीं सकते, और वह हमारा सब कुछ कर सकता है, तो क्यों न हम उसके अनुसार ही अपनी चाल ढाल रक्खें। उसकी आज्ञानुसार चलने से वह हमारे लिए हितकर सिद्ध हो सकता है। परन्तु उसके पीछे चलना कोई सुगम नहीं। वह तो निरन्तर भागा जा रहा है। परन्तु भागते-भागते भी वरदान की प्राप्ति के लिए पहिले से ही प्रतीक्षा में खड़े भक्तों को वह सम्पन्न कर देता है। समय पर वह किसान के खेतों को सींच जाता है। यदि किसान ने समय सम्भाल कर बीज बो दिया है और समय पर नीलाई आदि कर दिए हैं तो भागता-भागता काल उस फसल को पकाकर किसान के भण्डार अन्न से भर देता है। परन्तु बोने के समय ताश खेलने या सोने वाले आलसी किसान के खेतों पर से व्यंग्यमय उपहास करता हुआ दुर्भिक्ष का अभिशाप देकर वह सपाटे से आगे सरक जाता है। आलसी किसान की आँखें दूसरे की हरी-भरी खेती को देख कर खुलतीं हैं। वह पुनः काल के पीछे दौड़ता है परन्तु आगे-आगे दौड़ते हुए काल की पीठ पर लिखा हुआ पाता हैं—"Time and tide wait for none." श्रेणी में भी वह काल आता है। सावधान छात्र उसकी प्रतीक्षा

में पहिले ही था। उस काल के आते ही वह उसको पकड़ता है। आधे या पौन घण्टे के अवान्तर (Period) में वह सजग रह कर अध्यापक का पढ़ाया पाठ मनोयोग से सुन लेता है और फिर काल को भागने देता है। आलसी छात्र के पास से जब काल भागा जा रहा था वह चित्रपट के मनन में लीन था। घण्टी बजी। गणित, संस्कृत या अन्य विषय का काल समाप्त हुआ। काल आगे सरका। आलसी छात्र के पल्ले एक भी बात न पड़ी, जबकि सतर्क छात्र प्रतिदिन अधिक-अधिक व्युत्पन्न होता जाता है। वार्षिक परीक्षा में किसने समय से लाभ उठाकर क्या पाया और काल की उपेक्षा कर किसने क्या खोया यह उनकी सफलता और विफलता से प्रगट ही हो जाता है।

उक्त बात से विदित हुआ कि समय के सदुपयोग का उपाय ही यह है कि उसके आने से पूर्व ही उसे पकड़ने के लिए उसके मार्ग में खड़े हो जाओ, और उस नियत काल के पहुंचते ही भूखे भेड़िये के समान उस पर झपट पड़ो। तब समय उसे वरदान देकर चलता बनता है। परन्तु जो विशेष कार्य के लिए नियत किए गए काल से लाभ उठाने के लिए पहिले से ही तैयार नहीं रहते, उनके वह हाथ नहीं आता। एक यूनानी चित्रकार को काल का चित्र चित्रित करने की राजाज्ञा मिली। उसने अपने 'समय' के चित्र के माथे पर तो एक बालों का गुच्छा दिखा दिया, परन्तु शेष सारा और विशेषकर पिछला भाग तो हथेली के समान गञ्जा दिखाया। उसका अभिप्राय था कि यदि कोई दौड़ते हुए समय को सामने से पकड़े, अर्थात् पहिले से ही उससे लाभ उठाने के लिए तैयार रहे, तब तो वह उस बाल के गुच्छे से उसे पकड़ सकता है, अन्यथा पीछे से तो उसका हाथ

आना असम्भव है। सच है—"गया वक्त फिर हाथ आता नहीं।" इसलिए समय बीतने पर पछताने से कोई लाभ नहीं। सन्त तुलसीदास जी रामचरित-मानस में प्रतिपादन करते हैं—

"अब का वर्षा जब कृषी सुखाने, समय बीती पुनि का पछिताने।" और पछताने से बनता भी क्या है? "अब पछताए होत क्या जब चिड़िया चुग गई खेत।"

जगद्विजेता नैपोलियन को उसकी सहायक सेना के आने में कुछ ही मिनट का विलम्ब कर देने से नेल्सन से परास्त होना पड़ा। इसी प्रकार कितने ही व्यक्ति अपने नियत जीवनकाल के एक-एक दिन का सदुपयोग न करने के कारण जीवन भर असफलता के थपेड़े खाते चलते हैं। समय का सदुपयोग न करने से अभागा छात्र सारी विद्यार्थी-अवस्था यूं ही गंवा देता है। पहिले तो पास ही नहीं होने पाता, यदि नकल आदि करके पास हो भी गया तो बिना योग्यता के जीवन संघर्ष में टिक नहीं सकता। आजकल तो हर नौकरी के लिए प्रतियोगिता है और व्यापार आदि व्यवसायों में भी संघर्ष करना पड़ता है फिर भला नकली प्रमाणपत्र कहां काम दे सकता है? संस्कृत के नीतिकार ने मानव की तीन अवस्थाओं के कार्य नियत कर दिए हैं—

प्रथमे नार्जिता विद्या, द्वितीये नार्जितं धनम्।
तृतीये नार्जितोधर्मश्चतुर्थे किं करिष्यति?

अर्थात् जिस व्यक्ति ने विद्यार्थी अवस्था में विद्या नहीं पढ़ी, गृहस्थी होने पर धन नहीं कमाया, वानप्रस्थी होने पर परोपकार करके धर्म नहीं किया वह चौथी अवस्था आने पर क्या कर पाएगा? इसलिए उन्नति की प्रथम सीढ़ी विद्यार्थी अवस्था है।

विद्यार्थी को चाहिए कि इसके प्रत्येक क्षण का विद्योपार्जन के लिए प्रयोग करे। इसी प्रकार गृहस्थियों को भी अपने बाल गोपालों का लालन-पालन व शिक्षा-दीक्षा आदि के लिए प्रति क्षण का सदुपयोग करके धन कमाना चाहिए। विद्यार्थी के लिए पढ़ाई के काल का एक क्षण और गृहस्थी के लिए धनोपार्जन का एक मिनट भी व्यर्थ खोना विद्या और धन से वञ्चित रहकर अपने आपको और आत्माश्रितों को गढ़े में गिराना है। नीतिकार लिखते हैं—

क्षणशः कणशश्चैव विद्यामर्थञ्च साधयेत्।
क्षणत्यागे कुतो विद्या कणत्यागे कुतो धनम्?

भिन्न-भिन्न अवस्थाओं के मुख्य कर्तव्यों के अतिरिक्त प्रत्येक व्यक्ति को कुछ अन्य कर्तव्य भी करने पड़ते हैं। उदाहरणार्थ विद्योपार्जन के साथ-साथ विद्यार्थी का अपने शरीर को व्यायाम या खेल आदि द्वारा स्वस्थ रखना तथा कुछ घरेलू कामों में सहायता देना भी कर्तव्य है। इसी प्रकार गृहस्थी के लिए सम्बन्धियों की सहायता, देश तथा जाति आदि की सेवा के लिए समुचित समय व शक्ति लगाना भी कर्तव्य है। चतुर व्यक्ति अपने काल का समय विभाग बनाकर समय पर सभी कर्तव्य निभा देता है, और मूर्ख मनुष्य टाल-मटोल करता चलता है, जिसका परिणाम पद-पद पर असफलता होती है। समय-विभाग एक दिनचर्या का है जिसमें सारे दिन के घण्टों पर दिन के लिए नियत किया गया काम विभाजित किया जाता है। दूसरा जीवन का समय-विभाग है। दिन का समय-विभाग करने से हमारे सारे काम समय पर समाप्त हो जाते हैं और हमें सन्तोष होता है कि हमारा दिन भली प्रकार व्यतीत हुआ।

इसी प्रकार जीवन का समय-विभाग बना देने से और नियत काल पर नियत कार्य समाप्त करने से हमें जीवन के अन्त में पश्चात्ताप नहीं करना पड़ता। अपने जीवन का समय-विभाग बनाकर हमारे पूर्वज अच्छे ब्रह्मचारी, उत्तम गृहस्थी, उदार परोपकारी वानप्रस्थी और श्रेष्ठ सन्यासी होते थे। उनका यह लोक भी सुखमय होता था और परलोक भी। परन्तु वे काल का दुरुपयोग करने से मृत्यु से भी अधिक भयभीत होते थे। वे समझते थे समय ही जीवन है "Time is life" और वह भागा जा रहा है। इसलिए वे एक क्षण भी खोना आत्म-हत्या के तुल्य समझते थे। सूर्यास्त देखकर खतरे की घण्टी बज जाती थी—

उत्थायोत्थाय बोद्धव्यं महद्भयमुपागतम्।
आयुषोभागयादाय रविरस्तमुपागतः॥

ऐ लोगो! उठो, समझो एक महान् भय उपस्थित हो गया है। कौनसा? हमारी आयु के भाग को लिए यह सूर्य अस्त हो रहा है।

उक्त आर्य सूर्यास्त से तब डरते थे जब जीवन अवधि सौ वर्ष या उससे भी अधिक होती थी। कार्य-व्यस्तता अब से बहुत ही कम थी। परन्तु आज हमारी प्रतिशत आयु ३०-३५ वर्ष है। कार्य और जानने योग्य विषय बढ़ गए हैं। समय भागा जा रहा है। इस पर भी यदि सारा-सारा दिन ताश और शतरंज या गप्प-शप्प ही का बोलबाला रहे तो भांप जाना चाहिए कि ऐसा अनाड़ी व्यक्ति जीवन का मूल्य समझा ही नहीं। वह नहीं जानता कि—

"Art is long and time is fleeting" अर्थात् कलाएं जानने को बहुत हैं और जीवनकाल दौड़ा जा रहा है।

इसलिए उपसंहार में उपनिषत्कार के ब्रह्मज्ञान के सम्बन्ध में कहे गए शब्दों के समय और आयु के मूल्य की ओर घटाते हुए इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि ऐ मनुष्यो, इस समय के मूल्य को यदि यहीं और समय पर समझ कर लाभ उठा सको तो भला है नहीं तो महान् विनाश होगा—

"इह चेदवेदीथ खलु सत्यमस्ति,
नोचेदिहावेदीथ महती विनष्टिः ॥"
काल करन्ती आज कर आज करन्ती अब।
क्षण में परलौ होयगी बहुरि करेगा कब ॥

महर्षि दयानन्द सरस्वती

आधुनिक युग के विधाता ऋषि दयानन्द का जन्म मोरवी राज्य के टंकारा नामक ग्राम में सम्बत् १८८१ वि० को पं० अम्बाशंकर नाम के औदिच्य ब्राह्मण के घर हुआ था। इनका जन्म का नाम मूलशङ्कर था। इनके पिता बड़े धर्मनिष्ठ और कर्तव्य-परायण व्यक्ति थे। वे शिव के सच्चे उपासक थे और चाहते थे कि उनका 'मूल' भी वैसा ही बन जाए।

पाँच वर्ष की आयु होने पर इनको देवनागरी अक्षरों का अभ्यास हो गया और इन्होंने बहुत से श्लोक कण्ठ कर लिये। ८ वर्ष की आयु होने पर इनका यज्ञोपवीत संस्कार करा दिया

गया। गायत्री सीख लेने पर इनके पिता ने इन्हें यजुर्वेद संहिता प्रारम्भ करा दी। इनकी स्मरण शक्ति बड़ी तीव्र थी।

जिस समय मूल जी १४ वर्ष के हुए तो इनके पिता जी ने शिवरात्रि के दिन शिव का व्रत रखने का आदेश किया। नगर के बाहर शिवजी के मन्दिर में रात्रि भर जागरण हुआ। आधी रात्रि बीतने तक मन्दिर के सभी भक्त सो गये परन्तु मूल जी बराबर जागते रहे। इन्होंने देखा कि शिवलिङ्ग के ऊपर कुछ चूहा भोग की सामग्री खा रहा है। उन्होंने जैसे ही इस घटना को देखा उनके हृदय में एक अद्भुत ज्योति का चमत्कार जगमगा उठा। उनके हृदय में संकल्प उठने लगे और वह निश्चय कर लिया कि यह शिवलिङ्ग की मूर्ति सच्चा शिव नहीं। उन्होंने पिता जी को जगाया और इस बारे में उनसे बहुत से प्रश्न पूछे। मन्दिर से मूलजी घर वापिस आ गये और उन्होंने व्रत समाप्त करके भोजन कर लिया।

इस घटना के पश्चात् मूलजी की प्यारी बहिन की मृत्यु हो गई। तीन वर्ष पश्चात् उनके चाचा का देहावसान हो गया। इन दोनों मृत्युओं से उन्हें अनेकों प्रकार के विचारों ने घेर लिया और उसी समय से वे मृत्यु के असली भेद को समझने के लिये प्रयत्नशील हो गये!

बीस वर्ष की आयु होने पर इनके पिता जी ने इनका विवाह करने का निश्चय किया परन्तु मूलजी ने इसका विरोध किया। अन्त में वे एक दिन रात्रि के समय घर छोड़कर चल दिये। घर में कोहराम मच गया। इनकी खोज की गई और एक शिवालय में वे गेरूआ वस्त्र पहिने पकड़ लिये गये। पिता जी ने बहुत बुरा भला कहा और उन्होंने कड़ा पहरा भी लगा दिया।

यह सब होते हुए भी मूलजी एक दिन अवसर पाकर सदैव के लिये घर से विदा हो गये। उन्होंने इस बार योगियों की खोज करनी प्रारम्भ करदी। योग सीखने लगे और संस्कृत पढ़ने लगे। घूमते घूमते हिमालय पर्वत पर पहुंचे। यहां एक महन्त ने इन्हें अपनी गद्दी सौंपने का वचन दिया परन्तु उन्होंने इसको अस्वीकार कर दिया। हिमालय पर्वत के ऊपर इधर उधर स्वामीजी कई दिन मारे मारे फिरे। जीवन तक की आशा छोड़ बैठे। हिम में उनके दोनों पैर इतने ठंडे हो गये कि एक पग भी न बढ़ा सके। अन्त में कुछ पर्वतीय राहगीरों ने इन्हें बचाया।

मूलजी हिमालय यात्रा से पहिले दक्षिण की ओर घूमे थे। वहीं उन्होंने स्वामी पूर्णानन्द जी सरस्वती से आग्रह करके संन्यास धारण किया था। उन्होंने इनका नाम दयानन्द रक्खा। उस समय इनकी अवस्था २४ वर्ष हो चुकी थी।

स्वामी दयानन्द वर्षों बन, पर्वतों में ज्ञान की खोज करते हुए फिरते रहे। अन्त में वे सम्वत् १९१७ विक्रमी को मथुरा में दंडी विरजानन्द की कुटिया पर आ पधारे। दंडी जी से साक्षात्कार करके इनको बड़ी प्रसन्नता हुई। पठन पाठन के विषय में चर्चा चलने पर दंडी जी ने आदेश किया कि अब तक जो भी अनार्ष ग्रंथ पढ़े हैं, उनको भुला दो। इस प्रकार स्वामी दयानन्द जी ने गुरु विरजानन्द के आदेशानुसार ऋषि कृत ग्रंथों का स्वाध्याय प्रारम्भ कर दिया।

विद्याध्ययन के पश्चात् स्वामी दयानन्द कुछ लौंग लेकर गुरुजी के पास पहुँचे परन्तु उन्होंने कहा "शिष्य, मैं इनसे भिन्न दूसरी वस्तु चाहता हूँ।" दयानन्द जी ने कहा "गुरु जी, सेवक

अपना मन सहित तन आपके चरणों में अर्पण किये हुए है।" गुरु जी ने कहा "भारत देश में दीन-हीन जन अनेक प्रकार के दुःख पा रहे हैं, उनका उद्धार करो।" स्वामी दयानन्द जी इस आदेश को शिरोधार्य करके, भारत में फैले हुए अन्धकार को मिटाने के लिये वैदिक सूर्य का प्रकाश लेकर विदा हो गये।

केवल एक कोपीन धारण करके हरिद्वार कुम्भ के महा मेले में पाखण्ड खण्डनी पताका गाड़कर उन्होंने वैदिक नाद गुंजा दिया। इसके पश्चात् उन्होंने प्रचार कार्य प्रारम्भ कर दिया।

एक बार स्वामी दयानन्द कर्णवास में ठहरे हुए थे। करौली के ठाकुर कर्णसिंह वहां आ पहुँचे। उनको पंडितों ने बहुत बहकाया। कर्णसिंह को क्रोध आगया। वह क्रोधित होकर कुछ आदमियों के साथ स्वामीजी के पास पहुँचा। तलवार से उन पर आक्रमण करना चाहा स्वामीजी ने उसे छीनकर उसके दो टुकड़े कर दिये।

स्वामी जी की विशाल मूर्ति को देखकर महाक्रोधी व्यक्ति भी शांत हो जाता था। एक बार रतीराम पहलवान झूमता हुआ स्वामी जी के निवास स्थान पर आ निकला और चिढ़कर कहने लगा "अरे यह बाबा तो बड़ा मोटा ताजा है।" यह कहकर वह उनकी ओर बढ़ा परन्तु ज्यों ही स्वामी जी ने अपनी तीव्र दृष्टि से उसकी ओर देखा उसका सारा क्रोध जाता रहा और वह उनके दर्शनों से प्रभावित होकर चरणों में गिर पड़ा।

स्वामी जी की ज्ञान-दृष्टि अपूर्व थी। एक बार नन्दकिशोर उपाध्याय उनके लिए रमास की फलियां तोड़ लाया और स्वामी जी को भेंट करदीं। उन्हें देख कर स्वामी जी ने कहा "ये फलियां दूसरे के खेत से बिना पूछे लाये हो। अतः हम

चोरी की वस्तु ग्रहण नहीं करेंगे" इस पर वह बड़ा लज्जित हुआ।

सोरों में एक बार स्वामी जी का वार्तालाप एक मायावादी साधु से हो गया। वह साधु आत्मा से प्रेम करने का झूठा राग अलापने लगा। इस पर स्वामी जी ने कहा "आप उस महान आत्मा से प्रेम क्यों नहीं करते। आपको अपने वस्त्र उज्ज्वल रखने का विचार है परन्तु कभी उन बन्धुओं का भी चिंतन किया है जो अपने देश में, लाखों की संख्या में भूख की चिता पर पड़े भीतर ही भीतर जलकर राख हो रहे हैं, जिन्हें पेट भर अन्न भी नहीं मिलता।" इस पर वह साधू बड़ा प्रभावित हुआ।

स्वामी जी के साथ उस समय के पंडितों ने कितनी ही बार शास्त्रार्थ किये। चांदपुर, काशी आदि स्थानों के शास्त्रार्थ बड़ा महत्व रखते हैं। उनकी अद्वितीय बुद्धि के चमत्कार और अकाट युक्तियों से सभी परास्त होते थे। उनके उपदेश का लोगों पर बहुत प्रभाव पड़ता था।

स्वामीजी ने अनेकों राजाओं को भी धर्म का उपदेश किया। जोधपुर के महाराज के निमंत्रण पर आप वहां कुछ समय तक ठहरे। एक दिन आपने राजमहल के एक भाग से एक वेश्या की पालकी को जाते देखा। इस पर स्वामी जी महाराज ने कहा "राजन्! राजा लोग सिंह समान हैं, स्थान २ पर भटकने वाली वैश्या कुतिया समान हैं। इस दुर्व्यसन से धर्म-कर्म नष्ट हो जाता है" इत्यादि।

इस कड़ी आलोचना का यह परिणाम निकला कि स्वामीजी को रसोइया द्वारा दूध में विष दिलाया गया। राज्य के डाक्टर अलीमर्दान खां ने उनका इलाज किया परन्तु रोग बढ़ता ही

गया। उसके पश्चात् स्वामीजी को अजमेर लाया गया जहाँ सम्वत् १९४० विक्रमी मंगलवार को उनका स्वर्गवास हो गया। भारत के एक कोने से दूसरे कोने तक शोक छा गया। स्थान-स्थान पर शोक सभाएं की गईं।

स्वामी दयानन्द महाराज ने हमारे देश की दशा को बहुत कुछ सुधार दिया। आर्यसमाज की स्थापना करके उसके द्वारा जो महत्वपूर्ण कार्य हुआ है वह किसी से छिपा नहीं। अनेकों विद्यालय, गुरुकुल, अनाथालय, विधवा आश्रम तथा अन्य उपयोगी संस्थायें बड़ा महत्वपूर्ण कार्य कर रही हैं। उस समय स्वामीजी ही एक ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने निर्भय होकर कहा "जब तक देश में अपना राज्य न हो तब तक धर्म की स्थापना नहीं हो सकती।" स्वदेशी के वे अनन्य भक्त थे। स्थान-स्थान पर स्वदेशी वस्तुओं का उपयोग करने का उन्होंने आदेश दिया है। स्त्रियों को पशु समान समझने की जो मनोवृत्ति हमारे देश में बन गई थी उसे स्वामीजी ने बिल्कुल बदल दिया और उन्हें पूजनीय ठहरा कर धर्म शास्त्र व वेद-पाठ का अधिकार दिलाया। इसका ही यह फल है कि आज भारतीय महिला समाज उन्नति की ओर जा रहा है। समस्त देशवासियों के आगे वेद का पवित्र आदेश रख कर झूठे मतमतान्तरों को छोड़ देने का जो पवित्र आदेश स्वामीजी ने दिया, उससे हमारे देश में बड़ी जागृति हुई है। हमारा धर्म और कर्तव्य होना चाहिये कि हम उनके आदेश से शिक्षा ग्रहण करके अपने आपको उन्नतिशील बनाकर अपने देश की अवस्था को सुधारें।

(उद्धृत)

व्यायाम

अंग्रेजी की कहावत है 'Sound mind in a sonnd body' अर्थात् स्वस्थ मस्तिष्क स्वस्थ शरीर में ही रह सकता है। इससे मस्तिष्क के काम करने वालों को सचेत किया गया है कि शरीर के बिना विचारा मस्तिष्क पंगु है। रोगावस्था में मनुष्य कभी भी कोई विचार का कार्य नहीं कर सकता। जो व्यक्ति भौतिक वादी हैं उनके लिये तो स्वास्थ्य और शरीर ही सब कुछ है। यदि शरीर स्वस्थ न होगा तो विश्व के भोगों को कैसे और कितने काल तक भोग पायेंगे ? अगले जन्म को तो वे मानते ही नहीं। अब रहे आध्यात्मवादी धार्मिक व्यक्ति जो इस संसार की अपेक्षा पर लोक के सुखों से अधिक आकृष्ट होते हैं। आगामी सुख के लालच से वे यहां के सुख को हेय समझते हैं। वे आगामी सुख की उपलब्धि का साधन धर्म बताते हैं। परन्तु धर्म बिना स्वस्थ शरीर के हो ही नहीं सकता। इसलिए विचार शील व्यक्ति कहा करते हैं—"शरीर माघ खलु धर्मसाधनम्" अर्थात् शरीर ही धर्म का मुख्य साधन है। जिस अनुपात से साधन पुष्ट, प्रबल और अमोघ होगा उसी मात्रा में कार्य-सिद्धि होगी। इसलिए ऐहिक और पारलौकिक सभी सिद्धियों के साधनभूत इस शरीर की उपेक्षा करना दोनों लोकों के सुखों से वञ्चित रहना है।

कुछ छात्र इतने विद्याव्यसनी होते हैं कि उनका शारीरिक स्वास्थ्य की ओर ध्यान ही नहीं जाने पाता। पहिले स्वास्थ्य के कारण कुछ दिनों तो उनकी गाड़ी चलती रहती है। परन्तु थोड़े ही दिनों में कोई भयानक रोग अपना पूर्व भयसूचक संकेत

(सिगनल) दिखा देता है। डाक्टर वैद्य पढ़ाई सर्वथा या नियत वर्ष तक छोड़ने की सम्मति देते हैं। इस पर भी यदि भयसंकेत की उपेक्षा हुई तो परिणाम वही होता है जो सिगनल को न देखकर धड़ाके के साथ चलती हुई रेलगाड़ी का होता है। दिन रात बैठे बैठे निरन्तर मानसिक परिश्रम करना स्वास्थ्य के नियम के सर्वथा विरुद्ध है। शरीर प्रत्येक कार्य-सिद्धि का शस्त्र है। जो सिपाही बिना शस्त्र के युद्ध-भूमि में पदार्पण करता है उसको प्राणदण्ड या भाग कर जान बचाने के अपयश के मिलता ही क्या है ? इसी प्रकार जो स्वस्थ शरीर रूपी शस्त्र के बिना ही युद्ध क्षेत्र में अवतीर्ण होते हैं उनके भी असफलता और प्राणदण्ड के अतिरिक्त कोई वस्तु हाथ नहीं आती। भिश्ती की पीठ में और देहाती डाकिए की टांगों में अधिक बल होता है। पहलवान के प्रत्येक अङ्ग बलिष्ट व हृष्ट पुष्ट दृष्टिगोचर होते हैं। घुड़ सवारों की जंघाओं में अधिक शक्ति होती है।

व्यायाम करने वाले के सामने रोग भी आते डरता है। बात यह है व्यायाम करते समय शरीर से प्रस्वेद निकलता है। उससे अन्तःस्थ दूषित बाह्य तत्त्व निकल जाते हैं और शरीर में कोई फोड़ा फूंसी आदि विकार नहीं करने पाते। दूसरे व्यायाम करने वाले व्यक्तिका व्यायाम के उपरान्त मस्तिष्क के कार्य में चित्त रमता है और घण्टों में स्मरण होने वाला पाठ कुछ ही मिन्टों में स्मरण हो जाता है।

नियम-पूर्वक व्यायाम करने वाले के शरीर पर एक विशेष प्रकार की कान्ति होती है जो उसके सौन्दर्य को बढ़ाती है। सौन्दर्य से मनुष्य का स्वाभाविक प्रेम है। स्त्रियां तो सौन्दर्य की बहुत ही इच्छुक होती हैं। अपने मुख पर सहज चमक न

पाकर कृत्रिम चूर्ण तथा रंगों से उसकी पूर्ति किया चाहती हैं। यह उनकी भूल है। वे नहीं समझतीं कि 'सौन्दर्य' और 'अच्छा स्वास्थ्य' परस्पर पर्यायवाची से कम नहीं। अच्छा स्वास्थ्य बिना व्यायाम के दुर्लभ है, इसलिए व्यायाम ही सौन्दर्य की कुञ्जी है। पश्चिम देशों में महिलाएं सौन्दर्य और स्वास्थ्य को बढ़ाने के लिए विविध प्रकार के व्यायामों की शिक्षा लेती हैं। दूसरी ओर भारत में शिक्षित स्त्रियां न शारीरिक काम ही किया चाहती और न व्यायाम में ही रुचि रखतीं। फलस्वरूप उनका स्वास्थ्य दिन प्रतिदिन पतन की ओर जा रहा है और इसका प्रभाव उनकी सन्तान के स्वास्थ्य पर बहुत बुरा पड़ रहा है।

व्यायाम करने से मनुष्य की शारीरिक शक्ति की वृद्धि तो होती ही है इसमें तो कोई सन्देह ही नहीं। शारीरिक बल वृद्धि से मनुष्य में आत्म-विश्वास का भाव बढ़ता है। यदि उसे कोई मस्तिष्क का काम न भी मिले तो वह शारीरिक उद्योग से ही अपना और पारिवारिक जनों का पेट भर लेता है। शत्रु का सामना करते हुए भी वह तनिक भी भयभीत नहीं होता। आत्म-रक्षा की दृष्टि से व्यायाम द्वारा शरीर बल बढ़ाना स्त्रियों के लिए परम आवश्यक है। यूनान में प्राचीन काल में शारीरिक खेलों और व्यायाम को राजकीय रूप से सर्वप्रिय बनाया गया था। उसकी देखा देखी हिटलर ने जाति का शारीरिक बल बढ़ाने के लिए सैनिक-शिक्षा अनिवार्य कर दी। उसके साथ साथ प्रति पांचवें वर्ष पुनः उसका अभ्यास कराया जाता रहा। फल यह हुआ कि वहां के युवक युवतियों का विश्वभर में अद्भुत स्वास्थ्य, सौन्दर्य और उत्साह था।

शरीर को स्वस्थ व पुष्ट रखने के लिये जितना आवश्यक

अच्छा भोजन है उतना ही शारीरिक व्यायाम भी है ! जिस कार्य के करने से हमारे अङ्ग प्रत्यङ्ग का परिचालन हो उसे व्यायाम कहते हैं। मल्लयुद्ध, मुद्गरवाना, पट्टा आदि भांजना, दण्ड व कसरत करना, कबड्डी खेलना, दौड़ना, टहलना, तैरना, नाव खेना, घोड़े पर चढ़ना आदि विविध प्रकार के देशी व्यायाम होते हैं। ये व्यायाम अधिक व्यय वाले न होने के कारण सर्वसुलभ होते हैं। भारत में अंग्रेज़ों के संसर्ग से विदेशी खेल भी पर्याप्त प्रचलित हो गये हैं, उदाहरणार्थ—फुटबाल, हाकी, क्रिकेट, टेनिस, बालीबाल आदि। विद्यार्थियों में हाकी, फुटबाल, और क्रिकेट का अच्छा प्रचार हो गया है। बालीबाल और टेनिस लड़के लड़कियाँ सभी खेलते हैं !

इनमें से जो खेल जिसकी रुचि के अनुकूल हो उसके लिये वही हितकर है। परन्तु तथापि बालकों के लिये वही खेल हितकर हैं जिनमें व्यायाम के साथ मनोरंजन भी होता हो। युवकों के लिये मुद्गर, कुश्ती, हाकी, फुटबाल आदि उपयोगी होते हैं क्योंकि इनसे अङ्ग सुडौल और गठीले बनते हैं। बूढ़ों तथा स्त्रियों के लिये सायं प्रातः घूमना लाभदायक होता है। स्त्रियों के लिये चूल्हे-चौके, चक्की या दूध बिलोने आदि के ऐसे जीवनोपयोगी घरेलू काम होते हैं जो काम के काम और व्यायाम के व्यायाम हुआ करते हैं। ग्राम्य किसानों की स्त्रियों या नगर में भी अच्छे स्वास्थ्य वाली महिलाओं के अच्छे स्वास्थ्य और शारीरिक बल का यही कारण है।

जिन घरों में पर्दा-प्रथा प्रचलित है, वहाँ स्त्रियों का व्यायाम की ओर ध्यान नहीं जाने पाता। वे स्त्रियाँ न खुले वायु में भ्रमण ही कर पातीं, न खेल ही खेल सकतीं। उसका परिणाम यह हो

रहा है कि उसका स्वास्थ्य दिन प्रतिदिन रसातल की ओर जा रहा है। साथ ही उनकी सन्तान भी दुर्बल, रोगी और हतोत्साह होती है। इस लिये ऐसे घरों में स्त्रियों के व्यायाम का कोई न कोई प्रबन्ध अवश्य होना चाहिये।

व्यायाम के अनेक लाभ हैं। मनुष्य अपने शरीर के जिस अंग से अधिक कार्य करता है वह अङ्ग अन्य अंगों की अपेक्षा अधिक बलवान् और कार्यक्षम बन जाता है। उदाहरणार्थ लोहार व मिस्त्री के हाथ।

शारीरिक व्यायाम के सम्बन्ध में दो बातें सदा स्मरण रखनी चाहिये। एक तो यह कि व्यायाम अपनी शक्ति से अधिक कदापि नहीं करना चाहिये, दूसरी यह कि भोजन के उपरान्त व्यायाम अत्यन्त हानिकारक होता है। व्यायाम करने वाले को यदि सम्भव हो तो पौष्टिक पदार्थ खाने चाहियें। कम से कम दूध का सेवन तो नियमपूर्वक करना ही चाहिये। जिनको पौष्टिक पदार्थ बहुत मिलते हैं उन्हें व्यायाम भी उसी अनुपात से करना चाहिये। ऐसा न करने से शरीर में अनावश्यक रूप से चर्बी बढ़ जाती है और शरीर फूल जाता है।

भारत के बालक युवक, तथा युवतियों को व्यायाम अवश्य करना चाहिये क्योंकि इससे जहाँ उनका निज का हित सिद्ध होता है वहाँ देश और जाति के भी वे अधिक काम आ सकते हैं। स्वस्थ सैनिक और सैनिकाएं उन्हीं ने बनना है। भावी राज्य-भार उन्हीं के पुष्ट कन्धों से संचालित होना है।

स्वास्थ्य

विषय-तालिका :—

१. भूमिका—स्वास्थ्य और सुख का सम्बन्ध। स्वास्थ्य से धर्मार्थ काममोक्ष की उपलब्धि।
२. विश्व के पदार्थ स्वस्थ के लिए ही बने हैं।
३. कृषक की निलाई के समान प्रकृति भी निलाई करती है। योग्यतम ही शेष रहते हैं।
४. उदाहरण।
५. स्वास्थ्य के मूलाधार।
६. उपसंहार।

पहिला सुख नीरोगी का आया, दूजा सुख पास हो माया।
तीजा सुख सुत आज्ञाकारी, चौथा सुत सुलक्षणा नारी॥

ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप है। आनन्दमय होना भी उसका स्वभाव है। मानव भी स्वभावतः सुखाभिलाषी है। इस सुखरत्न की गवेषणा में वह मारा-मारा फिरता है। कभी आनन्दस्वरूप प्रभु की प्रार्थना करता है, कभी प्रकृति में उस आनन्द या सुख की खोज करता है, तो कभी अपने अन्दर ही उसे देखना चाहता है। जिस अनुपात में व जिस मात्रा में मनुष्य इस सुख को प्राप्त करने में सफल होता है, उसी मात्रा या अनुपात में उसका जीवन सफल कहाता है। हमारे पूर्वज दूरदर्शी विचारकों ने 'धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष' ये चार मनुष्य जीवन के उद्देश्य माने हैं। इनमें से धर्म और मोक्ष का सुख परलोक और अर्थ (धन) और काम का सुख इसी संसार में मनुष्य को सुखी बनाता है। आस्तिक से आस्तिक और नास्तिक से नास्तिक

सभी के सुख इनमें आ जाते हैं। परन्तु जिसको उक्त चार बातों में से एक की भी प्राप्ति नहीं हुई, उसका जन्म, नीतिकार कहते हैं बन्दरी के गले के थन के समान निष्फल है—

धर्मार्थ काममोक्षाणां यस्यैकमपि न विद्यते।
अजागल स्तनस्येव तस्य जन्म निरर्थकम्॥

परन्तु उक्त चारों उद्देश्यों की पूर्ति का एक मात्र साधन स्वस्थ शरीर है—'धर्मार्थं काममोक्षाणां शरीरं साधनं स्मृतम्।'

कई मिथ्या-धर्मात्माभिमानी शरीर की उपेक्षा करने का उपदेश देते हैं, परन्तु उन्हें पता नहीं कि धर्म शरीर के बिना हो ही नहीं सकता। रोगी व्यक्ति तो औरों पर भार ही बना रहेगा। वह उपकार क्या कर पाएगा। आज का विश्व 'अर्थ' अर्थात् धन को विशेष महत्त्व देता है। संस्कृत के कवि ने इसका अच्छा चित्र खींचा है—

टका धर्मष्टका कर्म टका हि परमं तपः।
यस्य गृहे टका नास्ति हा टकाटकटकायते॥

परन्तु इस टके को यदि मस्तिष्क बल से नौकरी आदि द्वारा उपार्जन करना है तो भी 'Sound mind in a Sound body' के अनुसार स्वस्थ मस्तिष्क स्वस्थ शरीर में ही सम्भव है और यदि धन शारीरिक बल से कमाना है, तो उसके लिए तो शरीर का स्वस्थ व पुष्ट होना परम आवश्यक है। काम की पूर्ति का साधन गृहस्थ है। सफल गृहस्थी स्वस्थ पुरुष ही बन सकता है, इसमें सन्देह को अवकाश ही नहीं। मोक्षार्थी योगी को तो प्राणायाम और आसनों आदि द्वारा इस शरीर का इतना ध्यान रखना पड़ता है जितना कि अन्य किसी को भी नहीं।

आज का विश्व परलोक का यदि उपहास भी करे तो वह

तो मानना ही पड़ेगा कि इस लोक के सुख तो वीर ही भोगता है—'वीर भोग्टावसुन्धरा'। वीर का स्वास्थ्य आदर्श स्वास्थ्य ही होगा।

बिश्व में निर्बल, रोगी और पराश्रितों को कोई स्थान नहीं। स्वामी रामतीर्थ अमेरिका के ग्राम का भ्रमण कर रहे थे। अकस्मात् एक कृषक को मकई की निलाई करते देखा। कृषक कुछ मक्की के पौधों को उखाड़ कर फैंकता जा रहा था, दूसरों को उनकी मिट्टी से और भी दृढ़ बनाता जा रहा था। स्वामी जी ने सोचा, किसान मूर्ख है। पहिले घर से मक्की के दाने मिट्टी में फेंक दिए, जब उग आए तो उखाड़ कर फेंकता जा रहा है। कुछ देरी से समझ में आया, मूर्ख तो नहीं, पर किसान पक्षपाती है क्योंकि कुछ पौधों को निर्दयता से उखाड़ता और कुछ को और पुष्टतर बनाता जा रहा है। कुछ और देखने से पता चला कृषक न मूर्ख है न पक्षपाती वरन् जानकार न्यायकारी है क्योंकि पीले, पतले पौधों को उखाड़ होनहार हरे-भरे पौधों को बचा रहा है। वे ही अच्छे फूल फल सकते हैं। इससे ही दूसरे शब्दों में योग्यतमावशेष (Servival of the fittest) के विश्वव्यापी नियम की चरितार्थता की पुष्टि होती है।

प्रकृति रूपी किसान दिन रात विश्व खेत में अद्भुत २ साधन रूपी खुरपे से दुर्बल तथा अवांछनीय प्राणियों तथा वनस्पतियों की नीलाई कर उन्हें समाप्त करने और पुष्टों को चिरस्थायी और पुष्टतर बनाने में लगी है। प्रातःकालीन मन्द-सुगन्ध और शीतल वायु लंगोट कसे दौड़ लगाने वाले स्वस्थ व्यक्ति को शुद्ध दूध के गलास से भी अधिक पुष्टि देती है, परन्तु वही वायु कपड़ों की तह में से प्रवेश कर दुर्बल व्यक्ति की

छाती का स्पर्श कर उसे नमोनिया, खांसी आदि द्वारा सदा के लिए सुला देती है। सूर्य की किरणों में रोग नाशन की शक्ति है परन्तु दुर्बल के लिए वही सन स्टोक का कारण बनती है। दूध और मक्खन जैसे अमृतमय पदार्थ बलवान और स्वस्थों को पुष्ट परन्तु निर्बल और रोगी के लिए पिशूचिका का कारण बनते हैं। खांसी, ज्वर, दमा, अतिसार तथा नाना प्रकार के संक्रामक रोग प्रकृति के अवांछनीय प्राणियों को विश्ववाटिका से उन्मूलन करने के खुरपे हैं। प्रकृति को स्वस्थ और नीरोग व्यक्ति चाहिए। उसके लिए वह दिन प्रतिदिन नाना प्रकार के पदार्थ उत्पन्न करती रहती है। एक सिंह को पालने के लिए असंख्य मुर्गी, हिरण और मोर आदि की आहुति उसके जठरानल में डालनी उसे अभीष्ट है। एक भयानक मगरमच्छ के पालने के लिए हजारों छोटी-मोटी मछलियों की बलि में भी वह पाप नहीं समझती। बाज को भी छोटी-मोटी चिड़ियाओं तथा उनके अण्डों को खाकर हृष्ट पुष्ट बनने का जन्मसिद्ध अधिकार है। 'जीवेम शरदःशतम्' की दोनों काल प्रार्थना करने पर भी स्वास्थ्य के प्राकृतिक नियमों का उल्लंघन कर देने से वह अधिक नहीं जीने देती।

भला दुर्बल को जीने का क्या अधिकार! बन में जब आग लगी तो वायु उसके बल को देख उसका मित्र बनकर बन दहन का कारण बना। परन्तु उसके भय से भवन के कोने में छिपे टिमटिमाते दीपक को एक ही थपेड़े से उस पार पहुँचा देती है। सच है—

सबहि सहायक सबल के निर्बल को न सहाय।
पवन जगावत आग को दीपहि देत बुझाय॥

हिटलर ने जर्मन की बागडोर हाथ में लेते ही, सबसे पूर्व जाति के स्वास्थ्य को सुधारा। खान-पान, रहन-सहन सब स्वास्थ्यप्रद बना दिया। विलासिता को बहिष्कृत कर दिया। दूसरी ओर फ्रांस ने पेरिस से नित नए फैशनों के आविष्कारों में अभूतपूर्व उन्नति की। द्वितीय विश्व-युद्ध में विश्वविजेता नैपोलियन का देश दृढ़तम (सीगफ्रीड मेज़िनोट) रक्षा पंक्ति की ओट में भी छुप कर उग्र जर्मन्य स्वस्थ सैनिकों के पांव तले रौंदने से न बच सका। तत्कालीन प्रधान मन्त्री पेटान को कहना पड़ा, 'हथियार छोड़ने का कारण यह था कि फ्रांस की सेना में ४० वर्ष से कम आयु का कोई भी युवक जर्मन के सैनिकों के तुल्य स्वस्थ व लड़ाका न था। विलासिता के घुन ने जाति को खोखला बना दिया है।'

आदर्श स्वास्थ्य के भव्य भवन के मूलाधार चार स्तम्भ हैं—

(१) सरल, सात्विक तथा पौष्टिक भोजन।

(२) व्यायाम।

(३) वीर्यरक्षा।

(४) शुद्धता।

१. सात्विक, सरल, पौष्टिक भोजन में दूध, मक्खन, घी, शुद्ध अन्न, फल और शाकभाजी आदि आते हैं। शाकभाजी आदि में मिर्च मसाले आदि का यथा-सम्भव कम प्रयोग होना या सर्वथा अभाव होना चाहिए। जीभ के स्वाद की अपेक्षा सारे शरीर के स्वास्थ्य का अधिक ध्यान रखना चाहिए। भोजन का नियत समय और स्थान अवश्य होना चाहिए। भोजन थोड़ा और चबा-चबाकर खाना चाहिए। भोजन सामग्री में सब प्रकार के भोजन-तत्त्वों को समावेश करने वाले पदार्थ होने

चाहिएं ताकि शरीर को सभी आवश्यक तत्त्व मिलते रहें।

भोजन को पचाने और अंगों को दृढ़ और सुडौल डौल बनाने के लिए कोई व्यायाम भी अवश्य करना चाहिए। महात्मा गान्धी और स्वामी दयानन्द जैसे परोपकार आदि के कार्य में व्यस्त महापुरुष भी भ्रमण आदि के लिए प्रातःकाल का अमूल्य समय अवश्य निकालते रहे।

वीर्य शरीर की सब धातुओं का राजा है। मास भर के भोजन के उपरान्त कुछ ही बून्दें वीर्य की बन पाती हैं। इनके ही कारण शरीर में शक्ति, स्फूर्ति और ज्योति दृष्टिगोचर होती है। शरीर में वीर्य की सत्ता ही जीवन और इसका अभाव ही मरण है। (जीवनं बिन्दुमात्रेण मरणं बिन्दुपातनात्।) अभागे अनजान नवयुवक इसके मूल्य को पानी के समान भी नहीं समझते। एक व्यक्ति अपनी बिजली और नलके को बड़ी कंजूसी से उपयोग में लाता है कि कहीं अधिक व्यय न हो। परन्तु अभागे युवक इस अमूल्य रत्न (वीर्य) का मूल्य पानी जितना भी नहीं आंकते। परिणाम-दुर्बलता, असमर्थता, उदासी और नाना प्रकार के रोग होते हैं। कुछ विद्यार्थी अनजाने से कुसंग में पड़कर इसे खो देते हैं और स्मरण शक्ति, मेधा और तेज से सदा को हाथ धो बैठते हैं। गृहस्थियों के लिए भी इसकी रक्षा कम आवश्यक नहीं।

शुद्धता में वायु, वस्त्र, शरीर आदि की बाह्य शुद्धियों के साथ ९ विचारों की शुद्धि का होना भी स्वास्थ्य के लिए अनिवार्य है। सद्भावनाओं और अच्छे विचारों का शरीर पर गहरा प्रभाव पड़ता है।

भारतवर्ष की प्रतिशत आयु और स्वास्थ्य, उत्तम खाद्य

सामग्री के अभाव के कारण अन्य देशों से बहुत गिर गए हैं। यहां खाद्य सामग्री शुद्ध रूप से मिलती ही नहीं। दूध घी आदि अमृतमय पदार्थों के नाम कोटोजम आदि के जम (यम) शरीर में से शीघ्र ही प्राण निकालने की चिन्ता में हैं। सिनेमा, फ़ैशन आदियों से वातावरण वीर्य रक्षा के सर्वथा प्रतिकूल होता जा रहा है। गाय रखने की आज्ञा या सुभीता नहीं और कुत्तों के पालने का प्रचार हो रहा है। सौभाग्य-वश अब भारत स्वतन्त्र है। स्वास्थ्य-विभाग को जाति के स्वास्थ्य-निर्माण की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए ताकि इसकी स्वतन्त्रता सदा के लिए बनी रह सके। प्रत्येक व्यक्ति को भी चाहिए कि वह अपने तथा आत्माश्रितों के स्वास्थ्य का पूरा-पूरा ध्यान रखे। यदि इस पर पूरा ध्यान दिया जाय तो पाउडर, लिपस्टिक आदि की तनिक भी आवश्यकता न पड़ेगी, शारीरिक तेज ही अद्भुत सुन्दरता को बढ़ाने में समर्थ होगा। इस स्वास्थ्य की प्राप्ति से ही हम यहां सुखी और परलोक में शान्ति प्राप्त कर सकेंगे। 'Health is Wealth' स्वास्थ्य सबसे बड़ी पूंजी है। इसे प्रत्येक को सम्भाल के रखना चाहिए।

सत्य

विचार-तालिका :—

१. भूमिका—सत्य किसे कहते हैं ? सत्य और असत्य में अन्तर ।
२. असत्य से क्षणिक लाभ परन्तु भावी परिणाम भयावह ।
३. असत्य से बचने का उपाय—प्रारम्भ में ही सतर्क रहना ।
४. असत्य से हानि—लोगों का अविश्वास, उस से हीनवृत्ति की उत्पत्ति और आत्म सम्मान घटना आदि ।
५. सत्यव्रत के लिए कष्ट सहिष्णुता की शक्ति आवश्यक ।
६. सत्यपालन निष्काम भावना से करना चाहिए ।
७. भारत में व्यापार में झूठ और उस का परिणाम ।

सांच बरोबर तप नहीं, झूठ बरोबर पाप ।
जाके हिरदय सांच है, ताके हिरदय आप ॥

'सत्' का अर्थ स्थायी अथवा कभी नाश न होने वाला है। इस का विपरीतार्थक 'असत्' या 'झूठ' है । स्वप्न झूठे होते हैं क्योंकि आँख खुलते ही उन की सत्ता नहीं रहती । झूठ अस्थिर है और सत्य स्थिर । सत्य सब के लिए हितकारी और असत्य विनाशकारी होता है ।

अपने या दूसरों के लिए कभी भी असत्य नहीं बोलना चाहिए । सत्यपालक महापुरुष वह होता है जो जैसा मन से सोचे वैसा कहे और जैसा कहे वैसा करे । दुष्ट व्यक्ति के मन, वचन और करनी में अन्तर होता है । कहा भी है—

"मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम् ।
मनस्यन्यद्वचस्यन्यत्कर्मण्यन्यद्दुरात्मनाम् ॥"

इस त्रिविध एकता का नाम ही सत्य है। इस सत्य का पालक ही सत्यव्रती कहलाता है।

मनुष्य त्रुटियों का पुतला है। त्रुटियों का होना मनुष्य के लिए स्वाभाविक है। हम सब कभी न कभी कोई न कोई भूल-चूक अवश्य करते हैं। हम ईश्वर नहीं जो इन से अछूते बच सकें। परन्तु जब हमें यह विदित हो जाय कि हम से अमुक दोष या भूल हुई है तो उसे छुपाना नहीं चाहिए वरन् स्वीकार कर लेना चाहिए। कोई हम भी दोष थोड़ा कर रहे हैं? अन्य भी तो करते हैं। अपने दोष को छुपाना कायरता है। इस कायरता से ही झूठ की उत्पत्ति होती है। असत्य बहुधा लुभावना होता है; शीघ्र सफलता का प्रलोभन दिखाता है। किन्तु इस फन्दे में फँसना भूल है। असत्य से, निस्सन्देह कभी कभी थोड़े परिश्रम से सफलता मिल सकती है, किन्तु यह लाभ भावी बृहत्तर लाभों को दूर फैंक देता है। जो व्यक्ति लगातार झूठ का आश्रय लेते हैं उन पर से मित्रों और समाज का विश्वास ही उठ जाता है, जिस से बड़ी से बड़ी हानि की सम्भावना हो सकती है। जब हम आशु-सफलता के प्रलोभन के वशीभूत हो असत्य का आश्रय लेते हैं, तब हम दूरदर्शिता से काम नहीं लेते। हमारी दृष्टि केवल क्षणिक लाभ पर टिकती है उस के परिणाम-स्वरूप भावी हानि तक नहीं जाती। यदि दूरदर्शिता से परिणाम पर विचार किया जाय तो असत्य से हानियां दृष्टिगोचर होंगी। धीरे २ असत्य से घृणा और सत्य से प्रेम बढ़ेगा। कहा जाता है—खून छुपाए नहीं छुपता। ठीक यही बात असत्य पर घटती है। कभी न कभी असत्य अवश्य ही प्रगट होके रहेगा।

असत्य से बचने के लिए विशेषरूप से सतर्क रहने की आवश्यकता होती है। तनिक भी असत्य का आश्रय लेने से असत्य की पापमयी प्रबल धारा में बहना पड़ता है। जब मनुष्य थोड़ा सा भी झूठ उपेक्षाभाव से बोलता है तो वह नहीं समझता कि उस ने कितना भयानक उत्तरदायित्व का भार अपने सिर पर लिया है। एक असत्य को छुपाने के लिए, असत्य परम्पराओं की सृष्टि करनी पड़ती है। इस लिए सत्य के मार्ग के अवलम्बन के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि तनिक भी असत्य का आश्रय न लिया जाय, अन्यथा झूठ के भंवर से निकलना ही कठिन हो जाता है। कभी वह दुर्दिन भी आता है जब झूठ हमारा स्वभाव बन जाता है और छुड़ाने का प्रयत्न करने पर भी पीछा नहीं छोड़ता। इस प्रकार असत्य अन्ततोगत्वा बड़ा महंगा सौदा बन जाता है। असत्यभाषी व्यक्ति मानसिक बैचेनी के आवर्त में ऐसा फंसता है कि शांति-तट के दर्शन भी नहीं होने पाते। उसे सदा यही भय लगा रहता है कि कहीं किसी ने मेरा झूठ समझ न लिया हो। उस की आत्मा उसे इस के लिए कोसती रहती है। मुख पर कई रंग आते जाते रहते हैं। जब उस के झूठ का पता लगता है तो सब लोग उसे घृणा की दृष्टि से देखने लगते हैं। पहले मिथ्या यश की भी पोल खुल जाती है। भविष्य के लिए जीवन डांवाडोल बन जाता है। जो वह कहता है उस पर कोई विश्वास नहीं करता, वह जितनी ही अधिक शपथ करता है उतना ही दूसरा सन्देह करने लगता है। परिणाम यह होता है कि रही सही आत्म-सम्मान की भावना भी नौ दो ग्यारह हो के रहती है। आत्म-सम्मान की स्थानापन्न हीनवृत्ति हो जाती है। मनोवैज्ञानिक

लोग बताते हैं कि हीनवृत्ति से अनेक प्रकार के मानसिक रोग उत्पन्न होते हैं।

सत्य का आश्रय व्यक्ति के ही लिए उपयोगी व आवश्यक नहीं, वरन् समाज व जाति के लिए भी परम हितकर है। जिस जाति तथा समाज के व्यक्ति सत्यव्रत को निभाते हैं वह समाज व जाति विश्व भर के लिए विश्वसनीय तथा आदरणीय हो जाते हैं। सत्यव्रत को निभाने के लिए कष्टसहिष्णुता की शक्ति का होना आवश्यक है। वह शक्ति दृढ़ सङ्कल्प का अनुसरण करती है। जहां सत्य पर अटल रहने का दृढ़ सङ्कल्प किया वहीं कष्ट पुष्प-शय्या दीखने लगते हैं। ज्यों ज्यों सत्य पर श्रद्धा बढ़ती जाती है त्यों त्यों विघ्न-बाधाएं तुच्छ दीखने लगती हैं। राजा दशरथ वचन की रक्षा के लिए राम-समान सुपुत्र को वन भेज सकते हैं और उन के वियोग में तड़प तड़प कर प्राण त्याग सकते हैं, परन्तु वचन नहीं टाल सकते। कहा भी है—

रघुकुल रीत सदा चली आई।
प्राण जाय पर वचन न जाई॥

यह सत्यपालन की चाट राजा हरिश्चन्द्र को भी लगी थी। जो बड़े गर्व के साथ घोषणा कर सकते थे—

चाँद टरै सूरज टरै, टरै जगत व्यवहार।
टरै न पै हरिचन्द कू, कभी सत्य व्यवहार॥

महात्मा गांधी ने इस नीति और छलबल के युग में भी सत्य का पालन किया। ऐसे महापुरुषों को अपनी बात की पुष्टि के लिए शपथ या गवाही की आवश्यकता नहीं पड़ती। उन का वचन वेदवाक्य माना जाता है। ऐसे ही पुरुष आप्त और उन के वचन आप्त-वाक्य समझे जाते हैं।

सत्य का पालन निष्कामभाव से करना चाहिए, अर्थात् सत्य का पालन सत्य के लिए होना चाहिए किसी फल के लिए नहीं। कई व्यक्ति झूठे को झूठ से लाभ होते देख निरुत्साह हो जाते हैं। वस्तुतः उन की सत्य पर श्रद्धा नहीं होती। वे शीघ्र ही उपयोगितावाद के अनुयायी बन असत्य का आश्रय ले बैठते हैं। ऐसे सत्य-पालन की भावना असत्य से भी बुरी है। यद्यपि सत्य का शुभ फल अवश्यम्भावी होता है, तथापि हमें उस की ओर दृष्टिपात नहीं करना चाहिए। जो वस्तु स्वयं मिलने वाली हो उस के विषय में चिन्ता ही क्या? वास्तविक सत्यव्रती वही है जो सत्य के नाम पर कष्ट सहने को उद्यत हो, फल का लोभ उसे किञ्चिन्मात्र भी न हो।

भारतवर्ष में व्यापार में असत्य का सहारा आवश्यक समझा जाता है। उस का फल यह हो रहा है कि व्यापारी जब किसी वस्तु का मूल्य बताता है तो ग्राहक उस में आधे से अधिक झूठ समझता है। चार आने की वस्तु के लिए आधे घण्टे तक मूल्य में घटती बढ़ती पर वादविवाद चलता रहता है। अन्त में कहीं आधे पर आकर मूल्य निर्धारित होता है। लाला जी की झूठी कसमों का कोई मूल्य ही नहीं आंका जाता। इस प्रकार दोनों का व्यर्थ में अमूल्य समय व्यय होता है। पश्चिम देशों में व्यापार में खोट व झूठ आवश्यक नहीं समझा जाता इस लिए उन का व्यापार में उन्नत है। सारांश यह कि सत्य का पालन जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में आवश्यक है। सत्य से ही सर्वत्र विजय (सफलता) होती है:—

'सत्यमेव जयते नानृतम्'

अनुशासन

विचार-तालिका:—

१. भूमिका—अनुशासन का अभिप्राय व महत्त्व।

२. (क) नियमों के पालन से ही स्वतन्त्रता का यथावत् उपभोग सम्भव।

(ख) सामाजिक व राजनैतिक आदि नियमों का उल्लंघन करने से अव्यवस्था व नाश।

३. प्राकृतिक पदार्थ नियम परतन्त्र, इसी लिए उनमें सुन्दरता।

४. अनुशासन भेद—बाह्य व आन्तरिक अनुशासन।

५. जीवन की प्रत्येक शाखा में अनुशासन की आवश्यकता।

६. उपसंहार—आत्मानुशासन से समय की बचत।

किसी नियम या व्यक्ति के शासन में रहना 'अनुशासन' कहलाता है। अनुशासित व्यक्ति या वस्तु में स्वतः सौन्दर्य का समावेश हो जाता है। अनुशासन से ही लोक स्थित है। अनुशासन-भंजन अव्यवस्था और विनाश को जन्म देता है। ये सूर्य, चन्द्र, तारे सब नियम-विशेष से अनुशासित हैं, तभी ये सुन्दर और लुभावने लगते हैं। दिन रात, सायं प्रभात तथा ऋतुचक्र में अनुशासन है। ये प्रकृति के नियम पर चलते हैं, इसीलिए बार-बार आने पर भी इनमें नित नई शोभा और आकर्षण दृष्टिगोचर होता है। यदि क्षण भर के लिए भी नभोमण्डल के तारे अपनी परिधि पर ही चक्र काटने के नियम को भंग कर यत्र तत्र इतनी ही द्रुत-गति से दौड़ लगाएं, तो पल भर में ही संसार नष्ट-भ्रष्ट हो जाय। अतः अनुशासन ही विश्व को थामे हुए है। इसका अभाव ही अव्यवस्था या प्रलय कहलाता है।

आज का युग 'स्वच्छन्दता' और 'स्वेच्छाचारिता' का युग

है। आज के युवक तथा युवतियां विशेष रूप से इसके उपासक हैं। पराधीनता का दुःख सबको खटकता है, वह पराधीनता चाहे नियम की हो चाहे व्यक्ति की। स्वतन्त्रता सबका जन्मसिद्ध अधिकार है। परन्तु इसका लाभ भी व्यक्ति या समाज को तभी हो सकता है जब वे इसके उपयोग के कुछ नियम निर्धारित करें तथा उन नियमों का पालन करें। सड़क पर चलने का सबको समानाधिकार है। तो भी इसका यथावत् उपभोग तभी सम्भव हो सकता है जब उसके दाईं बाईं ओर चलने आदि के कुछ नियम नियत किये जायं। यदि प्यादे, साईकल, मोटर व बस आदि वाले इन नियमों का उल्लंघन करें तो परिणाम यह होगा कि सड़क पर चलना उस युद्धभूमि से जहाँ बम्बारी हो रही हो कम भयानक न होगा। यही बात रेलवे स्टेशन, विद्यालय, सिनेमा-भवन आदि के सम्बन्ध में चरितार्थ होती है।

समाजशास्त्र अथवा धर्मशास्त्र सिखाता है—'सत्य बोलो', 'चोरी न करो', 'सदाचारी बनो' आदि। जो व्यक्ति, जाति या समाज इन विधान और निषेधों का पालन करता है, वह सच्चा, सदाचारी, धर्मात्मा और सम्पन्न बनता है परन्तु जो उद्दण्डता तथा स्वेच्छाचारिता का पक्षपाती जनसमाज इनकी अवहेलना करता है वह चोर, जार, लम्पट और निर्धन रहता है। यही बात राजनैतिक तथा सामाजिक नियमों के विषय में घटती है। सारांश यह कि इन सब नियमों के पालन में आंशिक स्वतन्त्रता का त्याग तो करना ही पड़ता है, परन्तु यह त्याग हमारे अपने ही लाभहित और कल्याण के लिए होता है।

जैसा कहा गया है, कुछ युवक और युवतियां उच्छृङ्खल

स्वतन्त्रता के लिए बड़े लालायित रहा करते हैं। इसके लिए वे उच्छृङ्खल पश्चिमी समाज के उदाहरण पुष्टि के लिए रक्खा करते हैं। छात्र तथा छात्राओं को घर में माता-पिता और विद्यालय में अध्यापकों के नियन्त्रण में रहना पड़ता है। रात्रि को छात्रावास से अनुपस्थित न होने, समयानुसार सोने जागने, पढ़ने लिखने, खेलने आदि के नियम उन्हें पराधीनता या दासता की बेड़ियां दीखती हैं। बहुधा इनसे ऊबकर थोड़ा-सा कोई बहाना मिलने पर वे शीघ्र ही हड़ताल की घोषणा कर बैठते हैं। इस प्रकार वे माता पिता, विद्यालय या विश्वविद्यालयों के प्रबन्धकों के नाकों दम कर देते हैं। परन्तु यदि उन्हें स्वेच्छाचारिता की खुली छुट्टी दी जाय तो शीघ्र ही कटु अनुभव से विदित हो जायगा कि ये सब बन्धन उनके हित के ही लिए बने हैं। अज्ञानता में और उत्तर-दायित्व भावना को पूर्ण रूप से हृदयङ्गम न करने की अवस्था में स्वेच्छाचारिता की इच्छा करना ऐसा ही घातक सिद्ध होता है जैसा कि बच्चे का चमकीली तलवार के लिए हठ करना। सुविख्यात अंग्रेज़ी भाषा के कवि वर्डसवर्थ (Wordsworth) को अपने यौवन काल में इस अनियन्त्रित स्वेच्छाचारिता के उपभोग की उग्र अभिलाषा हुई। सौभाग्यवश उसे इसका अवसर भी मिला। उसने इच्छा को ही जीवन नौका का माँझी बना दिया। स्वयं उसका आज्ञाकारी अनुचर बना रहा। परिणाम यह हुआ कि वह शीघ्र ही उच्छृङ्खल मनोविनोदों से ऊब गया और स्वेच्छाचारिता उसे एक थकाने वाला भारमात्र अनुभव होने लगी—

"Me this unchartered freedom tires,
I feel the weight of chance desires."

संसार में कोई भी वस्तु पूर्ण स्वच्छन्द अथवा अनियन्त्रित नहीं, फिर मनुष्य ही अनियन्त्रित सुख की कामना क्यों करे ? इस विशाल समुद्र को ही देखिए—यदि कहीं सीमाओं को कारावास समझ तोड़ने का प्रयत्न करे तो स्थल ही जलमय बन जाय। नदियां जब तक दोनों किनारों की सीमाओं में रहती हैं तब तक बड़ी ही सुन्दर और लुभावनी लगती हैं, परन्तु ज्योंही अपनी सीमाओं को लांघ कर चलीं कि भयानक बनीं। प्रतिवर्ष छोटी-छोटी नदियों में भी बाढ़ आ जाने से अनेक ग्रामों, नगरों तथा कृषि आदि की अपार क्षति होती है। यही आकाश की अनियन्त्रित विद्युत् जब तारों की सीमाओं में नियन्त्रित होकर हमारे सामने आती है तो मानव का महान कार्य सम्पादित करती हैं। इसलिए सर्वहितकारी स्वतन्त्रता, सुख और शान्ति, तथा जीवन में सफलता प्राप्त करने के लिए आत्मनियन्त्रण और नियम-पालन अनिवार्य हो जाते है।

अनुशासन का कार्य आन्तरिक और बाह्य दोनों प्रकार का होना चाहिए। हृदय के विचारों और भावनाओं को इस प्रकार से सिधाना चाहिए कि वे अपना कार्य किसी नियम, क्रम और ढंग से करें। इच्छाओं का भी नियम की सीमाओं में नियन्त्रित करना लाभदायक होता है। अभिमान, दुर्व्यसन, पराई वस्तु की प्राप्ति की इच्छा आदि के आकर्षणों को रोकने तथा वशवर्ती करने का सतत प्रयत्न करना चाहिए ताकि वे बाह्य नियमों के विरुद्ध षड्यन्त्र या विद्रोह न कर दें। आत्मा की शक्ति इतनी दृढ़ होनी चाहिए कि वह मन को तथा उसकी कुभावनाओं को दबा सके। आत्मानुशासन का रहस्य ही आत्मा की आन्तरिक पुकार के अनुसार कार्य करना है। जब व्यक्ति आन्तरिक

अनुशासन का बृहत् कार्य समाप्त कर चुकता है, तब बाहरी सामाजिक, राजनैतिक आदि नियमों का पालन स्वतः सुगम और सुखकर हो जाता है।

जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अनुशासन की आवश्यकता होती है। पारिवारिक जीवन अनुशासन के बिना नरक है। यदि घर के संचालक की इच्छा या कथनानुसार शेष कुटुम्बी कार्य न करें, तो घर कभी सुव्यवस्थित और सम्पन्न नहीं हो सकता।

जिस राज्य के शासक प्रजा को अनुशासित करने में समर्थ नहीं होते वहां डाके, चोरी, स्त्रीबालापहरण, षड्यन्त्र और विद्रोह आदि की घटनाएं ही घटित होती रहती हैं। यदि शासक और शासित दोनों अनुशासित हैं, तो वहां ऋद्धि सिद्धि का स्थायी निवास हो जाता है। राम राज्य की यही एकमात्र विशेषता थी जिससे लोग उसके लिए लालायित रहते हैं।

सेना का तो अनुशासन प्राण ही है। अनुशासनविहीन सेना गलियों की दर्शकों की भीड़ से किसी भी रूप में अधिक शक्तिशाली नहीं हो सकती। भारत पर सिकन्दर, फ्रांसीसी और अंग्रेज़ों के आक्रमण इसलिए सफल हुए क्योंकि उनकी सेनाओं में अनुशासन यहां की सेनाओं की अपेक्षा अधिक था। अतः अधिक सैनिक संख्या व साधनों के होने पर भी भारत को पराजय का मुख देखना पड़ा। अनुशासित भारतीय सेनाओं के सामने आज कोई युद्ध में खड़ा नहीं हो सकता।

फुटबॉल, हॉकी आदि खेलों में वही टीम विजय प्राप्त करती है जिसमें अनुशासन की भावना हो। विद्यालय में यदि अनुशासन का अभाव हो, तो मेले में और उसमें कोई अन्तर नहीं रह जाता। यदि विद्यार्थी अनुशासन में न रहेंगे, तो

अध्यापक शान्ति से कैसे पढ़ा सकेंगे ? परिणाम विद्यार्थियों की पढ़ाई की हानि होगा।

जर्मन, जापान, इङ्गलैण्ड आदि की जनता यहां की अपेक्षा अधिक अनुशासित है। टिकट खरीदने, गाड़ी आदि में चढ़ने, व्याख्यान सुनने आदि के लिए जनता स्वयं पंक्तिबद्ध होगी। फल यह होता है कि न किसी को कष्ट न उपालम्भ। अनुशासन से ही व्यक्ति या जाति की सभ्यता का परिचय मिलता है। सौभाग्यवश स्वतन्त्रता के साथ भारत में भी शिक्षित व्यक्तियों में अनुशासन भावना आगई है। रेल, सिनेमाघरों, बसों आदि के टिकट लेने आदि कामों के लिए लोग पंक्तियां बनाने लग गए हैं। यह एक शुभ लक्षण है। विद्यार्थियों को इस ओर अधिक ध्यान देना चाहिए।

आत्म-अनुशासन से समय की बड़ी रक्षा होती है। परिश्रम भी कम लगता है और सफलता भी निश्चय से ही मिलती है। मनुष्य सामाजिक प्राणी है। सामाजिक संगठनों में भाग लिए बिना उसका निर्वाह नहीं। इसलिए सामाजिक संगठनों और संस्थाओं आदि के नियमों का पालन करना प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है। नागरिकता के नियमों का अनुवर्ती होना प्रत्येक नागरिक का मुख्य कर्तव्य है। इन नियमों की पराधीनता से ही व्यक्ति शारीरिक, सामाजिक,राजनैतिक और आर्थिक स्वतन्त्रता को प्राप्त कर सकता है। यही मनुष्य की मनुष्यता है इसके बिना वह पशु है।

अध्यवसाय
या
पुनः करो उद्योग

विचार-तालिका :—

१. भूमिका—अध्यवसाय का अभिप्राय ।

२. लाभ—सफलता की कुञ्जी । उद्योग से सब कुछ हो सकता है ।

३. उदाहरण ।

४. उपसंहार ।

"देखो बात याद यह कर लो, पुनः करो उद्योग ।
यदि तुम सफल न पहले हो तो—पुनः करो उद्योग ॥"

हाथ में लिये कार्य को, अनेक बाधा विघ्न उपस्थित होने पर भी अविचल होकर दृढ़ता से पूर्ण करके छोड़ने के संकल्प को अध्यवसाय (Perseverence) कहते हैं । अध्यवसाय जीवन में सफलता प्राप्त करने की एकमात्र कुञ्जी है । विश्व में जितने भी चमत्कार वाले महान् कार्य दृष्टि गोचर होते हैं वे एक ही बार के उद्योग का परिणाम नहीं । न जाने प्रारम्भ से उनकी पूर्ति तक कितनी बाधाओं की काली घटाओं ने उनके कर्ताओं को भयभीत किया होगा ? कितनी बार वे असफल रहे होंगे ? परन्तु 'अंगीकृतं सुकृतिनः परिपालयन्ति ।' सुकर्मी लोग एक बार प्रारम्भ किए कार्य को पूर्णता की कोटि तक पहुंचाए बिना नहीं छोड़ते । रेलगाड़ी, विद्युत् के विविध चमत्कार, वायुयान, अणुशक्ति आदि के आविष्कारकों तथा उस

सरणी पर उत्तरवर्ती कार्यकर्ताओं को विविध विघ्नों,, असफलताओं और असफल प्रयासों की अन्धकारमयी निशा के अवसान पर ही सफलता-उषा के मनोहर दर्शन हुए।

उद्योगी पुरुष विश्व में सब कुछ प्राप्त करता है। सब लोग जिस लक्ष्मी की कामना करते हैं, वह लक्ष्मी उद्योग के चरणों में चूमने के लिये लालायित रहती है। भाग्यवादी इस रहस्य को न समझ, हाथ पर हाथ धरे निराश हो कर दीन-हीन जीवन व्यतीत करते हैं। नीतिकार ने ठीक ही लिखा है—

उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः।
दैवेन देयमिति कापुरुषा वदन्ति॥

अर्थात् लक्ष्मी तो उद्योगी सिंह-पराक्रमी पुरुष को ही प्राप्त होती है, भाग्य ही देने वाला है ऐसा तो कायर लोग कहा करते हैं। विघ्नबाधाएं उसी के लिये भयानक विभीषिका बन कर आती हैं जो उनसे डर कर कार्य प्रारम्भ कर भय से बीच में ही छोड़ देता है। क्रमशः ये अधम और मध्यम श्रेणी के लोग हुआ करते हैं। उत्तम श्रेणी के व्यक्ति तो "विघ्नैर्मुहुर्मुहुरपि प्रतिहन्यमानाः प्रारब्धमुत्तमगुणा न परित्यजन्ति।" के अनुसार विघ्न परम्पराओं के आघातों से भी विचलित नहीं होते और कार्य को पूरा करके ही छोड़ते हैं। असफलताओं से भयभीत न होकर हमें और भी अधिक उत्साह के साथ कार्य को पूरा करने के लिये कमर कस लेनी चाहिये। जितनी बार ही असफलता मिले उतनी बार ही दुगने उत्साह और असफता से प्राप्त अनुभव से लाभ उठा कर फिर उसी काम में जुट जाना चाहिए। इस 'पुनः पुनः के उद्योग' का परिणाम निश्चय से सफलता होगा। कई विद्यार्थी एक बार परीक्षा में असफल होकर पढ़ाई

ही छोड़ बैठते हैं और आजीवन दुःखमय अज्ञान का जीवन व्यतीत करते हैं। जो लोग असफलता को लज्जा का कारण समझते हैं, वे सफलता के भेद को ही नहीं समझते—

"कोशिश करने में क्या लज्जा ? यदि न सफलता आवे हाथ।
तो क्या करना तुम्हें चाहिये ? पुनः करो उद्योग ॥"

'पुनः करो उद्योग' ही विजय और सफलता का गुरुमंत्र है। जिसने इसका जाप किया और 'पुनः पुनः के उद्योग' से ऊबा नहीं उसके सम्मुख 'असम्भव' या कठिन' जैसी कोई वस्तु नहीं रह जाती। वह अध्यवसाय-बल से असम्भव को सम्भव, दुष्कर को सुगम और दुर्लभ को सुलभ बना लेता है।

"काम कठिन जो जान पड़े तो, पुनः करो उद्योग।
समय सफलता देगा तुमको, पुनः करो उद्योग ॥"

व्यक्ति के समान यदि किसी देश या जाति में भी यह अध्यवसाय का गुण विद्यमान हो तो वह देश और जाति उन्नति के शिखर पर पहुंच के ही रहते हैं। अध्यवसाय ऐसा गुण है जितना इसका अभ्यास किया जाय उतना ही शुभ गुणों का समावेश स्वतः ही होता जाता है। नदी के सम्मुख जितनी शिलाएं आएंगी उतनी ही उसकी धारा की तीव्रता बढ़ती जाएगी। पर्वत में पथरीली भूमि में जो नदियों की धारा की प्रबल द्रुत-गति होती है वह समस्थल में पहुँच कर नहीं रहने पाती। अध्यवसायी पुरुष में साहस, स्वावलम्बन, आत्मगौरव, नम्रता, दूरदर्शिता और विचारशीलता आदि गुण अपने आप ही आ जाते हैं।

अध्यवसायी व्यक्ति का सर्वत्र मान होता है। वह उन पथ-प्रदर्शक व पथ-निर्माताओं में से होता है जिसके चरणचिह्नों

पर चलकर शताब्दियों तक परवर्ती जातियाँ उसके आभार को गुणगान कर प्रकाशित करती हैं। विविध शास्त्र, आविष्कार, कलाकौशल और सामाजिक आदि कार्य-कर्त्ताओं का कौन आभारी न होगा ? ऐसे लोग ही काव्य के नायक बनते हैं।

पुराकाल में राजा भगीरथ अन्य दिशा में बहने वाली गंगा को अनथक प्रयास से खुदवा कर भारत भूमि पर लाया। तभी से 'भगीरथ-प्रयत्न' 'सतत उद्योग' का पर्यायवाची बन गया।

स्काटलैंड के रोबर्ट ब्रूस (Robert Bruse) ने छः बार शत्रुओं से युद्ध किया, किन्तु पराजित ही होता गया। निराश और हताश हो वह गुफा में बैठ गया जहाँ मकड़ा चढ़ने के विफल प्रयत्न में लगा हुआ था। राजा उसकी मूर्खता पर विचार मग्न था, परन्तु अन्त में वह निर्दिष्ट स्थान पर पहुंच के ही रहा। राजा के उदासीन मलिन मुख पर आशा की झलक दिखाई दी। वह उठा और फिर युद्ध कार्य में व्यस्त हुआ। अन्त में विजय-लक्ष्मी ने उसको जयमाला पहिना के ही छोड़ी। नैपोलियन और शिवाजी साधारण जीवनस्तर से उठकर महान् विजेता बने। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, स्वामी दयानन्द, श्री शंकराचार्य आदि अध्यवसाय के प्रताप से ही दिग्गज पण्डित व सुधारक बन पाए। महात्मा बुद्ध ने अध्यवसाय बल से ही मोक्ष का मार्ग निकाला। महात्मा गान्धी ने इसी अध्यवसाय के बल से शताब्दियों के दास भारतवर्ष को स्वतन्त्रता दिलाई।

इस प्रकार प्रत्येक जीवन की सीढ़ी में चढ़ने के लिये अध्यवसाय आवश्यक गुण है। भारतवर्ष के साधु आज लाखों की संख्या में इस गुण को छोड़ कर जाति पर भार बन बैठे

हैं। देश की कुपात्र को दान देने की प्रथा ने उन्हें अकर्मण्य बना दिया है। शिक्षाप्राप्ति व ज्ञान-लाभ भी वे अपना कर्तव्य नहीं समझते। स्वयं आलसी बन कर जाति को भी आलस्य की शिक्षा देते हैं—

"राम भरोसे बैठ कर, रहो खाट पर सोय।
अनहोनी होनी नहीं, होनी होय सो होय॥"

ऐसे साधुओं को दान देना पुण्य नहीं, पाप है।

निष्कर्ष यह है कि पारिवारिक सम्पन्नता, देश और जाति की उन्नति, तथा मृत्यु के उपरान्त भी अपने महान् कार्य द्वारा अपना नाम पीछे छोड़ने के लिये अध्यवसाय गुण का अभ्यास आवश्यक है। ऋद्धि सिद्धि, सफलता और सम्पन्नता अध्यवसाय का अनुसरण करती हैं।

"विजय चाहते हो जो तो तुम, पुनः करो उद्योग।"

देहली

भारत का वह प्रदेश जिसने सम्राटों का स्वत्व, आक्रमणकारियों का प्रकोप, लुटेरों की लूट, व्यभिचारियों का अत्याचार, विद्रोहियों का विद्रोह, सुधारकों के सुधार और शासकों के शासन प्रबन्ध का नित्य नया रंग देखा है दिल्ली ही है। आज से नहीं अपितु शताब्दियों से यह भारतीय सम्राटों, शासकों और विदेशी आक्रमणकारियों की प्रिय रङ्गस्थली रही है। हिमाच्छादित नगराज हिमालय तथा हिन्दूकुश की विशालता के प्रकृति ने कुछ द्वार बना दिए हैं और प्रत्येक जाति

इन्हीं द्वारों में होकर आती हैं तथा भारत के वैभव पर लोलुप दृष्टि डालती हैं। गांधार देश के प्राकृतिक दृश्यों से आकृष्ट आततायी ज्योंही पाञ्चाल देश की उर्वरा भूमि में प्रवेश करते हैं तो सम्मुख वैभवशालिनी वसुन्धरा के रूप की छवि उनके हृदयों पर अंकित हो जाती है और इस विशाल भवन की निगूढ़ रत्नराशि को प्राप्त करने के लिए प्राणों की बाजी लगा देते हैं। इसी कोष की द्वाररक्षिका है यह देहली, जिसका तात्पर्य द्वार की चौखट है।

आज से नहीं अपितु प्रागैतिहासिक काल से दिल्ली भिन्न २ स्थानों तथा नामों को धारण करती हुई अपनी चंचलता का परिचय दे चुकी है। अतुल बलशाली कौरव तथा विश्वविजयी पाण्डवों के महान् संघर्ष में भगवान् कृष्ण ने पाञ्चजन्य यहीं फूंका था। हजारों जातियों के उत्थान तथा पतन की कहानी इसके हृदय पर अंकित है। हिन्दू सम्राटों के पराक्रम, हूण, शक, कुशन आदि जातियों के आक्रमण, पठानों की स्वेच्छाचारिता और मुग़लों का विलास इसके विकीर्ण मुख पर अंकित है तथा आधुनिक ढंग की टीम टाम गोरी हुकूमत की करतूतों और पाश्चात्य प्रभाव की परिचायक है।

शाहजहाँ की आशाओं का साकार रूप लाल किला और उसकी धार्मिक भावनाओं का विशाल स्तूप जामा मस्जिद जिस दिल्ली में स्थित है वह दिल्ली नहीं अपितु शाहजहानाबाद है जिस ने कुछ काल पश्चात् दिल्ली का नाम धारण कर लिया। प्राचीन दिल्ली के भग्नावशेष पुराने किले के पास यत्र तत्र बिखरे पड़े हैं। शाहजहानाबाद की सुन्दरता किसी समय दर्शनीय थी। वर्तमान चाँदनी चौक में निर्मल पानी की एक नहर थी जिसके

दोनों तटों पर फलों के वृक्षों पर पंछियों की मधुर ध्वनि ऋतुराज का बारहों महीना सम्मान किया करती थी। यमुना का प्रवाह लाल किले को चूमता हुआ उसके सौन्दर्य पर चार चाँद लगाता था। किन्तु जब से अंगरेज़ों का इस पर अधिकार हुआ तो इन्होंने अपने अत्यधिक उपयोगितावाद के सिद्धान्त के कारण यह सब कुछ व्यर्थ समझ कर इसका नक्शा ही बदल डाला और आज की दिल्ली का रूप कुछ नया ही है।

काश्मीरी दर्वाजे के बाहर तिमारपुर की बस्ती अंग्रेज़ी काल की बनावट है जिसमें पाश्चात्य सभ्यता झलकती है। रायसीना उस काल की रचना है जब गोरी सरकार ने इसे अपनी राजधानी बनाया। इसका निर्माण आधुनिक नगरी की आवश्यकताओं का ध्यान रखते हुए हुआ है।

दिल्ली ऐतिहासिक तथा राजनैतिक दोनों दृष्टियों से अत्यन्त प्रसिद्ध है। देश का केन्द्र होने के कारण संसार की समस्त जातियों के लोग यहाँ देखे जा सकते हैं। इतिहास तथा राजनीतिक विभाग के उच्च श्रेणी के विद्यार्थी प्राचीन संस्कृति के भग्नावशेष देखने प्रायः यहाँ आते हैं। पुराना किला, कुतुब मीनार और अशोक की लाट प्राचीन ऐतिहासिक स्थिति पर प्रकाश डालते हैं। ईंट और पत्थरों के ये भग्नावशेष अतीत की उन स्मृतियों पर प्रकाश डालते हैं जिन्हें इतिहासकार ऐतिहासिक महत्त्व, कलाकार कला के उच्चतम आदर्श और भावुक भावनाओं का कोष कहकर पुकारते हैं।

एक समय था जब इस की भूमि के आस पास विस्तृत तथा निर्मल राज मार्गों की छटा लिए हस्तिनापुर की भव्य नगरी विराजमान थी। मय दानव की शिल्प-कुशलता ने इन्द्रप्रस्थ

को जन्म दिया जिसके गगन-चुम्बी विशाल भवनों की भव्यता को देखकर अलकापुरी को ईर्ष्या होने लगी। किन्तु समय पलटा और धर्मराज युधिष्ठिर की द्यूत-क्रीड़ा के पासे के साथ ही इस भूमि के भाग्य का पासा भी। ईर्ष्या, द्वेष और अभिमान की तनिक सी चिनगारी ने आर्य संस्कृति के आदर्श स्तम्भ बन्धुओं के बीच वह ज्वालामुखी उद्गार उत्पन्न कर दिया जिसके प्रथम विस्फोट से देश आर्यावर्त का विशाल किरीट मिट्टी छूकर सोना बनाने वाले वीरों की मिट्टी से आवृत हो गया। किन्तु इतना ही पर्याप्त न था। यह तो केवल एक संस्कृति का इतिहास है; केवल एक जाति के उत्थान और पतन की कहानी। इसके उपरान्त न जाने कितनी जातियों ने और कितने वीरों ने इस भूमि पर अपने पराक्रमों का प्रदर्शन किया और चले गये।

युग और सदियाँ बीत गईं; जाति पर जातियों और सम्राट् पर सम्राटों ने काल के शून्य स्थान की पूर्ति के लिए जन्म लिया और महाशून्य में विलीन होगए। हाँ, आर्यावर्त के इस विशाल रङ्गस्थल पर अगाध विश्वासी तथा शांति के पुजारी मुहम्मद के अनुयायियों ने क्रांति का रङ्ग दिखाया। गुलाम बादशाह बन बैठे, पठानों ने अपनी निरंकुशता और स्वेच्छाचारिता का परिचय दिया, मुगलों में शाहजहाँ ने इस वर्तमान दिल्ली को जन्म दिया। आज भी दिल्ली अपनी तंग गलियों, अवरुद्ध कूचों और छत्तों के लिए प्रसिद्ध है। बादशाही काल में इस नगर ने आर्थिक, व्यापारिक और कला सम्बन्धी उन्नति खूब की।

विलासी मुगलों के चाटुकारी दरबारियों की मधुघोली बातों, कलाकारों की उत्कृष्ट कलाओं और सुख तथा विलास के अनुपम साधनों के लिए यह नगरी प्रसिद्ध रही। उर्दू के शायरों ने

इसकी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की और यह भी अपने दुर्दिनों में शब्दों के इन्द्रजाल में गढ़ी हुई प्रशंसा के दो चार शब्द सुनकर ही अपने जी को बहलाती रही। कृत्रिम हास-विलास में अपनी दुर्बलता और शक्तिहीनता के घाव छिपाए बैठी रही। कवि ज़ौक ने तो दक्षिण की अपार सम्पत्ति और उत्कृष्ट सम्मान को भी दिल्ली की गलियों के सम्मुख ठुकरा दिया और बोल उठा—

गरचे है मुल्के दक्खन में इन दिनों कदरे सखुन,
कौन जाये ज़ौक पर दिल्ली की गलियाँ छोड़ कर ॥

मुगलों के पश्चात् अंग्रेज़ों ने इसे आदर्श राजधानी बनाया तथा यह छोटी सी सुन्दर नगरी दिल्ली एक विशाल नगर बन गया, जिसकी आजकल की आबादी करीब १६ लाख है।

इस प्रकार इस दिल्ली ने संभवतः संसार के समस्त नगरों से अधिक परिवर्तन और उत्थान तथा पतन के खेल देखे हैं, इसने ताज धारण किया है और गुलामी भी की है, अत्याचारों को सहन किया है और आततायियों के मुँह भी घुमाए हैं तथा अब फिर कुछ वर्षों से स्वतन्त्रता किरीट अपने मस्तक पर धारण किए हुए संसार को बता रही है कि जीवन परिवर्तन ही का नाम है।

वर्षा ऋतु

विचार-तालिका :—

१. भूमिका। २. वैज्ञानिक कारण।
३. प्राकृतिक दृश्य। ४. लाभ
५. हानि। ६. उपसंहार

"गया ग्रीष्म-सन्ताप सुखद हरियाली छाई,
करती विविध प्रलाप, वधू वर्षा ऋतु आई।
छाये नव-जल-युक्त मेघ चहुँ ओर गगन में,
छटा और की और हुई क्षिति की अब क्षण में॥"

ग्रीष्म ऋतु के उपरान्त वर्षा ऋतु का आगमन होता है। इसका समय श्रावण और भाद्रपद दो मास होता है। ग्रीष्म ऋतु में सूर्य की तीव्र गर्मी में जल भाप बन कर हलका हो जाता है और वायु में मिल जाता है। वहां ठण्डक के कारण जमकर वह घनीभूत हो जाता है। इसे ही हम मेघ कहते हैं। ठण्डक की अधिक मात्रा से यही भाप पानी में परिवर्तित हो कर हिम रूप से बरसने लगता है। गर्मी में समुद्र, ताल, नदी आदि का पानी प्रचुर मात्रा में वाष्प बनता है। उसे मानसून कहते हैं। भारतवर्ष में पूर्वी समुद्र से मानसून चलती है और बंगाल से होती हुई पंजाब के पार्वत्य प्रदेशों में प्रवेश करती है। वहाँ हिमालय से टकरा कर बरसती है। दूसरी ओर पश्चिमी समुद्र की मानसून गुजरात आदि देशों में जाती है और वहां पर्वतों से टक्कर खाकर बरसने लगती है। इस प्रकार की मानसून की दो मास तक की सतत यात्रा व पर्वतों से टकराने की क्रिया से हुई वृष्टि को ही वर्षा कहते हैं।

ग्रीष्म ऋतु के ताप से तप्त प्राणी सुखद वर्षा ऋतु के आगमन की उत्सुकता से प्रतीक्षा करते हैं। वर्षा ऋतु के प्रारम्भ में बिरले बिरले श्वेत मेघ गगन मण्डल में इधर से उधर वायु-रथ पर यात्रा करते हुए से दृष्टिगोचर होते हैं। धीरे २ वे काले और पुञ्जी-भूत होते चलते हैं। दुःखद घाम घटने और सुखद घनघटाएँ बढ़ने लगती हैं। कभी २ जलफुहार की आशा में निराशा भी हो जाती है। अविवेकी मेघ वायु के घोड़े को विद्युत् के चाबुक से हांक कर अन्य दिशा में जाकर बरसता है। तब सबको महान् दुःख व निराशा होती है। कवि ने ठीक ही लिखा है—

"धान के खेतन पै न परै जल के कन पाहन पै ढरकावै।
बाग बगीचन सींचन छाड़ि कै सिन्धु पै नीर उलीचन जावै॥
संपत पूरे अधूरे विवेक के दान के रूरे विधान भुलावैं।
मूसरचन्द ये मूसलधार धराधर ऊसर पै बरसावैं॥"

परन्तु उक्त 'आश निराश भई,' वाली दशा आषाढ़ मास के उत्तरार्ध में ही रहती है। श्रावण मास में तो मेघ अद्भुत ही आडम्बर में अपने विविध रूप दिखाकर सूर्य के ताप से तप्त मही को वृष्टि की धारा से अभिषिक्त किये बिना नहीं रहता। ऐसे मेघ का सब लोग जय जयकार से स्वागत करते हैं :—

"जय मनभावन विपति नसावन सुख सरसावन।
सावन को जग ठेलि केलि जल चहुँ बरसावन॥
बाँधि मण्डलाकार पुरन्दर को धनु पावन।
लरजि दिखावन गरजि तरजि मन भय उपजावन॥
सनकावन गन पवन ज्योति जुगनू चमकावन।
ठनकावन घन सघन दामिनी-दुति दमकावन॥

तापन सतत सतावन कृषकन जीय जुरावन ।
अतुलित जोम जतावन युवजन हीय चुरावन ॥
झर लावन बुदबुदा उठावन भुवि लरजावन ।
अगनित अमित अनूप कीटकुल-बल सरजावन ॥"

सत्य नारायण शर्मा

मेघों की कृष्णघटा से आच्छादित होकर आकाश कालरात्रि की शोभा धारण करता है। बहुधा कई दिनों तक सूर्य भगवान् के दर्शन ही नहीं होने पाते। जिधर देखो बिजली की कड़क और बादल की गरज ही सुनाई देती है। बादल को देख कर मोर अपना मधुर संगीतमय नृत्य छेड़ देते हैं। मैंढक गण भी अपनी टरटराहट से कानों के पर्दे को फाड़ते से दृष्टि-गोचर होते हैं। झींगर भी शोर मचाने लगते हैं। बीर-बहूटी समुदाय से हरी घासवाली भूमि रंगबरंगी दिखाई देती है। चातक 'पी पी' की रटना में निरत रहता है।

मेघाच्छन्न गगन वाली रातें तो अत्यन्त ही काली हो जाती हैं। उनमें आकाश में घूमते हुए बुझते और जलते हुए प्रकाश वाले जुगनू बड़े ही मनोहर लगते हैं। इस ऋतु में अल्पतोया सरिताएं जलबाहुल्य से उमड़ती और मादकता से तटों को गिराती और तटतरुओं को बहाती हुई समुद्राभिमुख भागी जाती हैं। नदी, नद, सर और कूप आदि सभी पानी से परिपूर्ण हो जाते हैं—

"कूप कुण्ड गभीर सरवर नीर लाग्यो भरन ।
नदी नद उफनान लागे लगे झरना झरन ॥"

राय देवीप्रसाद 'पूर्ण'

चारों ओर हरियाली ही हरियाली दृष्टि गोचर होती है। गाय

भैंस आदि पशुओं के शरीर हरी घास खा खाकर हृष्ट-पुष्ट हो जाते हैं। बागों में फलों से लदे हुए आम वृक्षों को देखकर मन खाने के लिए लालायित होता है। अन्य पशुओं को भी विविध प्रकार की आहार सामग्री उपलब्ध होती है। कृषकों के मन तो अपनी हरी भरी खेती देखकर हर्ष के मारे बाँसों उछलने लगते हैं। इसलिए वे इस ऋतु को विशेष रूप से चाहते हैं—

'कृषि है यहां प्रधान, उसी पर सब निर्भर हैं,
कला और साहित्य सभी के बल इस पर हैं।
कृषि को जीवन दान कौन दे बिना तुम्हारे ?
द्रवित हूजिये सदा नीर के बहैं फुहारे ॥

इस ऋतु में लोग अनेक प्रकार के मनोविनोद करते हैं। छात्र तथा छात्राएं आमों के टोकरे लेजाकर सु-दिवस, 'Fine day' मनाने के लिए वन, उपवन अथवा नदी के किनारे भ्रमणार्थ जाते हैं और सारा दिन विविध प्रकार के मनोविनोदों के साधनों से व्यतीत करते हैं। बालक पतंगें उड़ा कर मन बहलाते हैं। लड़कियां तथा महिलाएं झूला झूलती हैं। खीर और घेवर इस ऋतु के विशेष रुचिकर भोजन हैं। धान, ज्वार, बाजरा, मक्का, मूंग, मोठ, उरद, तिल आदि इस ऋतु की फसलें हैं।

इस सुखद ऋतु में कुछ दुःखद बातें भी हो जाती हैं। मच्छर, पिस्सू, खटमल, बिच्छू और साँप आदि विशेष रूप से उत्पन्न होते हैं। वर्षा से गली कूचे भवन आदि सभी पंकमय हो जाते हैं। मलेरिया आदि रोगों का प्रकोप विशेष रूप से सताता है। वर्षा के कारण कई दिनों तक लोग घरों से नहीं निकलने पाते और आलस्य में ही पड़े रहते हैं। कच्चे मकानों को विशेषतया

और पक्के भवनों को सामान्यतया वर्षा से हानि पहुँचती है—

घर कोटिन की तरकनी दरकनी माटी सरकनी।
देखहु तिनकी अररररर ऊपर सो टरकनी॥

सत्य नारायण शर्मा

नदियों में बाढ़ आने के कारण बहुधा अनेक नगर, ग्राम तथा खेत बह जाते हैं। गंगा, यमुना आदि नदियों से इस ऋतु में पर्याप्त हानि हो जाती है।

इन सब हानियों के होते हुए भी वर्षा ऋतु सबके लिए सुखदाई ही अधिक है। वर्षा के बिना किसानों का भी निर्वाह नहीं हो सकता। जिस वर्ष वर्षा नहीं होती, चारों ओर त्राहि-त्राहि मच जाती है। इसलिए सब जड़ चेतन इसके आने की प्रतीक्षा करते रहते हैं और यह सुखद ऋतु आकर सबको सुख-वृष्टि से सींच कर चली जाती है—

'खेचर भूचर जलचर तृण तरु सबके गातन।
उठति अमन्द तरङ्ग हृदय आनन्द समात न॥"

आधुनिक हिन्दी रचना

(उत्तरावस्था)

ऋतुराज–वसन्त

विचार-तालिका :—

१. भूमिका—भारतवर्ष में विविध ऋतुओं का आगमन । वसन्त का महत्त्व ।

२. वसन्त का आगमन ।

३. प्रकृति शृङ्गार ।

४. उपसंहार ।

भारतवर्ष ही एक ऐसा सुविशाल और सुहावना देश है जहाँ मदमाती प्रकृति अपने विविध शृङ्गारों से समय समय पर अपने आपको अलंकृत करती रहती है। उष्ण से उष्ण तथा शीत से शीत स्थानों के अतिरिक्त यहाँ की गंगा, यमुना तथा सतलुज, व्यास, रावी, चिनाब और जेहलम आदि नदियों से सिञ्चित सुविशाल भूभाग ऐसा है जहाँ न तीव्र उष्णता पड़ती है न अत्यधिक शीत ही रहता है। प्रकृति के थोड़े से भी करबट बदलने या अंगड़ाई लेने से यहाँ के फूल, फल, पौधों तथा नदी नदों में उसका आशु-प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। सारांश यह कि भारत ही ऐसा देश है जहाँ अन्य देशों के समान सर्दी, गर्मी और वर्षा ये तीन ही ऋतुएं दृष्टिगोचर नहीं होतीं वरन् वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त और शिशिर ये छः ऋतुएं क्रमशः आती जाती रहती हैं।

इन सब में प्रथम वसन्त ऋतु है। इसका हमारे वेद-शास्त्रों तथा काव्य ग्रन्थों में बड़ा महत्त्व वर्णन किया गया है। यह ऋतु

न केवल छः ऋतुओं के ही चक्र को प्रारम्भ करता है वरन् वेदों में सृष्टि की उत्पत्ति का काल भी वसन्त ही माना गया है। आर्यावर्त में युगों तक इस ऋतु से ही वर्ष का प्रारम्भ माना जाता रहा है। प्रकृति इसमें वनस्पतियों को इतनी पत्र-पुष्प की निधि दे डालती है कि सारे वर्ष सब ऋतुओं के सुखद व घातक झटकों को ये सुगमता से सह पाती हैं। प्राणियों के शरीर में भी नए रुधिर का संचार होने लगता है। सूर्य भगवान् दक्षिण से उत्तर की ओर प्रस्थान करते हैं। रातें छोटी और दिन क्रमशः बढ़ने लगते हैं। सारांश यह कि यह ऋतु जड़ और चेतन सभी के विकास का कारण है। इसी लिये हमारे पूर्वजों ने इसे इतना महत्त्व दिया। नए काम के प्रारम्भ करने या संस्कार करने के लिये अब तक भी लोग वसन्त को ही चुनते हैं। भीष्म शरशय्या पर पड़े पड़े प्राण त्याग के लिये उत्तरायण की प्रतीक्षा करते रहे।

इस ऋतु से पूर्व शिशिर के प्रकोप के कारण सभी जड़ चेतन उदास थे। पौधों या वृक्षों पर तो कंगले ने पीला पत्ता तक न छोड़ा था। प्राणी भी खाद्याभाव या ठण्डक से त्राहि! त्राहि! मचा रहे थे। अन्त में ऋतुओं के राजा वसन्त ने सबकी पुकार सुनी और भूमि पर पदार्पण किया।

वसन्त ऋतु

कविवर निराला ने कैसे सुन्दर शब्दों में वसन्त के आगमन का संकेत किया है ! कैसा सुन्दर चित्र है—

आवृत सरसी-उर-सरसिज उठे
केसर के केश कली के छुटे
स्वर्ण शस्य अंचल
पृथ्वी का लहराया।

वसंत की प्रकृति का वर्णन है। 'सरसी के हृदय के ढके कमल उठ आये। कली के केशर के केश बिखर गये। पृथ्वी का स्वर्ण-शस्य अंचल लहराने लगा। सखि, वसन्त आ गया ?'

प्रकृति में एक नई चेतना जगी। जाड़ा कहीं दूर चला गया। उसके आघातों के चिह्न ही कहीं-कहीं शेष रह गये हैं। शीत से ठिठुरी हुई प्रकृति ने एक करवट ली, शीत के प्रकोप का अंत हो गया। शीत के कारण जो निश्चलता उसमें आ गई थी वह अब दूर होती जा रही है। पेड़-पौधों ने नये पत्तों और फूलो से अपने आप को ढँक लिया है। इस नई स्फूर्ति से प्रकृति की अभिनव शोभा ऐसी है कि कवि हृदय झूम झूम कर गाने लगता है—

कूलन में, केलिन में, कछारन मे, कुंजन में
बीथिन में, ब्रज में, खेलिन में, बेलिन में
बनन में, बागन में, बगरयो बसंत है।

प्रकृति का नवीन रूप है। पीली-पीली सरसों खेतों में फूल रही है। सूर्य की किरणें भी पीली लगती हैं। वे अब तिरछी गति छोड़कर ठीक सिर के ऊपर आ गई हैं। सारा वातावरण वसन्त की पीली शोभा से भर गया है। उपवनों में रंग-बिरंगे

फूल हैं कि किसी व्यस्त चित्रकार की चित्रशाला का भाव होता है।

वसन्त समीर का तो कहना ही क्या? वह अमराई में बौरों की गंध लेकर मस्त होरहा है। इसी समय के लिए रसिक बिहारीलाल ने कहा है—

रुनति भृंग घंटावली, झरत दानु मधुनीर।
मंद मंद आवत चल्यो कुंजर कुंज कुटीर॥

प्रकृति एक मुग्धा सी प्रतीत होती है। ऐसा ज्ञात होता है मानो यह मुग्धा नये-नये वेशों में सजकर हमें रिझाने आ रही है। वनों बागों में और ही दृश्य है। कहीं कोयल आनन्दपूर्ण स्वरों में कुहू-कुहू कर रही है। कहीं भौंरे मानो समुदाय बना कर झूम रहे हैं। पपीहों की आवाज़ सुनकर मन-मयूर अलग नाच उठता है। उससे कैसा उद्दीपन होता है—

फिर घर में नूतन पथिक चले चकित चित भागि।
फूल्यो देखि पलास बन समुहे समुझि दवागि॥

वसन्त के आते ही प्रकृति ही नहीं चल अचल कोई भी क्यों न हो सब में एक उन्माद भर जाता है। मानव हृदय नई भावनाओं के सरोवर में तैरने लगता है। इस स्फूर्तिमय वातावरण में मनुष्य-हृदय भी स्फूर्ति अनुभव करने लगता है। 'मदन महीप जू को बालक वसन्त।' सभी के हृदयों में यह अमानवी (दैवी) सौन्दर्य भर देता है। ऐसे समय में हृदय पर अधिकार रखना कठिन है। इसी लिये अनजाने में ही मन किसी साथी के लिये तड़प उठता है। वह तन्मय सा हो जाता है। कभी गाता है, कभी भावों में डूब कर नाचने लगता है। फूलों का यह रूप उसके हृदय में एक टीस पैदा करता है। कवि कह उठता है—

अरे अनंग तुम हो
तुमने भौंरों की गुंजित ज्यों
कुसुमों का पीलायुध थाम
अखिल विश्व के रोम-रोम में
केशर-शर भर दिये सकाम।

संसार की दशा देखते ही बनती है। वसन्त अपने साथ जो रंगीन वातावरण लाता है उसी से मुग्ध होकर मनुष्य ने भी अनेकों आमोद-उत्सवों को जन्म दिया है। जीवन में एक मनोमुग्धकारी गति आ जाती है।

वसन्त को ऋतुराज की पदवी दी गई है! वास्तव में बात है भी ठीक। इस ऋतु में किसी राजा के दरबार सी ही शोभा और मतवालापन है। सम्पूर्ण वातावरण में वही कमनीयता और स्निग्धता भर जाती है जो राजाओं के रनिवासों के पीछे ही मिल सकती है। वसंत फूलों का मुकुट धारण करता है। विभिन्न देशों से विभिन्न पक्षी उड़-उड़ कर उसके दरबार में नाच रंग करते हैं।

वसंत जागृति का सन्देह-वाहक है। होली जैसा सभी वर्णों का त्यौहार इसी ऋतु की श्रेष्ठता को ही देख कर रखा गया है। कहीं-कहीं वसन्त उत्सव भी मनाया जाता है। सभी स्त्री-पुरुष वसन्त पंचमी के दिन हलके केसरी या पीले वस्त्र पहनते हैं। जगह-जगह नाच रंग होते हैं। पलाश और पीले वस्त्रों में स्त्री-पुरुषों को देखने से ऐसा ज्ञात होता है मानो सभी वस्तुयें एक हैं। कहीं वियोग की बात नहीं।

हमारी स्वाधीनता का प्रतीक-ध्वज

भारत का ध्वज भारत की स्वाधीनता का प्रतीक है। महात्मा गान्धी के नेतृत्व में स्वाधीनता के लिये भारत के अहिंसात्मक संग्राम की महान् कथा इसके साथ जुड़ी हुई है।

१५ अगस्त १९४७ से यूनियन जैक के स्थान पर, जो त्रिवर्ण-ध्वज सरकारी भवनों पर फहराया गया, वह २२ जुलाई १९४७ को विधानपरिषद् द्वारा राष्ट्र-ध्वज स्वीकार किया गया था। प्रस्ताव में किये गये वर्णन के अनुसार वह एक क्षैतिज समान्तरालीय त्रिवर्ण ध्वज है, जिसमें गहरा केसरिया और समान अनुपात में श्वेत और हरे रंग हैं और बीच की पट्टी में गहरे नीले रंग में एक गहरा चक्र बना हुआ है। इस चक्र की बनावट वही है, जो सारनाथ के अशोकस्तम्भ के सिंहाँकित शीर्ष भाग में लगे हुए चौरस पत्थर में अंकित धर्मचक्र की है।

१४ अगस्त १९४७ को विधान परिषद् के अर्धकालीन, स्मरणीय अधिवेशन में भारत की स्त्रियों ने यह ध्वज राष्ट्र को प्रदान किया था।

१९२१ में जब महात्मा गान्धी ने असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ किया, तभी से चर्खे के चिन्ह के साथ यह तिरंगा स्वाधीनता का झंडा था और हज़ारों देशसेवकों और देश-सेविकाओं ने इसे ऊँचा रखा। उस समय इस ध्वज में लाल, श्वेत और हरा रंग था। १९३१ में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने इन रंगों को बदल कर केसरिया, श्वेत और हरा कर दिया, और श्वेत पट्टी पर नीले रंग में चर्खा अङ्कित किया गया।

१६३३ में कांग्रेस ने इसी ध्वज को राष्ट्र-ध्वज के रुप में ग्रहण किया था।

चक्र क्यों लिया ?

जब यह तिरंगा राष्ट्र-ध्वज बनाया गया तो चर्खे का स्थान अशोकचक्र ने ले लिया। इस परिवर्त्तन का कारण यह था कि ध्वज की एक ओर का प्रतीक दूसरी ओर भी ठीक वैसा ही होना चाहिये। सारनाथ के अशोक-स्तम्भ के सिंहांकित शीर्ष-भाग से धर्मचक्र लेने के कई कारण थे। चक्र लगभग चर्खे जैसा ही है, किन्तु इसमें तकुआ और माल नहीं है। कलात्मक होने के अतिरिक्त धर्मचक्र, भारत की युगों पुरानी परम्परा और संस्कृति का प्रतीक है, और महाराज अशोक के साथ, जिन्हें केवल भारत में ही नहीं, किन्तु चीन, तिब्बत और अन्य एशियाई देशों में भी स्मरण किया जाता है, इसका सम्बन्ध है। जैसा कि प्रोफेसर एस० राधाकृष्ण ने बताया था, अशोक-चक्र धर्म के चक्र का प्रतीक—वह धर्म जो सदा गतिशील है, जिससे यह प्रकट होता है कि स्थिरता में मृत्यु है और गति में जीवन। इस ध्वज का केसरिया रंग त्याग की भावना का, श्वेत सत्य और पवित्रता का, और हरा उस पृथ्वी के साथ हमारे सम्बन्ध का द्योतक है, जिसपर समस्त प्राणी आश्रित हैं।

विधान-परिषद् में प्रस्ताव उपस्थित करते हुए पं० नेहरू ने कहा था "यह ध्वज साम्राज्य, और साम्राज्यवाद का या किसी के ऊपर किसी के प्रभुत्व का संकेत नहीं, किन्तु यह न केवल हमारी स्वतन्त्रता का अपितु इसे देखने वाले समस्त व्यक्तियों की स्वाधीनता का प्रतीक है। यह ध्वज जहाँ कहीं भी जायगा, न केवल उन्हीं देशों में, जहाँ हमारे राजदूतों और मन्त्रियों

के रुप में भारतीय रहते हैं बल्कि मुझे आशा है, समुद्रों के पार जहाँ कहीं भी हमारे जहाज इस ध्वज को ले जाएँगे, वहाँ यह उन देशों की जनता को भ्रातृत्व का संदेश देगा, उन्हें यह बतायेगा कि भारत विश्व के प्रत्येक राष्ट्र के साथ मैत्री सम्बन्ध स्थापित करने का इच्छुक है और वह स्वाधीनता प्राप्त करने में सब लोगों की सहायता करना चाहता है।" श्रीमती सरोजिनी नायडू ने कहा था, "स्मरण रखिये, इस झंडे की छाया में राजा, रंक तथा धनी और निर्धन में कोई भेद नहीं है। इसकी छाया में किसी को कोई विशेषाधिकार नहीं, केवल कर्तव्य, दायित्व और बलिदान की भावना है। चाहे हम हिन्दू या मुसलमान या ईसाई, जैन, सिख या पारसी या कुछ और भी क्यों न हों, हमारी मातृभूमि भारत एक अविभक्त हृदय और अविच्छेद्य आत्मा है। नवोदित भारत की स्त्रियो और पुरुषो ! उठो, इस ध्वज को प्रणाम करो। मेरा आपसे निवेदन है कि उठिये और इसका अभिवादन कीजिये।"

हमारे जनतन्त्र का राज-चिह्न सारनाथ के अशोक-स्तम्भ के सिंहांकित शीर्ष का प्रतिरूप है। २६ जनवरी १९५० से सरकारी भवनों आदि पर इस चिह्न ने ताज का स्थान ग्रहण कर लिया है।

यह राज-चिह्न भारत की प्राचीन और अद्वितीय संस्कृति का प्रतीक है।

इस चिह्न के शीर्ष भाग में तीन सिंह हैं और इसके केन्द्र में धर्मचक्र, दायें एक बैल, बायें एक अश्व तथा दक्षिण और वाम चरम पार्श्वों में धर्मचक्रों की बहिःस्थ रेखायें हैं।

शीर्ष भाग के नीचे देवनागरी लिपि में "सत्यमेव जयते"

(सत्य की ही विजय होती है) आदर्श वाक्य अंकित है। यह आधारभूत सिद्धान्त रहा है और सभी धर्मों के अनुयायियों को यह मान्य है।

ईसा से लगभग १०० वर्ष पूर्व अशोक ने यह स्तम्भ सारनाथ में उस स्थान पर बनवाया था, जहाँ बुद्ध ने सर्वप्रथम अहिंसा और प्रेम का अपना संदेश संसार को सुनाया था।

सारनाथ के अशोक-स्तम्भ के सिंहांकित शीर्ष भाग को भारतीय जनतन्त्र का राजचिह्न बनाने से भारत के विश्व-शान्ति और भ्रातृत्व के उद्देश्यों को और भी अधिक बल मिला है। प्राचीन सभ्यता और सहिष्णुता तथा महात्मा गाँधी के उपदेशों को प्रोत्साहन देने का भारत ने जो संकल्प किया है, यह राज-चिह्न उसी के अनुरूप है।

धर्म चक्र, न्याय चक्र का प्रतीक है। यह राष्ट्र-ध्वज पर भी अंकित है।

(वीर अर्जुन से)

महात्मा गान्धी

पुण्यतम कृतिमान थे तुम, पूज्य और महान् थे तुम;
युग-पुरुष ! हे युग प्रणेता ! नर नहीं, भगवान थे तुम।

(गान्धी गौरव से उद्धृत)

विश्ववन्द्य बापू अपने काल के सब से विख्यात सामाजिक धार्मिक, राजनैतिक व आध्यात्मिक नेता थे। "लोग कहते हैं बदलता है जमाना अकसर, मर्द वे हैं जो जमाने को बदल देते हैं।" कर्मवीर गान्धी जमाने को बदलने वाले युग-प्रणेता मर्द

थे। आदर्श, सचाई और शान्ति की भावना रखने वाले सभी उनकी श्रद्धा और पूजा करते थे। वे वसुधाभर को अपना परिवार मानने वाले उदारमना सन्त थे। बेकारी, निर्धनता, अहिंसा, जातपांत का भेदभाव, गाँवों का उद्धार आदि समस्याओं को सुलझाने वाले समाज-सुधारक कर्मयोगी थे। बापू सेवाधर्म के प्रतीक, मानवता के अग्रदूत, सात्त्विकता के भण्डारी और सत्य और अहिंसा के पुजारी थे।

२ अक्तूबर, १८६९ काठियावाड़ देश के सुदामापुरी (पोरबन्दर) में श्री कर्मचन्द (उपनाम कबा) गान्धी की चतुर्थ पत्नी श्रीमती पुतलीबाई के गर्भ से उस प्रातःस्मरणीय नर-रत्न का जन्म हुआ। इनका पूरा नाम मोहनदास कर्मचन्द गान्धी था। बालक गांधी के पिता न्यायाधीश बनकर पोरबन्दर से राजकोट आये। इसी वर्ष १३ वर्ष की अवस्था में श्री गोकलदास मानक जी की बालिका कस्तूरबा से आप का पाणिग्रहण संस्कार हुआ जिसके सम्बन्ध में आपने अपनी स्पष्ट सम्मति देते हुए लिखा, "ऐसे मूर्खतापूर्ण बाल विवाह के समर्थन में मैं कोई नैतिक तर्क नहीं दे सकता।" इसी काल मांस, बीड़ी आदि व्यसनों की ओर भी आप झुके परन्तु गिरते २ सम्भल गए। सन् १८८४ में सोने की चोरी की किन्तु पिता के चरणों पर सिर झुका कर क्षमायाचना की और भविष्य में ऐसा न करने का प्रण कर लिया। सहृदय पिता की आँखों में आँसू उमड़ आये, "स्नेह के इन मोतियों ने मेरा हृदय निर्मल कर दिया और मेरे पाप को भी धो दिया। मेरे लिए अहिंसा का वह पहिला पाठ था।" महात्मा जी ने अपनी जीवनी में लिखा।

सन् १८८७ ई० में आप के पिता का देहावसान हुआ।

इसी वर्ष १५ वर्ष की अवस्था में आप के एक न्तान उत्पन्न हुई, किन्तु वह केयल ३, ४ दिन जीवित रह कर स्वर्ग सिधार गई। १८८७ में राजकोट के काठियाबाड़ स्कूल से मैट्रिकुलेशन परीक्षा पास की। विद्यार्थी जीवन में गान्धी बड़े ही गुरु व माता पिता के आज्ञाकारी भक्त रहे। विनय और शील आप के सहज गुण थे। व्यायाम से विशेष रुचि न थी जिस के कारण पश्चाज्जीवन में पछताया करते थे। 'पितृभक्त श्रवण' और 'सत्य हरिश्चन्द्र' नाटकों के देखने का इन पर ऐसा गहरा प्रभाव पड़ा कि पितृभक्ति, सत्यनिष्ठा और प्रतिज्ञापालन से सहज अनुराग हो गया। सन् १८८८ में जातिवालों के घोर विरोध की उपेक्षा कर कानूनी शिक्षार्थ माता से इङ्गलैंड को प्रस्थान करने की आज्ञा मांगी। माता डरती थी कि पुत्र कहीं मांसाहारी, दुराचारी व लम्पट न बने, अतः वह विलायत भेजने में राजी न हुई। दृढ़प्रतिज्ञ गान्धी बोले, "तुम मुझ पर विश्वास रक्खो। मैं विश्वासघात नहीं करूँगा। मैं शपथ खा कर कहता हूँ—मैं इन से बचूँगा।" इस पर माता ने जाने की आज्ञा दे दी।

इङ्गलैण्ड पहुँच कर बैरिस्टरी की शिक्षा प्राप्त करने लगे। सादा जीवन बिताते थे। इस से पढ़ाई के लिए भी पर्याप्त समय बच जाता। मितव्ययिता का गुण महात्मा जी में पहिले से ही था। विलायत की सभ्यता की चकाचौंध में भी वह घटा नहीं वरन् बढ़ता ही गया। आधा भोजन गान्धी जी स्वयं पकाते थे। इस से हाथ से काम करते लज्जा अनुभव करने वाले युवकों को शिक्षा लेनी चाहिए। १२जून सन् १८९१ ई० में आप बैरिस्टरी पास करके भारतवर्ष लौट आए।

बम्बई में गान्धीजी ने अपनी वकालत प्रारम्भ की परन्तु विशेष सफलता न मिली। अप्रैल, १८९३ में पोरबन्दर की एक

मुस्लिम कम्पनी का काम स्वीकार कर दक्षिण अफ्रीका के लिए प्रस्थान किया। जिस अभियोग में आप दक्षिण अफ्रीका गए थे उसका आपने समझौता करा दिया और स्वयं वहाँ के भारतीयों की दशा को सुधारने के लिए भगीरथप्रयत्न करने लगे। सन् १८९४ ई० में नेटाल में इण्डियन कांग्रेस का जन्म हुआ। सन् १८९६ ई० में गान्धीजी भारत लौटे और कुछ दिनों ही के अनन्तर पुनः वापिस जाने लगे। डरबन बन्दर पर २३ दिन तक साथियों सहित इन्हें रोके रक्खा। अन्त में उतारा भी तो गोरों ने उनके ऊपर आक्रमण किया। भाग्यवश पुलिस सुपरिण्टैण्डैण्ट की धर्मपत्नी ने उनकी प्राणरक्षा की। यह सब भारतीयों की सहायता व उद्धार करने का परिणाम था परन्तु इससे धीरव्रती युवक निष्काम सेवा भाव से ऊबे नहीं।

१९०६ में ट्रांसवाल में काला कानून पास हुआ। उसके विरोध में गान्धीजी ने सत्याग्रह किया। झगड़े बढ़े, लोग पकड़े गए। अन्त में जनरल स्मट्स ने समझौता कर लिया। नैटाल में गान्धीजी पर कई बार आक्रमण हुए, परन्तु उनमें कभी भी प्रतिशोध भावना न जगी। अधिकारियों का सहायता का वचन देने पर भी कभी आक्रमणकारियों पर मुकद्दमा न चलाया। परिणामस्वरूप पाषाणहृदय गोरे व कुछ पठान गुण्डे भी नतमस्तक हो गान्धीजी के प्रशंसक बन गये।

सन् १९९९ ई० में बोअर युद्ध में घायलों की सेवा के लिए सेवा समिति की स्थापना की। सन् १९१० में जब ट्रांसवाल की सरकार ने बहुत-से भारतीय सत्याग्रहियों को भारत लाकर छोड़ दिया, उस समय गान्धीजी ने उसकी अनन्य सेवा की। प्रातःकाल उठकर विद्यार्थियों को पढ़ाते और छुट्टी पाते ही

अपने ही हाथों स्त्रियों की टट्टी साफ़ करते और मैले वस्त्र धोते थे। सच है 'सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः ।' १९१४ में अफ्रीका में सत्याग्रह पूर्ण सफल हुआ । भारतीय मांगें स्वीकार कर ली गईं । विजयी गान्धी ने स्वदेश के लिए प्रस्थान किया।

भारतवर्ष में पहुँचने पर आपने अहमदाबाद के मजदूरों की समस्या को सुलझाया। खेड़ा जिले में फसल नष्ट हो गई थी, किन्तु सरकार उन्हें लगान से मुक्त नहीं करती थी । गान्धीजी ने यहां पर भी सत्याग्रह की घोषणा कर दी और पूर्ण विजयी हुए। इसके पश्चात् सरकार ने रौलेट एक्ट बनाया। जनता ने महात्माजी के नेतृत्व में देशव्यापी आन्दोलन किया। ६ अप्रैल १९१९ को सत्याग्रह की घोषणा की। अमृतसर, दिल्ली और जलियानवाले में घोर हत्याकाण्ड हुए। भारत का वायुमण्डल हिंसामय हो गया। इसलिए सत्याग्रह स्थगित करना पड़ा। महात्माजी बन्दी कर लिए गए और ६ वर्ष के कठोर कारावास का दण्ड दिया गया परन्तु स्वास्थ्य बिगड़ने से मुक्त कर दिए गये।

कोहाट में सन् १९२४ ई० में एक भयंकर हिन्दू-मुस्लिम झगड़ा हो गया। गान्धीजी ने २१ दिन का उपवास किया, परिणाम-स्वरूप शान्ति स्थापित हो गई। इसी वर्ष बेलगांव के अधिवेशन में आप कांग्रेस के सभापति निर्वाचित हुए। १३, मार्च १९३० में डाण्डी के लिए ऐतिहासिक कूच किया। वहां अपने हाथों नमक बनाया ? देश के कोने-कोने में इस आन्दोलन की प्रचण्ड अग्नि धधक उठी। सरकार ने अपनी सारी शक्ति इसके दमन में लगा दी। कारावास बन्दियों से भर

गए। अन्त में गान्धी इरविन पैक्ट बना और सब नेता व बन्दी मुक्त किए गए। ६ मास पश्चात् आप कांग्रेस के प्रतिनिधि होकर गोलमेज़ कान्फ्रेंस में भाग लेने के लिए इङ्गलैण्ड गए, किन्तु वहां से भी निराश लौटे।

९ अगस्त १९४२ को महात्माजी कांग्रेस की कार्यसमिति के अन्य सदस्यों सहित बम्बई में गिरफ़तार कर लिए गए। लगभग दो वर्षोपरान्त ही आपकी जीवनसहचरी माता कस्तूरबा का हृदयरोग से देहान्त हो गया।

द्वितीय विश्वयुद्ध समाप्त होते ही ब्रिटिश सरकार द्वारा भारतीय नेताओं से सन्धिचर्चा व स्वराज्य सम्बन्धी बातचीत प्रारम्भ हुई। कई प्रतिनिधि-मण्डल भारत आए। इन सब में महात्मा गान्धी भारतीय नेताओं के एकमात्र पथप्रदर्शक रहे। इस प्रकार ब्रिटेन में मज़दूर सरकार की स्थापना के पश्चात्, भारत में राजनीतिक परिवर्तन हुआ और उस परिवर्तन में स्वतन्त्रता प्राप्ति की झलक देख महात्मा गान्धी ने अपना अधिकांश समय उसी दिशा में लगाया। २ अप्रैल, १९४६ को ब्रिटिश मन्त्रि-मिशन से मिलने दिल्ली आए और उन्होंने न केवल कांग्रेस को वरन् मन्त्रि-मिशन को भी बुद्धिमत्तापूर्ण परामर्श से लाभान्वित किया। आशा की ज्योति उन्हें सदा प्रकाश दिखाती रही। अन्त में भारत स्वतन्त्र हुआ। शताब्दियों की दासता की कड़ियाँ बापू के अतुल प्रयास व त्याग से झनझनाती हुई टूट गईं।

अन्य नेता तो शासनचक्र संचालन में व्यस्त हो गए, परन्तु बापू जी का ध्यान साम्प्रदायिकता के उन्मूलन की ओर गया।

यिकता की विषमयी भावना के दुष्परिणाम-स्वरूप जो पाशविक पिशाची लीलाएं व नरसंहार हुआ उससे सहृदय बापू का अन्तःकरण काँप उठा। नोआखाली में उन्होंने जो अकेले कार्य किया तथा कलकत्ते में अपने उपवास द्वारा जो सफलता प्राप्त की वे भारतीय इतिहास में अनुपम हैं। पाकिस्तान जाने की तैयारी कर ही रहे थे कि दिल्ली में भयानक साम्प्रदायिक झगड़ों की आग भड़क उठी। इसलिए वे सीधे दिल्ली आए और पीड़ितों की रक्षा में जुट गए। इसी सम्बन्ध में एक उपवास भी रक्खा जिसका भारत व पाकिस्तान दोनों पर गहरा प्रभाव पड़ा। साम्प्रदायिक समस्या कुछ सुलझती सी दृष्टिगोचर होने लगी थी। परन्तु 'मेरे मन कछु और है विधना के कछु और'। कुछ प्रतिक्रियावादियों ने पहिले तो गान्धीजी पर बम छोड़ा, उससे वह बाल-बाल बच गए। परन्तु ३० जनवरी १९४८ ई. की सन्ध्या को प्रार्थना सभा में जाते हुए एक व्यक्ति ने उन पर पिस्तौल से प्रहार किया और जिस प्रकार महान् वीर, क्रान्तिकारी और महात्मा को परमगति मिलनी चाहिए थी वह गान्धीजी को मिली। भारतमन्त्री जवाहरलालजी ने अश्रुपूर्ण नेत्रों से कहा "आज हमारा तेज चला गया। जिस सूर्य से हमें प्रकाश और गर्मी मिलती थी वह अस्त है और हम अन्धेरे और ठण्डक से काँप रहे हैं।"

ईसा की क्षमा दया, जिसके अधरों पर आकर छाई हो,
अपने कातिल पर दयानन्द सी श्रद्धा जहाँ समाई हो।
सारे ही धर्मों का निचोड़, सब शिक्षाओं का समावेश,
था पूंजीभूत बापू तुझ में, कैसे भूलेंगे शुभ्र वेश॥

('सरल' बांदधार)

पण्डित जवाहरलाल नेहरू

विचार-तालिका :—

१. भूमिका—ख्याति ।
२. पूर्वज ।
३. जन्म तथा प्रारम्भिक शिक्षा ।
४. शिक्षार्थ इङ्गलैण्ड में ।
५. प्रत्यावर्तन—वकालत का व्यवसाय—विवाह ।
६. राजनीति में प्रवेश ।
७. पिता पुत्र का त्याग तथा देश की स्वतन्त्रता के लिए विविध प्रयास तथा मान ।
८. पिता की मृत्यु ।
९. कमला की मृत्यु ।
१०. द्वितीय विश्व युद्ध—स्वतन्त्रता दिवस ।
११. उपसंहार ।

पण्डित जवाहरलाल का नाम विश्व भर में सुविख्यात है। उनके व्यक्तित्व में चन्द्र की सी शीतलता, सूर्य का सा प्रताप और बिजली की सी शक्ति है। इनका जीवन प्रत्येक दृष्टि से परिपूर्ण है। आदर्श नेता के लगभग सभी गुण इनमें विद्यमान हैं।

एक अमेरिकन लेखक ने इनके सम्बन्ध में अपने विचार प्रगट करते हुए लिखा है "वर्तमान समय में जवाहरलाल संसार भर के राष्ट्र-नेताओं में सबसे अधिक प्रजातन्त्रवादी नेता हैं। चर्चिल, रूजवेल्ट और चीन के चिआंग काई शेक का तो कथन क्या, गान्धीजी इस अंश में उसके सामने नहीं ठहर सकते।" भारतवर्षीय अन्य जीवित नेताओं से भी इनका स्थान निस्सन्देह उच्चतम है। सारा एशिया आज आशाभरी दृष्टि से यदि किसी

को एक टकटकी से निहार रहा है तो वह पं० जवाहरलाल नेहरू हैं। अभी की अमेरिका यात्रा से वहां जो उनका जनता व राज्य की ओर से स्वागत और सम्मान हुआ है उससे तो उनकी ख्याति को और भी चार चान्द लग गए हैं।

पण्डित जवाहरलालजी के पूर्वज काश्मीर निवासी थे। इनके प्रपितामह पं० राजकौलजी अठारहवीं शताब्दी में फर्रुखसियर के बुलावे पर दिल्ली आए थे और बादशाह के द्वारा एक उच्च पद और जागीर देकर सम्मानित किए गए थे। इनकी जागीर सहादितअलीखां की नहर के किनारे-किनारे थी, इसलिए इस परिवार का नाम 'नेहरू' पड़ा। किसी कारणवश यह जायदाद छोड़नी पड़ी। पं० राजकौल के पुत्र पं० लक्ष्मीनारायण 'ईस्ट इण्डिया कम्पनी' के सरकारी वकील थे। इनके पुत्र पं० गंगाधर नेहरू के सुपुत्र पं० मोतीलाल नेहरू थे। मोतीलालजी अभी गर्भ में ही थे कि पिता की मृत्यु हो गई। अब इनका लालन पालन इनके बड़े भाई नन्दलाल द्वारा सुचारुरूप से होता रहा। दस वर्ष तक वे खेड़ी रियासत के दीवान और उसके उपरान्त अलाहाबाद में वकील रहे। पं० मोतीलाल की शिक्षा-दीक्षा बड़ी ही सावधानी और सुचारुरूप से हुई। पढ़ाई समाप्त करने के कुछ ही काल के उपरान्त पं० नन्दलाल का स्वर्गवास हो गया और परिवार का सारा भार पं० मोतीलालजी पर पड़ा। व्युत्पन्न और प्रतिभासम्पन्न होने के कारण इनकी वकालत दिन दूनी और रात चौगुनी उन्नति करती गई। आय वृद्धि के साथ आमोद प्रमोद के साधनों में भी बढ़ती होती गई। इनका रहन-सहन का स्तर एक राजा या गवर्नर से भी ऊँचा रहा करता था। संसार के किसी भाग की कोई भी आमोद प्रमोद की ऐसी वस्तु न थी जो इनके पास न थी।

१४ नवम्बर १८८९ के शुभ दिन अलाहाबाद में हमारे चरित्रनायक जवाहरलाल का जन्म हुआ। कुछ बड़ा होते ही इनके पठन पाठन के लिए अंग्रेज अध्यापिकाएं नियत की गईं। बाल्यकाल में तालाब में स्नान करने, तैरने और कूदने फांदने में जवाहर की विशेष रुचि थी।

१५ वर्ष तक जितनी भी प्रारम्भिक शिक्षा मिलनी सम्भव हो सकती थी, इन्हें मिलती रही। इसके उपरान्त माता-पिता ने इन्हें इङ्गलैण्ड भेज दिया। वहाँ इन्हें 'हैरो' स्कूल में प्रविष्ट कराया गया। वहां के छात्रावास में ही इनका रहन-सहन का प्रबन्ध किया गया। बड़ौदा और कपूरथला के राजकुमार भी उसी छात्रावास में रहते थे।

वर्ष डेढ़ वर्ष के उपरान्त उक्त स्कूल की शिक्षा को समाप्त कर १९०७ में ये 'केम्ब्रिज-विश्वविद्यालय' के ट्रिनिटी कालेज में प्रविष्ट हुए। तीन वर्षों के निरन्तर परिश्रम से १९१० में इन्होंने साइंस की डिग्री प्राप्त की।

इस कालेज में रहते हुए इन्हें समय-समय पर लाला लाजपतराय, बाबू विपिनचन्द्रपाल आदि भारत के निर्वासित नेताओं के स्फूर्तिप्रद भाषणों के सुनने का अवसर प्राप्त होता ही रहता था जिससे इनकी विचारधारा देशोद्धार व स्वतन्त्रता की ओर प्रवाहित हुई। ला० हरदयाल के सम्पर्क से भी इनके विचारों पर गहरा प्रभाव पड़ा।

इनके पिता का विचार इन्हें आई० सी० एस० करवाने का था, परन्तु अभी छोटी आयु होने के कारण इन्हें चार साल प्रतीक्षा करनी आवश्यक थी। पिता इतने लम्बे काल तक इनके विरह का दुःख नहीं सह सकते थे। इसलिए बैरिस्टरी पास

करने के लिए इन्हें 'इनरटैपल' में प्रविष्ट किया। लम्बी छुट्टियों में जवाहरलालजी नार्वे, स्वेडन आदि यूरोपीय देशों का भ्रमण किया करते थे जिससे इनको इन देशों और देशवासियों से पर्याप्त परिचय प्राप्त होता रहा।

सन् १६१२ में पं० जवाहरलाल नेहरू बैरिस्टर बन कर भारत लौट आए। इन्होंने वकालत का व्यवसाय आरम्भ किया अवश्य, परन्तु मन देश की स्वतन्त्रता प्राप्ति में होने के कारण विशेष सफलता न मिली।

सन् १६१७ की वसन्त पञ्चमी के दिन दिल्ली में पं० जवाहरलाल का कमला के साथ बड़ी धूम-धाम से विवाह हुआ।

यूरोपीय महायुद्ध समाप्त हो चुका था। परन्तु ब्रिटिश सरकार ने जिन आश्वासनों के आधार पर युद्ध में भारतीयों से जन-धन की सहायता ली थी, उन्हें पूरा नहीं किया। वरन् 'रोल्ट-बिल' पास कर घाव पर नमक छिड़कने का काम किया। चारों ओर हाहाकार मच गया। लोग बौखला उठे। धर पकड़ का बाज़ार गर्म हो गया।

इस पर भी उक्त कानून के विरुद्ध सर्वत्र सभाएं हुईं। १३ अप्रैल को वैसाखी के दिन अमृतसर के जलियांवाले बाग में लोगों ने जलसा किया। पंजाब के तात्कालिक गवर्नर ओडवायर ने मार्शल ला नियत कर सैकड़ों निरपराधों को गोलियों की बौछार से भुनवा दिया। यही प्रथम अवसर था जबकि जवाहरलाल ने राजनीति के क्षेत्र में पदार्पण किया। वह अपने पिता मोतीलाल की अध्यक्षता में उक्त घटना के सम्बन्ध में नियत 'जांच समिति' के सहायक सदस्य चुने गए।

सन् १६१६ का कांग्रेस अधिवेशन दिसम्बर मास में लाहौर

में रावी के तट पर हुआ। मोतीलालजी प्रधान थे। सर्वेसर्वा फिर भी गान्धीजी ही थे। यहां पं० जवाहरलाल नेहरू को गान्धीजी को निकटता से देखने और परखने का अवसर मिला। उनसे ये इतने प्रभावित हुए कि महात्माजी के निधन और उसके उपरान्त अब तक भी उनके सिद्धान्तों का अनुसरण करना ही ये श्रेयस्कर मानते हैं। कांग्रेस के अधिवेशन का भी इन पर अच्छा प्रभाव पड़ा। तब से आज तक पं० जवाहरलालजी भारतीय राजनीति के प्रमुख कर्णधारों में अग्रगण्य रहते आए हैं। इसके उपरान्त का नेहरूजी का जीवन संघर्ष, यातनाओं, कष्टों और तप और त्याग का जीवन है। १६२१ के सारे वर्ष सुविख्यात किसान आन्दोलन के सफल बनाने के लिए गांव-गांव घूमते रहे। न सर्दी की चिन्ता न गर्मी की। १६२१ के असहयोग के आन्दोलन में इन्हें प्रथम छै मास का कारावास हुआ, परन्तु तीन मास के उपरान्त ही छोड़ दिए गए। इसके उपरान्त तो कारागृह उनका स्थाई डेरा ही बन गया।

कमला की मृत्यु के उपरान्त ११ मार्च, १६३६ को पण्डितजी भारत लौटे और लखनऊ कांग्रेस के अधिवेशन के प्रधान निर्वाचित किए गए। महात्माजी आदि नेताओं द्वारा स्वीकृत 'साम्प्रदायिक निर्णय' communal a ward के ये विरोध में थे, परन्तु इनकी कुछ न चली।

१६३८ में पं० जी फिर यूरोप चले गए। वहां पर इन्होंने विश्व के बड़े २ नेताओं से परिचय किया। इसके उपरान्त भारत में आए और रियासतों का कार्य हाथ में लिया। इन्होंने पिछड़ी रियासती प्रजा का पक्ष लिया और प्रजामण्डल की नींव डाली! उसके प्रथम प्रधान यही चुने गए।

अगस्त, सन् १६३६ को यूरोप का द्वितीय महायुद्ध प्रारम्भ हुआ। ३१ अक्टूबर, १६४० को बर्धा से लौटते समय इन्हें फिर बन्दी किया गया और चार साल का कड़ा दण्ड दिया गया, परन्तु ४ दिसम्बर, सन् १६४१ को मुक्त किए गए। जर्मन और जापान की युद्धविजयों से इङ्गलैण्ड घबरा सा गया था। ऐसी डांवाडोल स्थिति में भारत का युद्ध में असहयोग उपेक्षा की दृष्टि से नहीं देखा जा सकता था। परिणाम-स्वरूप क्रिप्स-मिशन भारत आया। भारतीय नेताओं से परामर्श हुआ, परन्तु सफलता न मिली।

८ अगस्त, १६४२ को बम्बई में अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी का अधिवेशन हुआ और ६ अगस्त को सारे प्रमुख नेता बन्दी कर लिए गए। अब तो लोगों का कोपानल अपनी अन्तिम सीमा तक पहुँचा। सब सरकार के उखाड़ने में लीन हो गए। तोड़-फोड़ और विध्वंस का बाज़ार गरम हो गया।

सन् १६२६ में कांग्रेस का चिरस्मरणीय अधिवेशन दस वर्ष बाद लाहौर में रावी तट पर हुआ। उसके प्रधान पण्डित जवाहरलाल ही थे। उनका अभूतपूर्व स्वागत समारोह दर्शकों को चकित किए बिना न रहता था। अब तक ये देश की सर्वसाधारण जनता के नेता और नवयुवकों के हृदय सम्राट बन चुके थे। साथ ही इनके त्याग से लोग मोहित थे। इस अधिवेशन में कांग्रेस ने 'पूर्ण स्वराज्य' का प्रस्ताव स्वीकार किया। तब से कांग्रेस का और इनका पद सतत आगे ही बढ़ता रहा। अब मोतीलाल का सारा परिवार देश के अर्पण हो चुका था। इसलिए बड़ी रुचि और प्रेम से लाखों की लागत से बना 'आनन्द भवन' भी कांग्रेस को सौंप दिया जो तभी से

'स्वराज्य भवन' कहलाने लगा।

१४ अप्रैल १६३० के सत्याग्रह आन्दोलन में पिता पुत्र दोनों फिर बन्दी किए गए। वहां से छूटते ही पं० जवाहरलाल पुनः किसान-आन्दोलन में जुट गए। १६३१ की प्रथम जनवरी को स्त्रियों का नेतृत्व करते हुए कमला भी पकड़ी गई और जेल भेजी गई।

कारागृह में पं० मोतीलालजी के स्वास्थ्य के अधिक बिगड़ने के कारण उन्हें मुक्त किया गया और साथ ही कमला को भी छोड़ दिया। जनवरी मास में लखनऊ में पं० मोतीलालजी का स्वर्गवास हो गया जिससे पं० जवाहरलालजी को बहुत कष्ट हुआ। २४ जनवरी, १६३६ को वीरबाला कमला का भी स्वर्गवास हो गया। यह पं० नेहरू पर दूसरा असह्य देव-प्रहार था। परन्तु इसे भी इस वीर पुरुष ने धैर्य और साहस से सहन किया।

१६४५ में यूरोप का युद्ध समाप्त हुआ। वीर जवाहर १५ जून को मुक्त हुए। सर्वत्र खुशियां मनीं।

'आज़ाद हिन्द सेना' के सैनिकों का मुकद्दमा लाल किला, देहली में चल रहा था। उनको मुक्त कराने में पं० जवाहरलाल का प्रमुख हाथ था।

महात्मा गान्धी और पं० जवाहरलाल सरीखे निष्काम अनथक नेताओं के अनवरत भागीरथ प्रयास से अन्ततोगत्वा स्वतन्त्रता देवी के दर्शन हो ही गए। १५ अगस्त १६४७ में भारत स्वतन्त्र हुआ। पं० जवाहरलाल ही उसके प्रधान चुने गए। वाह्यदेशों से सम्बन्ध रखने वाले विभाग के आप ही अध्यक्ष हैं। इनके योग्यता और प्रभावशाली व्यक्तित्व के कारण इन कुछ ही वर्षों में जो भारत का बाह्य देशों में सन्मान हुआ

वह अन्यथा कभी भी सम्भव न हो सकता था।

सन् १९४९ को अमेरिका के राष्ट्रपति टरूमैन के निमन्त्रण पर आप अमेरिका गए। वहां जो आपका अभूतपूर्व मान हुआ उससे आप और भारत का सिर सदा ऊंचा रहेगा।

काश्मीर और पूर्वी बंगाल की समस्याओं का सुझाव भी आप पर ही निर्भर है। भारत के लिए जवाहर महान् ईश्वरीय देन सिद्ध हुए हैं। भारत जवाहरलाल और जवाहरलाल भारत है। ईश्वर करे आप दीर्घायु और चिरस्वस्थ होकर इसी योग्यता और तल्लीनता से आजीवन मातृभूमि की सेवा कर सकें।

राष्ट्र-पति डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद

विचार-तालिका:—

१. भूमिका। २. जन्मस्थान।
३. शिक्षा दीक्षा-प्रतिभा। ४. व्यवसाय।
५. देश सेवा धुन, त्याग। ६. उच्च पद।
७. उपसंहार।

महात्मा गान्धी जी ने एक बार कहा था कि मैं जिस भारतीय प्रजातन्त्र की कल्पना करता हूँ, उसका अध्यक्ष किसान का बेटा नहीं, बल्कि कोई किसान होगा।

अद्भुत संयोग की बात है महात्मा जी की भविष्यवाणी प्रजातन्त्र के जन्म के साथ ही पूरी हुई। देश ने सर्वसम्मति से भारतीय जन-तन्त्र का प्रथम राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद को ही चुना। जन्म से किसान न होते हुए भी उनका रहन सहन और स्वभाव यदि इस देश में किसी से मेल खाता है तो वह

वर्ग किसानों का है। डाक्टर साहिब के व्यक्तित्व में किसानों की निश्छलता, सरलता और कर्मठता की पूरी झलक है। वैयक्तिक आवश्यकताएँ भी उनकी किसानों के समान ही कम और अकृत्रिम हैं।

यद्यपि बाबू राजेन्द्रप्रसाद ने बिहार के एक छोटे से गाँव में जन्म पाया परन्तु आज आप समूचे भारत की निधि है। अखिल देश को उनपर गर्व, विश्वास और श्रद्धा है। भारत का प्रत्येक नागरिक उनकी ओर आशा और उत्साहभरी दृष्टि से निहार रहा है।

डाक्टर साहिब का जन्म ३ दिसम्बर सन् १८८४ ई० को को बिहार के 'जीरा देवी' नामक एक छोटे से गाँव में हुआ। कहावत प्रसिद्ध है, 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात'। राजेन्द्रप्रसाद में बाल्यकाल में ही कुछ ऐसे गुण थे जिनसे लोगों को आशा तथा विश्वास था कि यह व्यक्ति बड़ा होने पर देश की एक महान् विभूति बनेगा। बचपन से ही आप सरल सौम्य प्रकृति के व्यक्ति थे। आपकी बुद्धि कुशाग्र और दीन-दुखियों से सहानुभूति और प्रेम था। इन्हीं बातों को देखकर डाक्टर सच्चिदानन्द सिन्हा ने आपके सम्बन्ध में पहले ही अपनी सम्मति लिख दी थी "यह लड़का किसी दिन भारत का नेता होगा।" आगे चलकर उनकी यह आकाशवाणी चरितार्थ हो गई।

कुछ काल तक राजेन्द्र प्रसाद को घर पर ही प्रारम्भिक शिक्षा मिलती रही। ६ वर्ष की आयु में आपको छपरा जिले के एक स्कूल में प्रविष्ट करा दिया गया। सन् १९०२ में आपने प्रेजी-डैंसी कालेज कलकत्ता से उच्च शिक्षा प्राप्त की। सभी परीक्षाओं

में आप विश्वविद्यालय भर में सर्वप्रथम आते रहे। यह सब आपकी अद्भुत स्मरण-शक्ति, प्रखर-बुद्धि और प्रतिभा के कारण था।

विद्यार्थी-जीवन समाप्त करने के उपरान्त आप मुजफ्फरपुर में अंग्रेजी भाषा के प्रोफेसर नियत हुए। अध्यापन कार्य में भी राजेन्द्र प्रसाद जी इतनी ही रुचि रखते थे जितनी अपनी पढ़ाई में। परन्तु इस दिशा में विशेष उन्नति के सुअवसर न जानकर कलकत्ता हाईकोर्ट में वकालत करनी आरम्भ की। अद्भुत प्रतिभा और तार्किक बुद्धि से इस व्यवसाय में भी आपको दिन दूनी और रात चौगुनी सफलता मिली! इस प्रकार १६११ से १६ तक कलकत्ता हाईकोर्ट में और १६१६ से १६२० तक पटना हाईकोर्ट में वकालत करते रहे। पटना हाईकोर्ट और विश्वविद्यालय की स्थापना के लिए आपने सिरतोड़ प्रयास किया और सफलता पाई।

एक दिन भारत के अद्भुत जादूगर गान्धी जी से इनकी भेंट हुई। उनके व्यक्तित्व, सिद्धान्त और कार्यप्रणाली का इन पर गहरा प्रभाव पड़ा। अब भावुक व्यक्ति देश की दुर्दशा देखकर पीछे कैसे रह सकता था। फलतः सन् १६१६ के चम्पारन-सत्याग्रह में म० गान्धी जी के साथ सम्मिलित हो गए।

देशभक्ति का गहरा रंग इनके अपने व्यवसाय में बाधक बना। दो तीन वर्षों तक जैसे तैसे इसे करते रहे परन्तु सन् १६२० के महात्मा जी के असहयोग आनोलन में भाग लेने के लिए आपने अपना वकालत का व्यवसाय छोड़ दिया। तब से आप महात्मा जी के प्रभाव और पथप्रदर्शन में तन-मन-धन से देश और जाति के उत्थान और कल्याण में लगे रहे।

आपकी देशभक्ति, कार्यदक्षता और प्रतिभा से प्रभावित होकर सन् १९२२ में अखिल भारतीय कांग्रेस ने आपको अपना प्रधान मन्त्री चुना। तब से अब तक आप कांग्रेस के इने गिने चोटी के धर्ता कर्ताओं में से रहे हैं। उसकी कार्यसमिति के आप सदा से सदस्य रहते आए हैं। सन् १९३२, ३४, ३९ और ४७ में आप कांग्रेस के राष्ट्रपति चुने गये।

सन् १९३४ में बिहार में बड़ा भयानक भूकम्प आया। लाखों व्यक्ति गृह-हीन हो गए और कइयों के प्राण गए। इस आपत्ति में आपने अद्भुत कुशलता और तत्परता से आपद्ग्रस्त व्यक्तियों की सहायता की। महात्मा गान्धी और नेहरू के समान आप को भी देश के निमित्त अनेक जेल यात्राएं करनी पड़ीं। उनमें से अन्तिम जेल यात्रा सन् १९४२ के अगस्त मास की थी। सन् १९४५ में आप अन्य नेताओं के साथ मुक्त किये गये।

दिसम्बर, १९४६ में जब स्वतन्त्र भारत के लिए विधान बनने लगा तो उसके अध्यक्ष भी डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद जी ही चुने गए। २६ जनवरी १९५० को भारत स्वायत्त गणतन्त्र घोषित किया गया। उसके प्रथम राष्ट्रपति का सर्वोच्चपद डाक्टर साहिब को ही बदा था। उसके उपलक्ष में जो राष्ट्रपति का जलूस निकला उसमें भी आपके जीवन की सी सरलता और सत्यता झलक रही थी।

डाक्टर साहिब भारतीय संस्कृति के अनन्य भक्त हैं। आर्ष ग्रन्थों पर आपकी अटूट श्रद्धा है। हिन्दी, संस्कृत के आप उन्नायक और उद्धारक रहे हैं। हिन्दी साहित्य सम्मेलन के भी आप सभापति बने हैं। संस्कृत के अध्ययन पर मुजफ्फर नगर

से जो आपने भाषण दिया था वह संस्कृतप्रेमियों का अब भी पथप्रदर्शक बना है। अभी ही गुरुकुल कांगड़ी की जयन्ती के सभापति पद से जो आपने संस्कृत विश्वविद्यालय की स्थापना की भविष्य वाणी की है, उसे अब आपके हाथों से देववाणी संस्कृत के उद्धार की पूर्वसूचना का शुभ सन्देश समझना चाहिए।

डाक्टर साहिब लेखन-कला में भी इतने ही निपुण हैं जैसे कि वक्तृता में। 'सर्च लाइट' और 'देश' पत्रों की आपने ही स्थापना की। 'खण्डित-भारत' नामक पुस्तक आपने जेल में बैठे बैठे बिना सहायक ग्रन्थों की सहायता के ही लिखी थी। आपने अंग्रेजी में भी अनेक ग्रन्थ लिखे हैं। आपकी हिन्दी तथा अंग्रेजी में लिखी 'आत्म कहानी' भी प्रसिद्ध है।

ईश्वर करे हमारे सर्वगुणसम्पन्न राष्ट्रपति चिरायु हों।

"जय जय राजेन्द्रप्रसाद तुम्हारी जय हो,
तुम मातृभूमि की जय हो, विश्व विजय हो।
तुम शिक्षक, रक्षक, अजय, अमर परिवर्तक,
तुम अग्रदूत आविष्कर्ता, जगरक्षक,
तुम जयध्वनि करते चले तोड़ते बन्धन,
तुम करने निकले दुनिया में परिवर्तन,
तुम स्वतन्त्रता पाने के दृढ़ निश्चय हो,
जय जय राजेन्द्रप्रसाद तुम्हारी जय हो।" (उद्धृत)

———

भारतमाता की आत्म कहानी

'माँ, कह आत्म-कहानी'

भारत माता:—पुत्र मेरा पुराना नाम 'आर्यावर्त' है। मैं सदा से आर्यों की प्रसू प्रसिद्ध हूँ। मेरा विस्तार पर्वतराज हिमालय से समुद्र और विन्ध्याचल से कुमारी अन्तरीप तक है। मैं प्रकृति नटी की क्रीडास्थली हूँ। छओं ऋतुएँ समय समय पर आकर मेरी सुखद गोद में अठखेलियां करती रहती हैं। सब प्रकार के पक्षीगण मेरे वन उपवनों को अपने मधुर राग से निनादित करते हैं। उष्ण से उष्ण और शीत से शीत प्रदेश मेरे अन्तर्गत हैं। भूस्वर्ग काश्मीर मेरा ही तो अङ्ग है। गङ्गा यमुना आदि नदियां अनादि काल से मेरे कण्ठ के हार की लड़ियों के समान मेरे उर पर डोलती हैं। एक ओर अगाध समुद्र और दूसरी ओर गगनचुम्बी हिमाचल की बाड़ से प्रकृति को भी मेरी सुरक्षा अभीष्ट है।

देव भी यहाँ जन्म लेने के लिए उत्सुक थे। महान् विश्व-विभूतियों की तो मैं सदा से पालना करती ही रही हूँ। परन्तु ऐसे शुभकर्म किसी के ही होते थे जो यहाँ जन्म पाता।

"सुदुर्लभं भारतवर्षजन्म,
मनुष्यजातौ महतां कुलेषु।"

अस्तु, मेरी जन्मतिथि और वर्ष सृष्टि सम्वत् का प्रथम दिवस और प्रथम वर्ष ही समझिए। मेरी दो अन्य बहिनें—इड़ा (बुद्धि) और सरस्वती (विद्या) ने युगों तक मेरा साथ नहीं छोड़ा। हम तीनों को यहाँ पर्याप्त मान प्राप्त था। हमें कल्याण-कारी समझा जाता था—'तिस्रो देवी मयोभुवः इड़ा सरस्वती

मही।' 'अर्थात् तीन देवियाँ कल्याणकारी हैं—१ बुद्धि २ विद्या और ३ जन्मभूमि।'

वैदिक संस्कृति का विकास यहीं हुआ। मेरे पुत्र स्वर्ग से भी मुझे बढ़ कर समझते रहे। 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी'—'माता और मातृभूमि स्वर्ग से भी बढ़ कर होती है। मैं भी तन मन धन से दूध पूत तथा अन्न आदि से उन्हें समृद्ध करती रही।

मेरे आश्रम दैवी भावों का प्रचार करते थे। मेरे पुत्र व पुत्रियाँ वसु और आदित्यादि ब्रह्मचारी रह कर गृहस्थ में प्रवेश करते थे। यज्ञ सुगन्धि से वन उपवन महके रहते थे। तोता मैना तक ब्रह्मज्ञान की चर्चा के अभ्यस्त हो गए थे।

सत्ययुग में 'मान्धाता' आदि नृपतियों से मैं वीर-प्रसू बनी रही। वह सचमुच सत्ययुग का अलङ्कार था अलङ्कार! वैसा नृप 'न भूतो न भविष्यति' न हुआ न होगा। त्रेता में हरिश्चन्द्र-सरीखे सत्यव्रती तथा दानी राजा जन्मे। दधीचि के अस्थिदान की तो विश्वभर में चर्चा छा गई थी।

'राम-राज्य' काल की तो विश्व में अब भी महत्त्वाकांक्षा की जाती है, पर भगवान् जाने वह आ भी सकेगा या नहीं। राम-सा आज्ञाकारी सुत मैंने ही तो जना था। जब प्रातः राज्याभिषेक की आज्ञा सुनाई गई तो इठलाए नहीं, बनवास आज्ञा हुई तो घबराए नहीं, केवल 'प्रातर्भवामि भुवनाधिपचक्रवर्त्ती, सायं व्रजामि विपिनं जटिलस्तपस्वी' 'प्रातःकाल अखिल विश्व का चक्रवर्त्ती सम्राट् था और सायङ्काल को जटाधारी तपस्वी बन कर वन को जा रहा हूँ' कह कर बिना किसी प्रकार के विकार के

१४ वर्ष के लिए वन को प्रस्थान करता है। राज्य जैसे प्रबल प्रलोभनों को मेरे राम और भरत से सुत ही तो ठुकरा सकते थे, औरङ्गजेब और दारा शुजा आदि नहीं। सीता-सी सती साध्वी देवियों को जन्म दे कर कौन माता अभिमान न करेगी। दुष्ट रावण की धृष्टता तो देखिए कि मेरे अमूल्य-रत्न सीता को ही हर कर ले गया। मैं जानती थी कि तपस्वी राम के पास वन में इतने साधन नहीं कि समुद्रावेष्टित लङ्का पर आक्रमण कर मेरी पुत्री को बन्धनमुक्त करे। पर मेरी आँखें महिला जाति का अपमान भी कब देख सकती थीं। विवश हो राम को कहना ही पड़ा, 'पुत्र, यदर्थं क्षत्रिया सूते सोऽयं कालः समागतः' 'जिस काल के लिए क्षत्रिया पुत्र को जनती हैं वह काल आ गया है।' नल नील ने समुद्र पर पुल बाँधा। राम की वानरी सेना ने लङ्का पर आक्रमण किया, उस का जो परिणाम हुआ वह किसी से छुपा नहीं।

प्रजा की इच्छा सर्वोपरि मानी जाती थी। राम को सती साध्वी सीता तक का रजक के कहने से त्याग करना पड़ा। उस घटना से तो मेरी आत्मा अब भी कराह उठती है। कहीं कोई भूखा नंगा न सोता था, कोई अशिक्षित न रहता था। एक ब्राह्मण का लड़का अकाल मृत्यु से मरा, तो राज्यभर में सनसनी फैल गई।

द्वापर के अन्तिम चरण तक भी यह गौरव कुछ २ बना रहा[1]। सूर्यवंशियों का ह्रास हो गया था और चन्द्रवंशियों के हाथ में शक्ति थी। युग में बड़ा परिवर्त्तन आ चुका था इस लिए समयानुकूल ही महापुरुष जनने पड़े। मेरे आजन्म ब्रह्मचारी भीष्म की जोड़ी का सुत कोई वसुन्धरा जन के तो दिखाए।

रोना आता है जब अब के पीले मुखवाले स्कूल और कालेज के विलासी छात्रों और छात्राओं को देखती हूँ। गुरु शिष्य के सम्बन्धों में भी अब और तब महान् अन्तर है। दुर्भाग्यवश, दुर्योधन के अन्तःकरण में दानवी भावों का उदय हुआ। मेरी एकमात्र लाज कृष्ण था। वह कौरव पाण्डवों में सन्धि कराने के लिए मारा मारा फिरा, पर, 'विनाशकाले विपरीतबुद्धिः'। दुर्योधन का उत्तर "सूच्यग्रं नैव दास्यामि विना युद्धेन केशव !" ही रहा। भाई भाई का युद्ध देखने के लिए मैं जीवित नहीं रहना चाहती थी, पर विवश थी ! कूटनीतिज्ञ योगिराज कृष्ण की सहायता से न्यायपक्ष की विजय हुई। 'महाभारत' और 'भगवद्गीता' इस काल की अमूल्य कृतियां हैं। व्यास, नारद-समान दूरदर्शी विद्वान् ऋषि मुनियों से मेरी गोद भरपूर थी। दूध घी की नदियां बहती थीं। दूध मक्खन से ऊबे हुए बच्चों को ठग ठग कर दूध मक्खन का सेवन कराना पड़ता था। फिर भला मेरी सन्तान स्वस्थ क्यों न होती। चारों वर्णों और चारों आश्रमों का प्रचार था। राजाओं को अभिमान था कि 'हमारे राज्य में न कोई चोर है, न जुवारी, न लम्पट, न व्यभिचारी फिर भला कहीं व्यभिचारिणी कैसे मिल सकती है ?' कर्ण आदि दानियों के दान से कहीं कोई निर्धन न रह पाता था।

गृह-कलह से मेरी पर्याप्त क्षति हो चुकी थी। बड़े बड़े भीष्म, द्रोण, कर्ण आदि चल बसे थे। इस लिए कलियुग का प्रारम्भ पूर्व गौरव से तो नहीं हुआ, परन्तु कोई इतनी हीन दशा भी न थी। दुर्बलता के चिह्न देख विदेशी मेरी ऋद्धिसिद्धियों पर दांत गड़ाने लगे थे। शक, हूण आदि जातियों ने काल काल पर मुझ पर आक्रमण किए पर मुंह की खानी पड़ी। मेरी सन्तान की

पाचन शक्ति तीव्र थी। इस लिए वे सब विदेशी यहीं समा गए और मेरे गोद लिए सुत बन गए। स्पृश्यास्पृश्य का भूत अभी भी पास आते कांपता था।

कुछ स्वार्थी लम्पट ब्राह्मणों ने पशुहिंसा की कुत्सित लीलाओं से मेरी गोद को दूषित किया और इसे वेदविहित बताया। इस से अधिक घृणा और पतन की क्या बात हो सकती थी? मैं ने प्रभु से प्रार्थना की और परिणामस्वरूप बुद्ध सा दयालु सुत मिला। विश्वभर में उस का पावन सन्देश मेरी गौरव-गाथा के साथ गूञ्जा।

मेरे लिए 'गुप्त' और 'मौर्यकाल' फिर स्वर्णयुग थे। सब प्रकार की शासन व कला आदि की उन्नति के लिए ये विख्यात हैं। इस उखड़े गौरव को पुनः स्थापित करने का श्रेय मेरे शिखाधारी कुटिलनीतिज्ञ कौटिल्य (चाणक्य) को है। मेरी संस्कृति की टक्कर यूनानी संस्कृति से हुई थी और वे मेरी संस्कृति के उत्कर्ष का लोहा मान गए थे। "एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्र-जन्मनः स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः।" की पुष्टि दाड्यायन के आश्रम में यूनानी दार्शनिकों ने भी की थी। पुरु के चरित्र और युद्धकौशल से विश्वविजेता सिकन्दर चकित हो गया था। पुरु तो छोटे से ही प्रान्त का अधिकारी था। सैल्युकस ने तो चन्द्रगुप्त को कन्यारत्न दे कर ही पीछा छुड़ाया।

चीन, यूनान आदि के मैगस्थनीज आदि दूतों ने तब मेरी दशा देखी, और यहां वर्षों बिताए। जब अपने २ देशों को लौटे तो मेरी भूरि भूरि प्रशंसा की। यहां न तालों की आवश्यकता थी न पुलिस की। न कोई मदिरापायी था न हिंसक। क्या प्रासाद और क्या साधारण जनता के भवन सब दर्शनीय थे। शासन-

प्रणाली अनुपम थी।

कहावत प्रसिद्ध है 'सब दिन होत न एक समान' मेरे भी युगों से स्वतन्त्रता पूर्वक भोगे वे सुख, शान्ति और सम्पन्नता के दिन बदले। गुप्तवंश के उपरान्त मेरा चक्रवर्ती राज्य नहीं रहा। केन्द्रीय सत्ता प्रान्तीय शासकों की स्वच्छन्दता प्रवृत्ति के कारण दुर्बल हो गई। राजपूत वीर तो थे पर मिथ्या अभिमान और पारस्परिक अन्तःकलह के कारण सारे भारत की शक्तियों को एक शक्तिशाली राज्य में केन्द्रित न कर सके। अभागे कुल कलङ्क जयचन्द ने पृथ्वीराज के साथ द्वेष कर ईर्ष्या से यवनों को यहां निमन्त्रित किया। पृथ्वीराज की नीति-अनभिज्ञता से शताब्दियों तक मुझे दासता की शृंखलाओं में बंधना पड़ा। बार-बार पकड़ कर गोरी को क्षमाप्रदान करने-जैसी भूलें राजनीति में अक्षम्य दोष हैं। मेरे सोमनाथ आदि मन्दिरों को लूटा तथा अपावन किया गया। अतुल धनराशि और दार्शनिक साधु और महात्माओं को दास बना कर गज़नी पहुंचाया गया। पुत्र! उन दुर्दिनों की स्मृति न दिलाओ कलेजा मुँह में आता है। मेरी ही गोद में मेरे ही हृदय के टुकड़ों, निरपराध नागरिकों को हज़ारों और लाखों की संख्या में इन्हीं आंखों के देखते देखते नादिरशाही काल में पाशविक निर्दयता के साथ मौत के घाट उतारा गया। शिखासूत्रधारी कर्मकाण्डी हिन्दुओं को हज़ारों की संख्या में नित्यकर्मपद्धति समझ मरवाना औरङ्गजेब का ही तो काम था। मेरी सन्तान मेरी ही गोद में पलने के लिए जजिया कर दे और विदेशी भोग-विलासों में मस्त रहें; यह सब कुछ मुझ अभागन को सहना

रणा साङ्गा और प्रताप ने मेरी बन्धन-शृङ्खलाओं को

काटने का भरसक उद्योग किया, पर घर के भेदियों के शत्रुपक्ष में मिलने के कारण सफलता न मिली। हा विधे! मैं धंस कर पाताल क्यों नहीं चली गई जो प्रिय प्रताप से सपूतों की लाडली नन्हीं सी राजकुमारी को घास तक की रोटी भी न दे सकी! जयचन्द और मानसिंह के देश व जाति द्रोह को तो मेरी सन्तान को कभी भूलना ही न चाहिए। इस काल में अर्जुन तो थे पर मैं कृष्ण न जन सकी; अतः सत्य की विजय नहीं हुई। वीर शिवा ने मेरे अन्तःकरण की पीड़ा और आँखों के अनवरत अश्रु प्रवाह को समझा। उसे वीरता के साथ राजनीति का सम्मिश्रण करने से अद्भुत सफलता प्राप्त हुई। परन्तु इन की मृत्यु के उपरान्त मरहटों की शक्ति एक बार जोरों से चमक कर मन्द पड़ गई। मुगल साम्राज्य की जड़ें उखड़ चुकी थीं।

एक आपत्ति से अभी छूटने न पाई थी कि दूसरी आपत्ति आन उपस्थित हुई। ईस्ट-इण्डिया कम्पनी की स्थापना से मेरी आगे को स्वतन्त्रता प्राप्ति की आशाओं पर पानी फिर गया। इन कपटी व्यापारियों ने मेरी भोली सन्तान को परस्पर लड़ा-भिड़ा कर अपना स्वार्थ साध लिया।

१७ मई, १८५७ के दिन मेरे सैनिकों में अचानक ही आग भड़क उठी, जिस को शान्त करना कठिन हो गया। यह आग मेरठ से प्रारम्भ होकर अवध, बङ्गाल, कानपुर, लखनऊ आदि कितने ही नगरों में प्रचण्ड रूप धारण कर बैठी। लार्ड डलहौज़ी को अपनी दुर्नीति का अच्छा फल मिला। इसी स्वतन्त्रता के सङ्घर्ष से मेरे बन्धन टूट गए होते, परन्तु सर जान लारेन्स की कूटनीति के व्यूहचक्र में फंस कर पञ्जाब के सिक्खों ने साथ नहीं दिया। झांसी की रानी लक्ष्मी बाई की युद्धकुशलता

को देख कर तो सब को दांतों तले अंगुली दबानी पड़ी। निकलसन और हडसन ने दिल्ली के विद्रोह को फूट-नीति की सहायता से दमन किया। अन्त में यह विद्रोह शान्त किया गया। मेरे विद्रोही पुत्रों तथा उन के सम्बन्धियों की जिस निर्दयता से बर्बर शासकों ने हत्या की उस का तो मातृ-हृदय दुहराना भी नहीं सह सकता। इस घटना का परिणाम यह हुआ कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी के हाथों से शासन की बागडोर रानी विक्टोरिया ने ले ली। अपेक्षाकृत इस का शासन अच्छा रहा। परन्तु पराधीनावस्था में सुख कहां—

'पराधीन सपने हू सुख नाहीं।'

अंग्रेजों की नीति बड़ी कुटिल थी। इन्होंने मुझे सदा के लिए दास बनाने के प्रयत्नों में कोई कमी न रक्खी। मेरी सन्तान को शारीरिक पराधीनता से भी उन्हें सन्तुष्टि न मिली। मस्तिष्क की पराधीनता के लिए शिक्षा भी अंग्रेजी ढंग की प्रचलित की। मेरे भोले भाले बच्चों ने भी अपनी भाषा व वेश-भूषा का महत्त्व न समझ उनका अन्धानुकरण करना प्रारम्भ किया। अब तो पराधीनता की दुहरी तिहरी बेड़ियाँ पड़ गईं।

परभाषा परभेष परपरिधान।
पराधीन जन की अहै यह पूरी पहिचान॥

अज्ञानता का प्रसार इस सीमा तक पहुँचा कि यदि गोरे शासक कहते कि तुम्हारे पूर्वज गडरिये थे तो भी इधर से 'सत्य वचन महाराज' ही निकलता और यदि कहते कि रामायण और महाभारत काल्पनिक हैं तो भी 'सत्य वचन महाराज'। इस आत्म-ग्लानि व आत्मीयता की अनुभवशून्यता से मैं समझ चुकी थी कि अब मुझे मेरा पूर्व गौरव प्राप्त होना कठिन है।

आत्मगौरव, आत्मसंस्कृति, आत्मेतिहास का महत्त्व महर्षि दयानन्द ने जाति को समझाया। मेरी आशालतिका पुनः हरी हो चली।

सन् १८८५ में स्वराज्यप्राप्ति के उद्देश्य के लिए राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) की स्थापना हुई। लोक मान्य तिलक, श्रीगोखले, महामना मालवीय, महात्मा गान्धी, मोतीलाल नेहरू, पटेल और आजाद आदि नेताओं ने तनमन धन से कांग्रेस को स्वराज की ओर द्रुतगति से संचालित किया। महात्मा गान्धी के निराले असहयोग आन्दोलनों ने तो विश्वभर में धूम मचा दी। दूसरी ओर आतंककारी बिस्मिल, राजगुरु, भक्तसिंह आदि का दल स्वतन्त्रता के लिए हिंसात्मक संघर्ष करता रहा। सारांश यह कि मेरी गोद का प्रत्येक बच्चा मेरे बन्धनमोक्ष के लिए छटपटाने लगा।

अत्याचारी शासकों का दमनचक्र भी उग्र से उग्रतर होता गया। काकोरी षड्यन्त्र केस, लाहौर केस आदि अभियोग चला चला कर मेरे वीर बच्चों को चुन चुन कर फाँसी पर लटकाया गया। पर वे मस्ताने फांसी के तख्ते पर से भी 'माता के सिर पर ताज रहे, भारत वर्ष आजाद रहे' के तराने ही गाते हुए हंसते हंसते उस पार चल दिये।

अब विदेशी शासकों की बुद्धि चकराने लगी। झूठी स्वातन्त्र्य प्रतिज्ञाओं से भारतीयों को टालना चाहा। १९१४ के महायुद्ध के प्रणों पर दृढ़ न रहने के कारण यहां के नेताओं ने द्वितीय महायुद्ध में अंग्रेजों को साथ देने से निषेध कर दिया। परिणाम स्वरूप सब कांग्रेसी नेता जेल में डाले गये। फल यह हुआ कि १९४२ में जनता ने पुनः विकटतम स्वातन्त्र्ययुद्ध

छेड़ा। इसमें अहिंसा का भी ध्यान नहीं रहने पाया। इसको दमन करने के लिये अंग्रेजी राज्य की पर्याप्त शक्ति व्यय हुई।

मेरा लाडला सुभाष शासकों की आँखों में धूल झोंक जापान निकल गया। उसने वहां आइ० एन० ए० नाम से विदेशस्थ भारतीय सैनिकों का संगठन कर अंग्रेजी सेना पर आक्रमण बोल दिया। 'दिल्ली चलो, दिल्ली चलो, दिल्ली चलेंगे' राग गाती विजयी सेना दिल्ली की ओर बढ़ी। इन सब कारणों से अंग्रेजी शासन की जड़ें उखड़ गईं। युद्ध समाप्त हुआ ब्रिटिश मन्त्री-मिशन सन्धिचर्चा के लिए भारत आया। जिन्ना के देशद्रोह और साम्प्रदायिक विषप्रसार के कारण 'भारत विभाजन' पर नेता लोग सहमत हुए। चालीस करोड़ सुतों की माता के दो टुकड़े हुए। अनजान शिशु व महिलाओं का लाखों की संख्या में संहार हुआ। सन १६४७ के अगस्त मास में मेरे गान्धी, जवाहर, और पटेल आदि सपूतों के प्रयास से शताब्दियों के उपरान्त मैं पुनः स्वतन्त्र हुई। उस स्वतन्त्रता-दिवस का हर्षोत्सव मुझे कभी भूलेगा नहीं। परन्तु कपूत जिन्ना के कारण मुझे काट दिया गया। इससे भी दुःखद घटना ३० जनवरी, १६४८ को हुई जिसमें मेरे अहिंसा के पुजारी पुण्यात्मा सन्त गान्धी की छाती पर हत्यारे अज्ञानी गोडसे ने पिस्तोल के प्रहार किए। वे प्रहार तो मानो मेरी छाती पर ही हुए।

यह मेरी संक्षिप्त सी कहानी है। मेरी तुम लोगों को यही शिक्षा है कि परस्पर मिल के रहो और उन्नति के मार्ग पर बढ़ते चलो। यदि हो सके तो मेरे पाकिस्तान और हिन्दुस्तान टुकड़ों को मिला कर अखण्ड भारत बना देना। शुभमस्तु।

ग्रामोद्धार

विचार-तालिका :—

(क) १. ग्रामों की दुर्दशा ।
२. सुधार की आवश्यकता ।
३. रूढ़ियां व निरक्षरता ।
४. मिथ्याभिमान व मुकद्दमेबाजी ।

(ख) सुधार के उपाय—
१. कृषि-व्यवस्था में सुधार ।
२. कृषि-साधनों में सुधार ।
३. उद्योगधन्धे ।
४. कुरीति-निवारण ।
५. साक्षरता-प्रचार ।
६. पञ्चायतों का प्रचार ।
७. मनोरंजन ।
८. उपसंहार ।

भारत की अधिकतर जन संख्या ग्रामों में ही निवास करती है। इसलिए भारत का सुखी या दुःखी या उन्नत अथवा अवनत होना ग्रामों की दशा के अच्छा या बुरा होने पर निर्भर है।

आज भारत के गांवों की दशा शोचनीय है। स्थान २ पर गन्दगी के ढेर और उन पर भिनभिनाती मक्खियों को देखकर मनुष्य पहिले ही दृष्टिपात में अनुमान लगा लेता है कि यहां के निवासी पिछड़े रोगी और दुखी होंगे। भारतकी सच्ची विभूति गोबर उपले बना बनाकर जलाया जाता है। अथवा गांव के इधर-उधर सड़ता हुआ दृष्टिगोचर होता है। कूएं, जोहड़ और तालाबों का सुप्रबन्ध नहीं। इन स्थानों पर इतने मलेरियाकारी मच्छर होते हैं कि

ग्राम के गृहस्थों में से एक न एक रोगी कराहता ही सुन पड़ेगा। दवा-दारू का भी अच्छा प्रबन्ध नहीं। सुनी सुनाई औषधियों के प्रयोग से भाग्यवश कोई बच भी जाता है और बहुतों को तो अकाल मृत्यु का ही शिकार बनना पड़ता है। पशुरोगों में से कोई न कोई डेरा डाले ही रहता है। उनके लिए कोई पशु-चिकित्सालय नहीं। सड़कों की दुर्दशा का तो कुछ पूछो ही मत। बैलगड्डों से इतने गहरे गढ़े खुदे हुए होते हैं कि उधर से चलती सवारी के उलटने की आशंका लगी ही रहती है। ऐसी घटनाएं प्रायः वहां होती ही रहती हैं। ये मार्ग आगे पीछे घुटनों तक धूल और वर्षा पड़ने पर कीचड़ से भरे रहते हैं। इधर-उधर संकीर्ण गलियों में बच्चे टट्टी फिरते हैं। सूअरों की कतारों की कतारें गन्दी गलियों से अपावन ध्वनि करती हुई दौड़ लगाती फिरती हैं। बूढ़े, अधेड़ और युवक वर्ष के कुछ ही मासों को छोड़कर शेषकाल ताश खेलने, गप्प शप्प, या लड़ाई-झगड़ों और मुकद्दमेबाजी में व्यय करते हैं। निर्धनता का इतना व्यापक राज्य है कि किसी के तन पर ही बिनफटा कपड़ा दृष्टि-गोचर होगा। सबसे बड़ा विद्वान् नार्मल पास पटवारी है। सबसे अधिक प्रभावशाली अनपढ़ चौधरी होता है। बालक विद्यालय की सुव्यवस्था न होने से खेल में ही अपना सारा अमूल्य काल बिताते हैं। अपना हित अहित न समझने के कारण जिस किसी को चौधरी ने कह दिया अपनी वोट दे देते हैं। इसलिए वोट ग्राहकों के लिए चौधरी को प्रसन्न और सन्तुष्ट कर लेना भर पर्याप्त होता है।

ऐसी अवस्था में कौन विचार-शील व्यक्ति ऐसा होगा जो बिना ग्राम-सुधार किए भारत की उन्नति के स्वप्न देखेगा। नगरों

में तो यहां की आबादी का केवल दस प्रतिशत भाग रहता है।

ग्राम की नव्वे प्रतिशत जनसंख्या खेती बाड़ी पर निर्वाह करती है। इसलिए ग्रामोद्धार का प्रमुख अंग उनकी कृषि-प्रणाली को सुधारना है। भारतवर्ष में खेती आधुनिक वैज्ञानिक युग में भी उसी अवैज्ञानिक प्रणाली के अनुसार चल रही है जो प्रारम्भिक युगों में आविष्कृत की गई थी। अब इससे बढ़ती हुई आबादी का निर्वाह कठिन ही नहीं असम्भव हो गया है। जहां अन्य देशों में एक बीघे भर भूमि से टनों अन्न उत्पादन किया जाता है वहां भारत के कृषक उतनी भूमि से चौथाई अन्न भी नहीं ले सकता। कृषि-सुधार के लिए वैज्ञानिक खाद, वैज्ञानिक कृषि-उपकरण और वैज्ञानिक ही कृषि-प्रणाली का प्रयोग करना उचित है। इस कृषि-सुधार से जहां कृषकों की आर्थिक दशा सुधरेगी वहां देश की अन्न समस्या भी सुलझेगी और भारत को अन्न के लिए पराश्रित नहीं रहना पड़ेगा।

ग्रामोद्धार का दूसरा साधन घरेलू उद्योगधन्धों का विकास है। हमारे किसानों के पास वर्ष में दो तीन मास फसल उगाने या काटने के समय तो काम होता है, परन्तु शेष समय को वे अकारथ ही खोते हैं। इसलिए यदि कताई, बुनाई, सिलाई, लकड़ी की विविध दस्तकारियां आदि उद्योग धन्धे ग्रामीणों को सिखाए जाएं तो उनके समय का बड़ा अच्छा उपयोग हो सकता है। साथ ही उनकी आर्थिक स्थिति सुधरेगी।

ग्रामीणों की दशा सुधारने के लिए उनकी रूढ़िवादिता को हटाना भी अत्यावश्यक है। उनके रीति-रिवाज उनके पारिवारिक जीवन के लिए अभिशाप सिद्ध हो रहे हैं। देखा-देखी नाक कटने के भय से विवाह-शादियों पर इतना व्यय कर बैठते

हैं कि आजन्म ऋण से मुक्त नहीं हो पाते। इसी प्रकार गमी में भी उनके ऐसे रीति-रिवाज हैं, जो उनको कभी उठने नहीं देंगे। इसलिए सुधारकों को उन्हें इन रूढ़ियों के दृढ़ पंजे से मुक्त करने का प्रत्येक उपाय करना चाहिए। सरकार भी इस दिशा में पर्याप्त कार्य कर सकती है।

ग्रामीणों की दुर्दशा और उसका सुधार न कर सकने का मुख्य कारण उनकी अशिक्षितता है। बिना शिक्षा के उनकी बुराइयां दूर करनी कठिन हैं। साथ ही वैज्ञानिक कृषि-प्रणाली का शिक्षा के बिना काम में लाना असम्भव है। इसके अतिरिक्त जब तक गणराज्य के जनगण शिक्षित न होंगे, तब तक उन्हें शासन का उत्तरदायित्व समझ में नहीं आ सकता। उनके अनजाने से देश रसातल में गिर सकता है। इसलिए भारतीय ग्राम शिक्षा-केन्द्र बनाए जाने चाहिएं न कि नगर। इस दिशा में शिक्षक और छात्र-वर्ग अत्युपयोगी कार्य कर सकते हैं। यदि लम्बी छुट्टियों में वे दल बनाकर ग्रामों में अशिक्षितता निवारण करने में लग जाएं तो कुछ ही वर्षों में ग्रामीण साक्षर बनकर देश की नैया को पार लगाने में सहायक बन सकते हैं।

भारत में गणतन्त्र राज्य है। दूसरे शब्दों में इसे जनता का राज्य कह सकते हैं। जैसाकि पहिले ही बताया जा चुका है, भारत की नव्वे प्रतिशत जनता ग्रामों में रहती है। जब तक वह शासन सम्बन्धी भार या उत्तरदायित्व को सम्भालने योग्य नहीं हो जाती तब तक जनगणराज्य ही कैसा? इसलिए इनको 'पञ्चायत-राज्य' के सम्भालने के लिए शिक्षित करना सरकार का प्रथम और अत्यावश्यक कर्तव्य हो जाता है। महात्मा गांधी का स्वराज्य से अभिप्राय ग्रामीणों के राज्य से था, और वह

पञ्चायत प्रणाली द्वारा ही सम्भव हो सकता है। पञ्चायतें ही ग्राम की गन्दगी, स्वास्थ्य-विहीनता, अशिक्षितता, रूढिवाद, मुकद्दमेबाजी आदि से बचने के उपयोगी साधन सोच सकती हैं। पञ्चायतों के निर्णयों द्वारा ग्रामीण अपनी बुराइयों को सहर्ष और शीघ्र ही छोड़ सकेंगे। शहरी प्रचारकों से उन्हें सहानुभूति नहीं।

सहकारी तथा सहयोग-समितियों के प्रचार की भी ग्रामों में बड़ी आवश्यकता है। यदि ग्रामीण लोग खेती-बाड़ी तथा अन्यान्य काम परस्पर सहयोग की भावना से करना सीखें तो काम में त्वरा, अच्छाई और अधिक उपयोगिता आदि गुण शीघ्र ही आ जायं। सहयोग-समितियों के बनने से लोगों को आवश्यकता के समय कम ब्याज पर कारोबार चलाने के लिए पूंजी मिल सकती है। सेठ साहूकारों की दुगनी-तिगनी ब्याज दर से यदि निर्धन ग्रामीण बच पाएं तो निश्चय ही उनके बाल-बच्चों को अभाव का मुख न देखना पड़े।

इसके अतिरिक्त ग्राम्य-जीवन को रुचिकर बनाने के लिए वहां कुछ परिस्थिति के अनुकूल मनोविनोद के साधन भी अवश्य ही जुटाए जाने चाहिएं। यू० पी० आदि की प्रान्तीय सरकारें ग्रामों में रेडियो आदि का प्रबन्ध कर रही हैं, परन्तु ग्रामवासियों के लिए ये मनोरंजन महँगे पड़ेंगे। यदि देशी खेलों का प्रबन्ध किया जाय तो उससे ग्रामीण पर्याप्त आनन्द प्राप्त कर सकते हैं। बच्चों के खेलने के लिए भी अवश्य ही विशेष प्रकार का स्थान और खेल सामग्री होनी चाहिए।

ग्रामवासियों के ज्ञानप्रसार के लिए प्रत्येक ग्राम में एक-एक पुस्तकालय और वाचनालय होना चाहिए। उनमें रुचिकर

शिक्षाप्रद तथा साधारण ज्ञान की पुस्तकों के अतिरिक्त उनके व्यवसाय के सम्बन्ध में पर्याप्त साहित्य होना चाहिए।

आशा है स्वतन्त्र भारत में ग्रामोद्धार में अधिक विलम्ब न लगेगा। सौभाग्यवश सरकार और सुधारक संस्थाओं का ध्यान इस ओर खिंच गया है। दोनों के सम्मिलित प्रयास और जनता के सहयोग से वह दिन दूर नहीं जब हमारे ग्राम आदर्श ग्राम बन पाएंगे और नगरवासी भी वहां रहने के लिए तरसेंगे।

ब्रह्मचर्य

विचार-तालिका:—

१. भूमिका = शब्दार्थ।

२. वीर्य की महत्ता।

(क) भारतीय आयुर्वेद।

(ख) पाश्चात्य शरीर-विज्ञान।

(ग) तुलना।

(घ) समानताएँ।

३. वीर्य रक्षा से लाभ। ४. वीर्य नाश और मृत्यु।

५. उदाहरण। ६. उपसंहार।

"महिमा अखण्ड ब्रह्मचर्य की महान् है।"

'ब्रह्मचर्य' दो शब्दों के मेल से बना है 'ब्रह्म' और 'चर्य'। ब्रह्म का अर्थ 'विद्या' और 'परमात्मा' है। चर्य का अर्थ आचरण करना है। सारे का अर्थ 'विद्या और प्रभुकी प्राप्ति के लिए जो किया जाय' है। इसलिए 'ब्रह्मचर्य' एक प्रकार का 'व्रत' या 'नियम' है जो विद्यार्थी को विद्या प्राप्त करने के अभिप्राय से

और मोक्षार्थी को ब्रह्मप्राप्ति के लिए अवश्य ही धारण करना पड़ता है। और क्यों कि विद्या और ब्रह्म की खोज शेष जीवनों में भी लगी ही रहती है इसलिए अन्य अवस्थाओं में भी इसका धारण करना आवश्यक होता है।

ब्रह्मचर्य का मुख्य अंग वीर्य-रक्षा करना है। वीर्य का स्तम्भन करना लोहे के चने चबाना है। इसकी रक्षा की चिन्ता योगियों की उन्निद्र आंखों में, ऋषियों के चेहरों की झुर्रियों में और ब्रह्मचारियों की नियन्त्रित दिन-चर्या में किसे नहीं दीख पड़ती ? मूर्ख लोग भले ही जीवन शक्ति के रहस्य को न समझते हुए उल्टे मार्ग पर चलें परन्तु समझदार लोग वीर्य-रक्षा को जीवन का लक्ष्यबिन्दु जानते हैं। इस हिमाद्रिसम कठिन दुरूह कार्य में तत्त्वज्ञानियों के चिन्तन करने का मुख्य कारण यह है कि शरीर के सारे अंश को अन्दर ही अन्दर खपा लेने से विद्या और बल की सतत वृद्धि होती है। वीर्य-नाश से मनुष्य का चौमुखा ह्रास होता है। वीर्य-रक्षा बड़े महत्त्व का कार्य है।

वीर्य-रक्षा के महत्त्व को समझने के लिए 'वीर्य क्या वस्तु है' इस बात को समझ लेना आवश्यक है। भारतीय आयुर्वेद के "रसाद्रक्तं ततो मांसं मांसान्मेदस्ततो ऽस्थि च अस्थ्नो मज्जा ततः शुक्रम्" आदि वचन के अनुसार भोजन किए हुए पदार्थ से पहिले रस बनता है, रस से रक्त, रक्त से मांस, मांस से मेद, उससे हड्डी, हड्डी से मज्जा (चर्बी) और मज्जा से अन्तिम धातु वीर्य बनता है। शरीर की कल में इसके बनने का दर्जा सातवां है। इसको बनाने के लिए शरीर को जीवन के लिए आवश्यक अन्य सब पदार्थों की अपेक्षा अधिक श्रम करना पड़ता है। रस की अपेक्षा रक्त में तत्त्व अधिक है। उत्तरोत्तर सारभाग

बढ़ता ही जाता है। शरीर की भौतिक शक्तियों का अन्तिम सार वीर्य है। थोड़े से वीर्य को बनाने के लिए रक्त की पर्याप्त मात्रा की आवश्यकता पड़ती है। तनिक से भी वीर्य का नष्ट हो जाना अत्यधिक रुधिर के नाश हो जाने के समान है। पश्चिमी विद्वान् डा० कोवन अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'दी साइन्स आफ़ न्यू लाइफ़' के १०६ पृष्ठ पर लिखते हैं—"शरीर के किसी भाग में से यदि ४० औंस रुधिर निकाल लिया जाय तो वह एक औंस वीर्य के बराबर है—अर्थात् ४० औंस रुधिर से एक औंस वीर्य बनता है" आयुर्वेद के अनुसार वीर्य का स्थान सारा शरीर है। कहा भी है—

यथा पयसि सर्पिस्तु गूढश्चेक्षौ तथा रसः।
एवं हि सकले काये शुक्रं तिष्ठति देहिनाम्।

कई पश्चिमी विद्वानों का मत है कि वीर्य सातवां विकार नहीं, वरन् सीधा रुधिर से बनता है।

वीर्य की उत्पत्ति और शरीर में स्थान के सम्बन्ध में तो मतभेद हो सकता है पर जहां तक इसके शरीर, मस्तिष्क और तेज के लिए अत्यावश्यक होने का प्रश्न आता है, वहां सब विद्वान् एकमत होकर इस विचार की पुष्टि करते हैं कि

मरणं बिन्दुपातेन जीवनं बिन्दुधारणात्।

अर्थात् इसकी एक बून्द के भी शरीर में रहने से जीवन बना रहता है और एक बून्द भी गिर जाने से मृत्यु को आह्वान करना है। या दूसरे शब्दों में हम इसे यों कह सकते हैं कि ब्रह्मचर्य ही जीवन और अब्रह्मचर्य ही मृत्यु है।

विजमेन तथा गेटे दोनों ने भिन्न उद्देश्यों से ऐसे कीटों तथा पतंगों के जीवनों को दर्शाया है जो 'वीर्यकीट' के उत्पन्न होने के कुछ घण्टों बाद मर जाते हैं। नर में विजय शक्ति अधिक है

अतः उसके वीर्य के शीघ्र नाश हो जाने की अधिक सम्भावना होती है ! मकड़ी सम्भोग के उपरान्त मर जाती है। मकड़ी का मरना अन्य प्राणियों के मरने पर प्रकाश डालता है।

प्राचीन ऋषियों ने ब्रह्मचर्य के प्रश्न को व्याख्यान तक ही सीमित नहीं रखा था। ब्रह्मचर्य का प्रश्न उनके लिए जीवन मरण का प्रश्न था। विद्यार्थी अवस्था में बालक के लिए बालिका और लड़की के लिए लड़के का ध्यान, कथा, स्पर्श, क्रीडा, दर्शन, आलिङ्गन, एकान्तवास और समागम वर्जित था। उपनयन संस्कार में गुरु पहिले ही शिष्य को वेद मन्त्र से इस आठ प्रकार के मैथुन को छोड़ने की शिक्षा देता था—"मैथुनं वर्जय', भीष्म, शंकर, महर्षि दयानन्द आदि इसी प्रकार के गुरुओं से दीक्षा पाए थे। तभी उनका विद्यार्थी जीवन और शेष जीवन भी आदर्श जीवन था।

मनुष्य के मनो-विकारों को जागृत करने में आंख का भाग बहुत बड़ा है। आजकल नगरों का जीवन बालक तथा बालिकाओं के सामने अधः पतन तथा नाश के द्वार खोल देता है। वे जिधर आँख उठाते हैं, उधर ही उन्हें बलात् आकर्षित करने वाले प्रलोभन दृष्टिगोचर होते हैं। वे अपने को थाम नहीं पाते। प्रत्येक नगर नाट्यशालाओं या प्रेक्षागृहों तथा रंगमञ्चों से भरपूर है। नाच, गान, रंग, रूप सब मिलकर नवयुवक पर सहसा आक्रमण बोल देते हैं। बिचारा सामर्थ्य न होने से दब जाता है। असामयिक उत्तेजना से विविध प्रकार के अप्राकृतिक वीर्यनाश के उपायों को अपनाकर अपने जीवन-वृक्ष की जड़ में कुठाराघात करना प्रारम्भ करता है। अब उनका तेज, स्मरणशक्ति, उत्साह और स्वास्थ्य एक एक करके क्षीण होने लगते हैं।

हानिकारक अप्राकृतिक मैथुन के उपायों के शिकार बनने से एक बड़ी भारी अभागे छात्रों की संख्या गृहस्थ में प्रवेश करने से पूर्व ही नपुंसक हो जाती है। इसलिए विद्यार्थियों को अपने जीवन को अनजाने से सदा के लिए दुःख और पश्चात्ताप का घर नहीं बनाना चाहिए।

मादक-द्रव्यों का भी ब्रह्मचर्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

ड० बलौच का कथन है, कि चाय, काफ़ी तथा मौरफ़ीन को अधिक मात्रा में लेने से मनुष्य नपुंसक हो जाता है।

तम्बाकू के विषय में डा० कैल्लौग 'प्लेन फैक्टस' में लिखते हैं :—इस बात को बहुत थोड़े लोग जानते हैं। बचपन में इस दुर्व्यसन के लग जाने से शीघ्र ही कुवासनाएं प्रदीप्त हो उठती हैं।

ब्रह्मचर्य का अर्थ शक्ति है, क्रिया-शीलता है, तत्परता है, उत्साह है, ओजस्विता है, सहनशीलता है। इस का अर्थ मोटा-पन नहीं, पहलवानी नहीं, शरीर में मांस पा वज़न का बढ़ जाना नहीं। लोग बड़ी भूल करते हैं, जो किसी व्यक्ति को कार्य-शील तथा स्वस्थ देख कर भी केवल उस के पतले होने का कारण अपने दिमाग में तरह २ की कल्पनाएं करने लगते हैं, वे ब्रह्मचर्य का नाम लेते हैं, परन्तु उस के रहस्य को नहीं जानते।

मोटे आदमियों की संख्या दुनिया में कम नहीं। बैठे रहने से मुटापे को छोड़ कर और क्या आयेगा ? परन्तु इस से मोटे आदमी को आदर्श ब्रह्मचारी समझ लेना और शरीर से पतले दिखने वाले व्यक्ति से प्रश्न करने लग जाना ब्रह्मचर्य के तत्त्व को ही न समझना है।

वेदों में ब्रह्मचर्य सूक्त आता है, इस सूक्त में जहां पर भी ब्रह्मचर्य का नाम आता है। वहां साथ में 'तप' का नाम भी

मौजूद है, जैसा कि लिखा गया है ; 'ब्रह्मचर्य्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत" अर्थात् ब्रह्मचर्य रूपी तपस्या द्वारा देवताओं ने मृत्यु पर विजय पाई।

तप से मुंटापे का कोई सम्बन्ध नहीं है। इस लिए ब्रह्मचर्य से जो लाभ होते हैं, उन के विषय में सोचते हुए सदा ध्यान रखना चाहिये, कि ब्रह्मचर्य शारीरिक-स्वास्थ्य देता है, सहन-शक्ति, उत्साह तथा साहस देता है।

ब्रह्मचर्य से मानसिक-शक्तियों का विकास होता है। आत्मा उन्नति के मार्ग पर चलने लगता है। ब्रह्मचर्य का यही दावा है—दूसरा कुछ नहीं।

शिक्षा

विचार-तालिका :—

१. भूमिका—शिक्षा का महत्त्व। २. शिक्षा की परिभाषा। ३. शिक्षा का उद्देश्य (पूर्ण मानवता)। ४. भारत में शिक्षा व्यवस्था का संक्षिप्त इतिहास। ५. वर्तमान शिक्षा और उसकी त्रुटियां। ६. उपसंहार।

विद्या से धन होत है, विद्या गुणकी खान।
जो विद्या जाने नहीं, सो नर पशु समान॥

कहते हैं स्वर्ग में देवताओं की सब प्रकार की मनोवाञ्छित कामनाओं को पूरा करने के लिए वहां दो साधन जुटाए गए, एक कल्पवृक्ष और दूसरा कामधेनु। कल्पवृक्ष कल्पना किए हुए प्रत्येक पदार्थ को तुरन्त प्रदान करता है और कामधेनु कामना की हुई वस्तु तत्काल ही देती है। दुर्भाग्यवश अभागे नर के लिए एक भी साधन ऐसा नहीं बनाया जो कल्पना या कामना की हुई वस्तु का तो कहना ही क्या पर ऐसी भी वस्तु दे सके जिसके

लिए मनुष्य कामना और इच्छा के साथ उद्योग और प्रयत्न भी करता है। हां, मनुष्य के सन्तोष के लिए एक विद्यारत्न अवश्य दिया है जिसकी जितनी खोज करो, जितना उसकी प्राप्ति में प्रयास करो, उतना ही अधिक लाभ होता जाता है। इससे कठिन सुगम, दुर्लभ सुलभ; और असम्भव सम्भव बन जाता है। इसी लिए संस्कृत के कवि ने इसकी कल्पलता के साथ उपमा देते हुए कहा—

"किङ्किन्न साधयति कल्प लतेव विद्या" अर्थात् कल्पलता के समान विद्या क्या कुछ नहीं साध सकती? स्थलचर मनुष्य को इस विद्या ने ही नभचर और जलचर बनाया। सैंकड़ों मीलों की यात्रा घण्टों में ही मनुष्य कर लेता है। हजारों मीलों के समाचार और दृश्य तत्काल ही मनुष्य सुनने और देखने लग गया है। आत्मा परमात्मा के भेद को वह समझने का प्रयास कर रहा है। सचमुच विद्या की इतनी महिमा है कि उसका वर्णन ही असम्भव है। जितना ही अधिक उसकी हम उपासना करते हैं उतना ही अधिक वह हमें फल देती है। एक संस्कृत कवि ने विद्या से होने वाले लाभों का संक्षिप्त-सा विवरण करते हुए लिखा है :—

विद्या ददाति विनयं, विनयाद्याति पात्रताम्।
पात्रत्वाद्धनमाप्नोति धनाद्धर्मं ततः सुखम्॥

अर्थात् विद्या विनय देती है, विनय से पात्रता (योग्यता) प्राप्त होती है, योग्यता से धन, धन से धर्म और धर्म से सुख की उपलब्धि होती है। सुख ही प्रत्येक प्राणी के जीवन का ध्येय है।

विद्या दो प्रकार की होती है परा और अपरा। परा विद्या का सम्बन्ध आध्यात्मिक-आत्मा परमात्मा-आदि विषयों से है।

अपरा विद्या वह है जो सांसारिक विषयों से सम्बद्ध हो। इस प्रकार विद्या में ऐहिक और पारलौकिक दोनों विषय आ जाते हैं। विद्या के लिए आज कल सामान्यतया शिक्षा शब्द का प्रयोग होता है। विद्वान् और शिक्षित शब्द भी पर्यायवाची हैं।

शिक्षाकी अनेक विद्वानों ने विविध प्रकार की परिभाषाएं की हैं। मिल के कथनानुसार 'शिक्षा वह सब कुछ है, जो मनुष्य को अपने स्वरूप के विकास में सहायता देता है।' डेविसन के विचारानुसार शिक्षा द्वारा शिक्षित व्यक्ति के अन्तः करण में ऐसी विचारधारा बन जाती है जो उसे बाहरी जगत की विभिन्न परिस्थितियों में रहने में सहायता देती है। स्वामी विवेकानन्द जी मनुष्य की अन्तःस्थ सम्पूर्णता के बिकास को ही शिक्षा मानते हैं। सारांश यह कि पूर्ण शिक्षा द्वारा मनुष्य के हृदय और मस्तिष्क के विकास के साथ २ शरीर का भी विकास होता है। एक पश्चिमी विद्वान् ने इसकी परिभाषा करते हुए लिखा—'Simultaneous development of body, mind and soul' अर्थात् शिक्षा उसे कहते हैं जिससे मनुष्य के शरीर, मस्तिष्क और आत्मा का पूर्ण सामञ्जस्य के साथ विकास हो। शरीर और मस्तिष्क के विकास से हमारा व्यक्तित्व और सामाजिक जीवन और आत्मा के विकास से आध्यात्मिक और नैतिक जीवन सुधरते हैं।

भारतवर्ष की प्राचीन शिक्षा प्रणाली में शारीरिक, मानसिक और मस्तिष्कसम्बन्धी सामञ्जस्यपूर्ण विकास के साथ आध्यात्मिक विकास का भी पूर्ण-ध्यान रखा जाता था। गुरुकुल शिक्षा प्रणाली प्रचलित थी। २५ वर्ष तक छात्र वहाँ ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए शिक्षाप्राप्ति करते थे। निर्धन और धनाढ्य सभी वं

बालक आत्म-विकास के पूर्ण साधन प्राप्त कर पाते थे। कुलपति ही सबके खानपान का सुचारु रूप से प्रबन्ध करते थे। आश्रम के लिए राजा लोग, धनाढ्य और गृहस्थी उदारतापूर्ण दान देते थे। २४ घण्टे शिक्षा और अच्छे संस्कारों के जगत् में रह कर ब्रह्मचारियों के जीवन में अद्भुत सात्विकता का समावेश होता था। कृष्ण, भीष्म, द्रोण, युधिष्ठिर आदि नागरिकों का निर्माण ऐसे ही आश्रमों की टकसाल में होता था। नालन्दा और तक्षशिला विश्वविद्यालयों के काल में पुनः आश्रम व्यवस्था अपनाई गई। इस समय की उपज चाणक्य, चन्द्रगुप्त, आदि हैं।

इसके उपरान्त यवनशासन में शिक्षा प्रणाली विशेष उन्नत तो नहीं थी, परन्तु तो भी मस्जिदों और मदरसों में अरबी फारसी आदि के पढ़ाने का मुसलमान विद्यार्थियों के लिए समाज तथा राज्य की ओर से प्रबन्ध होता ही था। हिन्दू छात्रों के लिए धनाढय दानियों द्वारा पाठशालाएं स्थापित थीं। गुरु शिष्य-परम्परा से भी संस्कृत का पठन-पाठन चलता रहा; परन्तु इन सब साधनों से जाति की अशिक्षितता का ह्रास होना कठिन था।

अंग्रेजी शासन काल के प्रारम्भ में ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने देशवासियों को उतनी ही शिक्षा देनी आवश्यक समझी जितनी से कि वे अपने व्यापार के लिए मुन्शी प्राप्त कर सके। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए ११७८ ई० में वार्न हेस्टिंग्ज ने मुसलमानों के लिए एक मदरसा और १७९१ ई० में हिन्दू छात्रों के लिए लार्ड कार्न वालिस ने बनारस में एक संस्कृत विद्यालय खोला। इसी प्रकार ईसाई पादरी व राजा राममोहनराय आदि के पुरुषार्थ से कलकत्ते में भी विशेष कालिज और कलकत्ता हिन्दू कालिज आदि खुले। थोड़े ही दिनों में शिक्षा के माध्यम

का प्रश्न खड़ा हुआ। १८३४ इ० में लॉर्ड मेकाले भारतवर्ष में शिक्षा-समिति के प्रधान बने। इन्होंने सारा बल अंग्रेजी को माध्यम बनाने के पक्ष पर दिया और भारतवासियों की दब्बू नीति और अदूरदर्शिता के कारण वे इसमें सफल हुए और तब से अब तक भारतीय छात्रों पर अंग्रेजी की त्रुटिपूर्ण वर्णानुक्रमणी (spelling) और अनियमित अंगरेजी शब्दों के उच्चारण का भार पड़ा। विदेशी भाषा पर पूर्ण अधिकार होना तो कठिन था ही, परन्तु साथ ही इस माध्यम से अन्य विषयों का हृदयङ्गम करना भी विद्यार्थियों के लिए लोहे के चने चबाना हो गया। फलतः भाषा और विषय दोनों के ही पण्डित वे नहीं बन पाते थे। महंगे और दुरूह अंग्रेजी माध्यम से दूसरी हानि यह हुई कि सभ्य व धनाढ्य नगरनिवासी ही शिक्षित हो पाए और शेष अशिक्षित रह गए। मातृभाषा और प्रान्तीय भाषाओं को राज-प्रोत्साहन न मिलने से उनका विकास रुक गया। लोग या तो अंग्रेजी विद्यालयों में पढ़ते या अशिक्षित ही रहते।

मैकाले के उपरान्त १८५३ ई० में पार्लियामेंट ने भारतवर्ष की शिक्षा-दीक्षा की देखभाल के लिए एक शिक्षा समिति नियुक्त की जिसके अध्यक्ष चार्लसवुड थे। इस समिति ने ही आधुनिक प्रचलित शिक्षा की नींव डाली। प्राइमरी (प्रारम्भिक), सेकेन्ड्री और कालिज इन तीन विभागों में शिक्षा को विभाजित इसी ने किया। केन्द्रीय सरकार के आधीन शिक्षा विभाग ही पृथक् बन गया। १८७१ में केन्द्र ने प्रान्तीय शिक्षा का भार उन उन प्रान्तों को सौंप दिया। परन्तु लार्डकर्जन द्वारा १६०२ में नियत किए कमीशन की रिपोर्ट के अनुसार १६०४ में यूनिवर्सिटी ऐक्ट पास हुआ। इससे सरकार का विश्वविद्यालयों पर अधिकार बढ़

गया। १६१६ के राजसुधार में संपूर्ण शिक्षा का उत्तरदायित्व प्रान्तोंको सौंप दिया गया। केन्द्रीय शिक्षा मन्त्री केवल परामर्श-मात्रदेने वाले रह गए।

उक्त अंग्रेजी ढंग की शिक्षा व्यवस्था से शिक्षित युवकों की शारीरिक, मानसिक और आत्मिक उन्नति पूर्ण सामञ्जस्य के साथ नहीं हो सकी। नैतिक सामग्री तो इसमें है ही नहीं। शरीर के विकास के लिए भी इसने कुछ नहीं किया। अंग्रेजी ढंग के खेल प्रचलित किए अवश्य, परन्तु उनके महंगा होने के कारण सब उनमें भाग नहीं ले पाते। ब्रह्मचर्य न रखने के कारण छात्र निस्तेज और निर्वीर्य हो जाते हैं। व्यवसाय और आजीविका की शिक्षा का सर्वथा अभाव है। क्लर्की के अतिरिक्त यह शिक्षा और काम सिखाती ही नहीं जब शिक्षित युवकों की संख्या बढ़ जाती है तो बेकारी भी साथ ही बढ़ जाती है। इसके अतिरिक्त मंहगी होने के कारण सब इसे पढ़ भी नहीं सकते। गुप्त जी ने आधुनिक शिक्षा के लिए ठीक ही कहा है—

हा अब शिक्षा मार्ग भी संकीर्ण होकर क्लिष्ट है,
कुलपति-सहित उन गुरुकुलों का ध्यान ही अवशिष्ट है।
बिकने लगी विद्या यहां अब शक्ति हो तो क्रय करो,
यदि शुल्क आदि न दे सको तो भूखे रह कर ही मरो॥

× × ×

जाकर विदेश अनेक अब तक युवक अपने आ चुके,
पर देश के वाणिज्य हित की ओर कितने हैं झुके।
हैं कारखाने कौनसे उनके प्रयत्नों से चलें,
क्या क्या सुफल निज देश में उनसे अभी तक हैं फले?

बिगड़े हमारे अब सभी स्वाधीन वे व्यवसाय हैं,
शिक्षा तथा भृत्यता ही आज शेष उपाय हैं।
पर हाय ! दुर्लभ हो रही है प्राप्ति इनकी भी यहां,
यह कौन जाने इस पतन का अन्त होगा अब कहां ?

अस्तु, १६३७ के उपरान्त कांग्रेस के शासन में भाग लेने पर शिक्षा दिशा में पर्याप्त परिवर्तन और सुधार हो रहे हैं तथा होंगे। इससे वयस्क स्कूल और निःशुल्क रात्रिपाठशालाएं खोल कर नियमित विद्यार्थियों के अतिरिक्त अन्य काम धन्धों वालों को साक्षर होने का अवसर मिलता है। शिक्षितों की बेकारी को दूर करने के अभिप्राय से शिक्षा को क्रियात्मक बनाने की योजनाएं तैयार की जा रही हैं। वर्धा शिक्षा प्रणाली का उद्देश्य ही 'Learn by doing' अर्थात् 'करो और सीखो' है। सार्जेन्ट की युद्धोपरान्त की शिक्षा योजना में भी उद्योग धन्धों को पर्याप्त प्रोत्साहन मिला है। यह सब कुछ होने पर भी अभी शिक्षा क्षेत्र में पर्याप्त कार्य करना शेष है। जब अन्य देशों के साथ यहां की शिक्षा की तुलना करते हैं तो लज्जा से सिर झुक जाता है।

इस समय यहां पचास करोड़ की जनसंख्या के लिये केवल १७ विश्व विद्यालय हैं। चार करोड़ निवासियों के लिये इङ्गलैंड में उच्च कोटि के १२ विश्वविद्यालय हैं। कनाडा में पचासी लाख निवासियों के लिये १३ विश्वविद्यालय (Uuiversities) हैं। आस्ट्रेलिया की जनसंख्या पचपन लाख और ६ विश्व-विद्यालय। प्राइमरी और सेकेण्ड्री शिक्षा का तो अन्य उन्नत देशों में जाल सा बिछा है। फलतः जहां इङ्गलैंड आदि देशों में शत प्रतिशत व्यक्ति साक्षर मिलते हैं वहां भारत में अभी १२. २

प्रतिशत साक्षर बन पाये हैं।

आशा है प्रान्तीय भाषाओं और राष्ट्रभाषा हिन्दी के माध्यम नियत कर देने और वर्धा शिक्षा योजना, सार्जेन्ट शिक्षा योजना, वयस्क शिक्षा व्यवस्था आदि शिक्षायोजनाओं से त्रुटिपूर्ण शिक्षाप्रणाली और निरक्षता का पर्याप्त सुधार हो जायगा। सरकार के साथ साथ आर्य समाज, ब्रह्म समाज, सिक्ख, ईसाई आदि की शिक्षा संस्थाएं भी शिक्षा प्रसार में सक्रिय सहयोग दे रही हैं। बौद्धिक शिक्षा के साथ साथ औद्योगिक आदि शिक्षा की और भी सरकार और लोगों का ध्यान जा रहा है। इसके आधार पर कहा जा सकता है कि भारत की शिक्षा का भविष्य उज्ज्वल है।

भारतीय समाज में नारी

नारी इस छोटे से दो अक्षर के पद में अपार करुणा, वात्सल्य और स्नेह भरा है। सचमुच नारी वात्सल्य, त्याग और और करुणा की त्रिपथगा है। उसके तीन रूप हैं जाया, जननी और कामिनी। उसको भिन्न २ काल में भिन्न २ विचारकों ने या लेखकों ने भिन्न २ रूप में देखा है। नारी ने स्वयं भी विष्णु के समान समय-समय पर भिन्न २ रूप बदले हैं।

प्राचीन वैदिक काल में नारी का समाज में सम्मानपूर्ण स्थान रहा है। वह नर की सब बातों में सच्ची सहधर्मिणी थी। इसी लिये उसे हमारे शास्त्रों में अर्धाङ्गिनी कहा गया है। उसके बिना नर का जीवन अधूरा है। यज्ञ की सफलता उसकी यज्ञ

में उपस्थिति पर निर्भर हैं इसका अभिप्राय यह है कि पारस्परिक तथा सामाजिक जीवन में स्त्रियों के अधिकार पुरुषों के तुल्य थे और दोनों के परस्पर प्रेम, सहयोग और सहायता से ही मनुष्य जीवन का उद्देश्य पूरा हो सकता है। वह घर की लक्ष्मी और गृह स्वामिनी है। स्मृतिकारों ने उसका बड़ा मान किया है। मनु कहते हैं—'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।' अर्थात् जहाँ नारी की पूजा होती है वहाँ देवता रमण करते हैं।

वैदिक काल में नारियाँ केवल पारिवारिक कृत्यों में ही नर का हाथ नहीं बटाती रहीं वरन् मन्त्रद्रष्टा ऋषियों के साथ भी ऋषिकाएं आती हैं। ब्रह्मवादिनी गार्गी ने तो अपने गूढ़ प्रश्नों द्वारा याज्ञवल्क्य सरीखे तत्त्ववेत्ताओं को मन्त्रमुग्ध कर दिया था। इसी प्रकार मैत्रेयी और आत्रेयी आदि महिलाएं भी वैदिक काल के इतिहास के देदीप्यमान स्त्री-रत्न हैं। लीलावती की गणित-सिद्धान्त-गवेषणा ने मानव जाति का महान् उपकार किया है।

सीता का सतीत्व तो विश्व भर के साहित्य में कहीं अपनी उपमा नहीं रखता। महाभारत-काल सांस्कृतिक और धर्म-मर्यादा की दृष्टि से पूर्ववर्ती कालों से हीनतर माना जाता है, परन्तु उस काल में भी हमें गान्धारी, कुन्ती जैसी आदर्श नारियों के दर्शन होते हैं।

पूर्व-मध्य-काल में भी भारतीय नारी ने अपना नारीत्व स्थिर रखा। वह आदर्श जननी और आदर्श पत्नी बनी रही। यशोधरा अपना पुत्र के प्रति कर्तव्य पति का साथ त्यागने पर भी निभाती है। "मेरी मलिन गूदड़ी में भी है राहुल सा लाल।" परित्यक्ता भी यशोधरा की शुभ कामना पति के लिये ज्यों की त्यों बनी

रही। पति की विरह वेदना से पीड़ित उसकी इच्छा है—"बस सिन्दूर बिन्दु से मेरा जगा रहे यह भाल।" वह कर्मनिष्ठा नारी है। आत्मघात की अपेक्षा कर्तव्यनिष्ठ हो जीवन यापन करना कहीं अच्छा समझती है। जननीपद के उत्तरदायित्व का अनुभव करती हुई वह कहती है—

"स्वामी मुझ को मरने का भी,
तो दे न गए अधिकार॥
छोड़ गये मुझ पर अपने,
उस राहुल का सब भार॥

जब हम परित्यक्ता भरत-लालन में तत्पर शकुन्तला से यशोधरा की तुलना करते हैं तो वह तनिक भी घटिया नहीं दीखती। जिस प्रकार पाषाणहृदय दुष्यन्त को शकुन्तला के सम्मुख अन्ततोगत्वा हार माननी पड़ती है, ठीक ऐसे ही महात्मा बुद्ध भी स्पष्ट रूप से नारी जाति की उत्कृष्टता की पुष्टि करते हुए कहते हैं—

"दीन न हो गोपे, हीन नहीं नारी कभी
भूत-दया-मूर्ति वह मन से शरीर से"

भारत का भाग्यभानु अस्त हुआ। पारस्परिक फूट के कारण देश यवनों के आक्रमण का सफलतापूर्वक प्रतिरोध न कर सका। पराधीनता के साथ-साथ जाति में विजेताओं के अवगुणों ने भी घर कर लिया। अवगुण्ठन (पर्दा) प्रथा ने नारी के बाह्य जीवन पर विराम चिन्ह सा लगा दिया, जिसका उनके स्वास्थ्य और बौद्धिक विकास पर गहरा प्रभाव पड़ा। स्वार्थी नर-पिशाच ने 'स्त्रीशूद्रौ नाधीयताम्' का आश्रय ले कर नारी जाति को शिक्षा से भी वञ्चित कर दिया। पण्डितों ने 'अष्ट

वर्षा भवेद्गौरी' आदि घातक नियम बना कर बालविवाह का प्रचलन कर दिया। कुछ लम्पट यवनों की कुदृष्टि से कन्याओं की पवित्रता बचाने के लिये ऐसा करना आवश्यक भी था। पर्दा प्रथा और बालविवाह ने नारी जगत् को शारीरिक, और अशिक्षितता ने बौद्धिक रूप से अत्यन्त क्षीण और हीन बना दिया। फलतः पवित्र नारी पतिदेव की कामवासना की तृप्ति का साधनमात्र रह गई, या यों ही कहिये कि बच्चों की उत्पत्ति के साधन के अतिरिक्त उसका समाज में कोई प्रतिष्ठित स्थान नहीं रह गया था। भर्तृहरि सरीखे वीतरागों ने उन्हें 'मायाकरण्डी नरकस्य हण्डी, तपोविखण्डी नरकस्य हण्डी, कह-कह कर और भी हीन बना दिया। अब स्त्री उठते मानव की सहायक न रह कर एक दुर्गम घाटी समझी जाने लगी। यह 'कनक और कामिनी दो घाटियाँ हैं लोक में।' माया और मायाविनी दोनों आध्यात्म मार्ग का रोड़ा समझी जाने लगीं। सन्त तुलसीदास कौशल्या, सीता आदि नारियों का जहाँ मान करते थे वहाँ सामान्य नारी को ढोल और गंवार से ऊँचा नहीं मानते थे—

ढोल, गंवार, शूद्र, पशु, नारी,
यह सब ताड़न के अधिकारी।

आर्थिक पराधीनता के कारण नारी नर पर इतनी आश्रित हो गई कि वह उसे अपनी जड़ सम्पत्ति के अतिरिक्त और कुछ नहीं समझता था। नारी धन को बढ़ाना भी वह सामान्य धन के समान समझता था। नर के बहुविवाह ने नारी के मानसिक दुःख को बढ़ाने में घाव पर नमक छिड़कने का काम किया।

यह सब कुछ होते हुए भी कर्तव्यपरायणा नारी ने मानव

का बड़े तप और त्याग से साथ दिया। घर ही उसके लिये सुखधाम नहीं बनाया वरन् कर्तव्य-पथ से विचलित होते नर को पथ भी दिखाया। समराङ्गण में युद्ध के निमित्त प्रस्थान करते हुए वीरों को उनकी अर्धाङ्गिनी ललनाएं उपदेश देती हैं—

पाछा फिर मत झांकज्यों, पग मत दीज्यो टार।
कट भल जाज्यो खेत में, पर मत आज्यो हार॥

पति के युद्ध में काम आने पर करुणामूर्ति भी नारी अबला बन कर रोने नहीं बैठती, वरन् कहती है—

भल्ला हुआ जु मारिया बहिणी म्हारा कंतु।
लज्जेजं तुव पंसि अहु जइ भग्गा घर एन्तु॥

ऐ सखी, बड़ा अच्छा हुआ जो समराङ्गण में मेरा पति मारा गया। यदि कहीं भाग कर जान बचा कर घर आता तो आप लोगों के सामने मुझे लज्जित होना पड़ता। पति के साथ चिता पर जीवित जल कर पत्नी अपने सहधर्मिणी या अर्धाङ्गिनी होने का एकतरफा परिचय देती रही। इतने पर भी इस कर्तव्यपरायणा त्यागमूर्ति नारी को मध्ययुग के नर ने कामिनी रूप से ही देखा—

सोहती बहुत भाँति चीर सौं लपेटी सदा।
जाकी मध्य दसा सो तो मैन को विधान है॥

× × ×

पूरी निधि नेह की उज्यारी दिपै देह की सु।
प्यारी तू तौ गेह की निदान समादान है॥

समय ने पलटा खाया। अंग्रेजी राज्य में वातावरण में पर्याप्त परिवर्तन आया। नर के दृष्टिकोण में भी परिवर्तन का आना स्वाभाविक था। जहाँ वह निज को पराधीनता

की कारा से मुक्त किया चाहता था वहाँ नारी स्वतन्त्रता के लिये भी पन्त के इन शब्दों में हुंकार निकलती है—

मुक्त करो नारी को मानव,
चिरवन्दिनी नारी को।
युगयुग की बर्बर कारा से,
जननी सखी प्यारी को॥

नारी भी कारा से मुक्त हो रही है और आगे को पूर्ण मुक्त हो जाएगी। नर के साथ उसको आर्थिक, सामाजिक व राजनैतिक अधिकार भी समान रूप से ही प्राप्त हो चुके हैं। परन्तु आज की नारी वात्सल्य, त्याग और करुणा की त्रिपथगा बनने में अपना गौरव नहीं समझती। अपना तारुण्य बचा कर वह सन्तति निग्रह चाहती है। नर (पति) के लिये अपना सर्वस्व न्यौछावर करना भी उसकी दृष्टि में आदरणीय त्याग नहीं, वरन् मूर्खतामात्र है। वह जाया और जननी पद का मूल्य इतना नहीं आँकती जितना मोहिनी और कामिनी का। नारी के इस स्वभाव-परिवर्तन में पश्चिमीयता की प्रत्यक्ष और गहरी छाप है। भारतीयता के त्याग से उसे चाहे किसी मात्रा तक भौतिक सुख का आभास मिले, परन्तु सीता, सावित्री, गार्गी और विद्योत्तमा का मान प्राप्त नहीं हो सकता। हमारी दृष्टि में नारी को नर की कारा से मुक्त होकर उस भव्य तथा गौरवान्वित भूत की ओर बढ़ना चाहिये जब उसका समाज में समान अधिकार था और साथ ही प्राप्त था गौरव। सच्ची स्वतन्त्रता तो उपादेय है परन्तु उच्छृङ्खलता और लम्पटता तो हेय दोष ही रहेंगे। स्वतन्त्र होकर भी नर और नारी रूप दोनों अर्धांगों को मिल कर पूर्ण मानवता की सृष्टि करनी चाहिये। तभी जीवन में सामंजस्य और सरसता का संचार होगा।

धन और ईमानदारी

विचार-तालिका :—

१. भूमिका—धन की आवश्यकता और महत्त्व। २. धन के पर्यायवाची और परिभाषा। धन साधन न कि साध्य। ३. धन की उपयोगिता के आधारभूत तीन तत्त्व १. उत्पत्ति २. रक्षा ३. सुधार। ४. क्या आजकल धन से ये वस्तुएँ सुलभ हैं ? यदि नहीं तो क्यों ? ५. धनोपार्जन में ईमानदारी का प्रयोग अनिवार्य। ६. धन की धारा सब तक पहुँचनी चाहिए अन्यथा सामाजिक शोषण और विद्रोह की सम्भावना। ७. उपसंहार।

"दादा बड़ा न भैया सबसे बड़ा रुपैया"

सचमुच रुपया सब से बड़ा है। इसके लिए लोग उस जननी और जन्मभूमि को भी छोड़कर परदेश चले जाते हैं जिसे स्वर्ग से भी बढ़कर माना गया है। नीतिकारों ने तो सोने को सब गुणों का आश्रय बताया 'सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ते' हम प्रत्यक्ष भी देखते हैं कि धनवान ही सब संस्थाओं के प्रधान और संचालक बने हैं। लोग उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते नहीं थकते। कवि, चित्रकार, मूर्तिकार आदि सब कलाकार अपनी कला की सार्थकता ही तब समझते हैं जब आश्रयदाता धनाढ्य प्रसन्न हो जाय। धर्म भी बहुत अंश तक धनी के हाथ में है। यदि धनाढ्य मन्दिर बनाए तो देवपूजा हो। पत्नी भी तभी तक पति से प्रेम करती है जब तक वह धन कमाने में समर्थ है। बन्धुबान्धव व इष्ट मित्र आदि तो हैं ही धन के साथी। सांसारिक व्यवहार कुशल कविवर रहीम ने ठीक ही कहा है—

वरु रहीम कानन वसिय, अशन करिय फल तोय।
बन्धुमध्य धनहीन ह्वै, रहिबो उचित न होय॥

संस्कृत कवि ने तो इस टके को सब कुछ ही बता दिया—

टका धर्मष्टका कर्म टका हि परमं तपः।
यस्य गृहे टका नास्ति हा टका टकटकायते॥

धन को विश्व में इतना महत्त्व इसीलिए दिया गया, क्योंकि कोई भी संसार का काम ऐसा नहीं जो धन से नहीं हो सकता। इसी लिए तो पुरुष इसका दास है 'अर्थस्य पुरुषो दासः' गुरुवर द्रोणाचार्य तक को इस अर्थ ने पापी दुर्योधन का साथ देने को बाधित किया था—

'अर्थेन भीष्म क्रीतोऽस्मि कौरवैः' ऐ भीष्म, मुझे कौरवों ने धन से खरीद लिया है। जब इतने बड़े वीतराग भी इस धन से खरीदे जाते हैं तो साधारण व्यक्ति का तो कहना ही क्या!

इस धन की इतनी प्रशंसा सुनकर इसकी परिभाषा जानने की सहज ही उत्सुकता होती है। संस्कृत में व्यापक रूप से इसे सम्पत्ति या सम्पत् कहते हैं क्योंकि यह विषम से अर्थात् कठिनाइयों से निकाल कर सम् = सीधे में पत् डालती या रखती है। इसलिए परिभाषा से ही विदित हो जाता है कि सम्पत्ति में दुःख और कठिनाइयों से बचाने की शक्ति है। साहित्य समाज तथा अर्थ शास्त्र के पण्डित और अपने काल के अनुपम विचारक और सुधारक रास्किन महोदय अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक 'अन टु दिस लास्ट' (Unto-this last) में लिखते हैं कि इस सम्पत्ति को वैल्थ (Wealth) इसलिए कहते हैं क्योंकि यह 'leads to well being' भलाई की ओर ले जाती है। इससे आगे वे इसकी कैपिटल (Capital) के नाम से परिभाषा

करते हुए लिखते हैं कि इसे कैपिटल इसलिए कहते हैं क्योंकि यह 'Captiulates,produces other than itself' अपने से अतिरिक्त कोई वस्तु उत्पन्न करती है, और वे वस्तुएं तीन हैं—

(१) जीवन की उत्पत्ति (Production)

(२) जीवन-रक्षा (Preservation)

(३) जीवन-सुधार (Betterment of life)

उक्त परिभाषा सम्बन्धी अर्थशास्त्रियों के विचारों से विदित हुआ, कि धन अपने आपे में साध्य नहीं वरन साधन है। उसका साध्य जीवन निर्माण, रक्षा और सुधार है। एक व्यापारी समुद्र यात्री सोने व बहुमूल्य रत्नों से लदे जहाज़ में यात्रा कर रहा है। वह सब सम्पत्ति उसकी निजी है और प्राणों से भी प्यारी है। परन्तु जहाज़ में एक छिद्र हो गया है जिससे पानी अन्दर प्रवेश करता जा रहा है। मल्लाह कहता है प्राण संकट में हैं, यह भार समुद्र में फैंक कर जहाज़ हल्का करना होगा। अन्ततः कृपण भी यात्री प्राणों के लालच से इसमें सहमत हो जाता है। इससे स्पष्ट है कि धन जीवन के लिए है नकि जीवन धन के लिए।

परन्तु आज धन साध्य बन गया है और जीवन साधन। इसलिए धन से न जीवन निर्माण ही हो रहा है और न जावन रक्षा और न सुधार ही। पौष्टिक पदार्थों के अभाव से दुर्बल सन्तान उत्पन्न हो रही है और जीवन की रक्षा उन लोगों के हाथ में है जो जीवनोपयोगी घी, दूध, मक्खन, आटा, दाल, चावल आदि का क्रय-विक्रय करते हैं। दुर्भाग्यवश वे भी धन को साध्य समझते हैं। धन को अधिक से अधिक मात्रा और कम से कम समय में उपार्जन करने का प्रत्येक व्यवसाय वाले

का प्रयास रहता है। परिणाम यही होता है कि धनवान् बनने के लिए सरल, सुगम, कल्याणप्रद, स्वाभाविक राजपथ न पकड़ पगडण्डी (Short-cut) का आश्रय लिया जाता है। फलतः गाय को चारा आदि खूब खिलाकर हृष्ट-पुष्ट बनाकर अधिक दूध लेने का मार्ग कण्टकाकीर्ण और लम्बा दिखाई देने लगता है। इसलिए कम दूध में दुगने तिगने पानी मिलाने से जब पर्याप्त धन आ जाता है तो दूध बेचने वाले को अधिक दूध की क्या आवश्यकता ? घी के व्यापारी को महंगे घी लेने की भी कोई आवश्यकता नहीं। तेल, चर्बी या कोटोज़म शुद्ध घी की थोड़ी सी मात्रा में मिला देने से उसी भाव बिक सकते हैं। आटे वाले के आटे में भी सड़ी, लकड़ी का चूर्ण सुगमता से बिक सकता है। हलवाई की मिठाइयों के लिए भी तेल और कोटोज़म के रहते महंगा शुद्ध घी लगाना मूर्खता है। वस्त्र में भी ऊन के कपड़े के साथ सूत या वनस्पतिज तन्तु प्रयुक्त हो सकते हैं। अब तनिक देखिए जिस जाति के बच्चे के पेट में दूध के स्थान रंगीन पानी, आटे के स्थान लकड़ी का बूरा, घी की जगह तेल आदि प्रवेश कर रहे हैं उसके स्वास्थ्य और मस्तिष्क-शक्ति के पूर्ण विकास की कितनी सम्भावना रह जाती है ? बेईमानी पराकाष्ठा से बढ़ गई है। यूरोप से आने वाला सूखा दूध और घी विश्वसनीय; पर निकटवर्ती गाँव से आने वाले दूध के डब्बे का दूध और घी विश्वास के योग्य नहीं।

जीवन के सुधार की इससे भी अधिक शोचनीय दशा है। धार्मिक कहलाने वाले ब्राह्मणों ने जिन पर कि जाति के सुधार का भार था, नाना प्रकार के मिथ्या मत मतान्तर तथा पाखण्ड चला कर श्रेय सन्मार्ग को छुपा लिया है। आज के सुधारक अध्यापक

वर्ग को भी धन के लिए अनेक अच्छे और बुरे ट्यूशन आदि मार्ग निकालने ही पड़ते हैं। विद्यार्थी भी विद्याप्रेमी न होकर नाममात्र का प्रमाणपत्र लेने के लिए लालायित रहते हैं। इसके लिए नकल और कहीं २ पैसा भी पर्याप्त हो जाता है। विश्व-विद्यालयों में क्लर्क, परीक्षक आदियों को कुछ दे दिलाकर नाममात्र के लिए परीक्षा में बैठकर या बिना बैठे ही प्रमाणपत्र और उच्च श्रेणी प्राप्त किए जा सकते हैं। इस प्रकार मस्तिष्क का विकास होने ही नहीं पाता। शील और आचरण तो लुप्त-प्राय ही हो गए हैं। सरकारी कार्यालयों की बेईमानी की इससे भी अधिक दुर्दशा है।

धन को ध्येय मान और बेईमानी का सहारा लेकर जाति और देश ने क्या पाया? रोग, मूर्खता और अल्पायु। सब यही समझने लगे मेरी बेईमानी से क्या? परन्तु परिणाम वही हुआ जो अकबर के दूध के कड़ाहे का। उसने विश्वासपात्र अधिकारियों को कहा कि शाहजादे के जन्म-दिवस पर दूध की आवश्यकता है। कड़ाहा गाड़ दिया गया। देखने वाला कोई न रखा। प्रत्येक बुद्धिमान यही समझता रहा कि यदि मैंने पानी भी डाला तो क्या पता चलेगा? परिणाम यह हुआ कि कढ़ाहे में दूध की बूँद भी न पड़ी। यही दशा आज जाति और देश के कड़ाहे की हो रही है। यदि प्रत्येक व्यक्ति अपने से ईमानदारी का प्रारम्भ करे और 'अर्थशुचि र्विशिष्यते' का महत्त्व समझे तो देश और जाति पुनः सुरक्षित और सुशिक्षित हो सकते हैं।

ईमानदारी के साथ-साथ धन कमाते हुए यह भी देखना चाहिए कि क्या यह धन की धारा देश के प्रत्येक भाग को सींचती बह रही है या नहीं। जब कभी पूंजीपति धन के प्रवाह

को रोक कर औरों के पास नहीं जाने देते तब समाज में अव्यवस्था, असन्तोष और विद्रोहों की सृष्टि होती है। जब जोहड़ में खड़ा पानी सड़ने लगता है, तो माली खोद कर बन्धे द्वारा उसे बलात् खेत या बाग में ले जाता है। ऐसे ही निर्धन उठकर बलात् धनी राजाओं के पास दबे धन को बलात् छीनना चाहते हैं। रूस और फ्रांस की क्रान्तियां इसके साक्षी हैं। छोटा इतनी विषमता नहीं सह सकता—

एकहिं साबुन क्रीम बहु चाहिय नित्य नवीन।
काया धोवन हेतु इक, वारि न पावहि दीन॥

धन को सब तक पहुँचाने का सुगम साधन उदारतापूर्ण दिया दान और धनाढ्यों पर लगाए कर हैं। साम्यवादी सम्पत्ति का समविभाग भी उपाय बताते हैं। कुछ भी क्यों न हो परन्तु जीवनोपयोगी धन सबको मिलना चाहिए। तभी समाज में सुख, शान्ति, मेल और सम्पन्नता निवास कर सकते हैं।

उक्त कथन का सारांश निकला कि धन उपयोगी अवश्य है परन्तु उससे जीवन का निर्माण, रक्षा और सुधार होना चाहिए न कि धन धन के लिए कमाया जाना चाहिए। ये बातें धन से तभी सुलभ हो सकती हैं यदि धन ईमानदारी से कमाया जाय। इसके अतिरिक्त 'केवलाघो भवति केवलादी' (अकेला खाने वाला पाप ही पाप खाता है) इस वेद वाक्य को जीवन में चरितार्थ कर भूखे नंगों या समाज संस्था आदि को भी अपने धन का भाग देना चाहिए। तभी धन धन है नहीं तो लड़ाई, विद्रोह और द्वेष की जड़ है।

राष्ट्र और राष्ट्रीयता

विचार-तालिका:—

भूमिका :— १. राष्ट्र और राष्ट्रीयता की परिभाषा। २. राष्ट्र के ४ अवयव। व्याख्या। राष्ट्रोन्नति इन्हीं की उन्नति से। ३. राष्ट्रीयता के अन्तर्गत—भाषा, संस्कृति और मातृभूमि। ४. राष्ट्र की सम्पत्ति। ५. उपसंहार।

राष्ट्र उस देश को कहते हैं जिसका अपना राज्य हो। अमेरिका, रूस, इङ्गलैण्ड आदि स्वतन्त्र देश राष्ट्र हैं और जर्मनी, जापान आदि पराधीन देश पहले राष्ट्र थे परन्तु अब स्वतन्त्र न होने तक राष्ट्र नहीं कहला सकते। भारत पहिले अंग्रेजी शासन काल में, राष्ट्र नहीं था परन्तु अब स्वतन्त्र होने के उपरान्त राष्ट्र बन गया है। पहिले यहां की राष्ट्रीयता ब्रिटिश और अब भारतीय है। जिस राज् धातु से राजा और राज्य बनते हैं उस ही से राष्ट्र शब्द की सिद्धि होती है। इसलिए राष्ट्र के साथ 'अपने राज्य' होने की शर्त अनिवार्य है। अपने राष्ट्र के प्रति प्रेम, त्याग, कर्तव्यपरायणता तथा उसका अभिमान होना आदि बातें राष्ट्रीयता के अन्तर्गत है।

उन्नत राष्ट्र की चार विशेषताएं होती हैं—

१. योग्य शासक।

२. कर्तव्यपरायण और राजभक्त प्रजा।

३. शासक और प्रजा दोनों का राष्ट्रीय जीवन होना।

४. सम्पन्नता, सम्पत्ति का सदुपयोग।

योग्य शासक :—पुरा काल में शासक को इन्द्र, राजा और राष्ट्रपति आदि के नाम से पुकारते थे। मध्यकाल में राजसभा

के प्रधान को सभापति नाम से पुकारने लगे। अब फिर पुराने शब्द राष्ट्रपति का प्रचलन हो गया है। अन्य अच्छाइयों के साथ साथ राष्ट्र की उन्नति के लिए शासक या शासक-वर्ग का योग्य होना अत्यन्त आवश्यक होता है। योग्य शासक अल्प-काल में ही अपने राष्ट्र को उन्नति के शिखर पर पहुंचा देता है। कुछ कुछ परिवर्तनों के साथ सभी में शासक की योग्यता निम्न लिखित बातों पर निर्भर होती है :—

१. कर्तव्य-परायणता।

२. बलवत्ता।

शासक का कर्तव्य मुख्यतः तीन प्रकार का होता है—

१. प्रजा के प्रति।

२. राष्ट्र के प्रति।

३. पर-राष्ट्र के प्रति।

यदि इन तीनों कर्तव्यों को वह सुचारु रूप से निभाता है तो वह शासक पूर्णतया योग्य है।

उसके बल में शारीरिक, बौद्धिक, चारित्रिक और आत्मिक आदि सभी बल आ जाते हैं। वास्तव में शासक को प्रजा अपना आदर्श मानती है अतः उसमें आदर्श पुरुष के जितने ही अधिक गुण होंगे उतना ही अधिक वह प्रजा के प्रेम और श्रद्धा का पात्र होगा। और देशों में लोग शासक में धार्मिकता देखें या न देखें परन्तु भारत की धर्मपरायण जनता को लुभाने के लिए तो उसका चरित्रवान् और धर्मात्मा होना आवश्यक है। धर्म का अर्थ सम्प्रदाय नहीं समझना चाहिए, वरन् महात्मा गान्धी की दृष्टि में जो व्यापक धर्म का स्वरूप था तथा जिसमें मौलिक सत्य, परोपकार आदि बातें समाविष्ट हैं वही लेना चाहिए।

अच्छे शासक-मण्डल या शासक के शासन में डाके, चोरी, जारी, अत्याचार, और चोरबाजारी आदि दोष नहीं रह सकते। प्रजा धर्मपरायण और कर्तव्यपरायण होती है। यदि शासक अच्छा होगा तो 'यथा राजा तथा प्रजा' उक्ति के अनुसार प्रजा निश्चय ही अच्छी होगी। रामराज्य सभी कालों में आदर्श माना गया। उसका रहस्य राजा और प्रजा का धर्म या कर्तव्य-परायण होना था। एक ब्राह्मण के बच्चे का पिता से पूर्व मर जाना अनर्थ समझा गया था। पिता भागा २ राम के पास आया और इस जन्म मरण के क्रम विपर्यय का दोषी राज्य प्रबन्ध व राजा को ठहराया। सचमुच सुव्यवस्थित शासन में अशिक्षा, अल्पायु, रोग, अकाल मृत्यु आदि ठहर ही कैसे सकते हैं ?

उन्नत राष्ट्र की प्रजा अपना राष्ट्र के प्रति कर्तव्य भली भान्ति समझती है। वह शासक के मार्ग में रोड़ा नहीं अटकाती वरन् उसकी भक्त बनकर राष्ट्र हित के कार्य में उसका पूर्ण सहयोग देती है। अच्छे और योग्य शासक का विरोध करना देशद्रोह से कम अपराध नहीं गिना जाता। जिस देश में मन्त्रि-मण्डल के विरुद्ध षड्यन्त्र चला चलाकर उसे भंग करने के सतत प्रयास चलते रहते हैं, वह राष्ट्र अधिक उन्नत नहीं हो सकता। फ्रांस, रूस, अमेरिका और इङ्गलैण्ड की समता में आज इसलिए नहीं आ सका क्यों कि वहां राज्य क्रान्तियाँ प्रायः होती रहती हैं। दलबन्दी के दो पाटों में सुन्दर शासन पिस सा जाता है। पूर्वी पंजाब इसका ज्वलन्त उदाहरण है। स्वतन्त्र देशों में कुशासकमण्डल को परिवर्तित करने का अधिकार प्रजा को अवश्य प्राप्त है, परन्तु शासक की योग्यता व अयोग्यता का विवेक पूर्ण विवेचन करने के उपरान्त ही ऐसा करना उपयोगी

हो सकता है।

राष्ट्र शासक और प्रजा दोनों की साझी सम्पत्ति है। उसमें रह कर दोनों लालित, पालित और सम्पन्न होते हैं। राष्ट्र की सम्पन्नता के साथ ही उनकी निजी सम्पन्नता सम्बद्ध है। इस लिये राष्ट्र से दोनों का अनन्य प्रेम होना अत्यावश्यक है। जिस राष्ट्र के लोग राष्ट्र पर अभिमान नहीं करते, या राष्ट्र के प्रति जिनके हृदय-कुहर में आसन ही नहीं, वे शीघ्र ही राष्ट्र के पतन के साथ २ अवनत हो जाते हैं। जो राष्ट्र को अपना सर्वस्व मानते हैं, उनके राष्ट्र पर कभी विपन्नता दृष्टिगोचर नहीं होती। वहाँ स्वतन्त्रता, सम्पन्नता और खुशहाली ही अठखेलियाँ करती दिखाई देती हैं। राष्ट्र के प्रश्न के सामने जब व्यक्तिगत प्रश्न हेय समझा जाय, तब समझना चाहिये कि अमुक देश में राष्ट्रीयता की भावना विकसित हो गई है। आपत्काल में सच्ची राष्ट्रीयता के उपासक उसपर अपना तन, मन, धन ऐसे न्यौछावर कर देते हैं जैसे पतंगा दीप शिखा पर। राष्ट्र के प्रति इस आत्म-त्याग का भाव एक कवि ने निम्नलिखित अन्योक्ति द्वारा बड़ी ही भावुकता और रोचकता के साथ दर्शाया है। कवि जलते हुए वृक्ष पर बैठे पक्षियों से पूछता है—ऐ पक्षियो!

आग लगी इस वृक्ष में, जलने लग गये पात।
तुम क्यों जलते पंछियों, जब पंख तुम्हारे साथ?

उत्तर में पक्षी कहते हैं—

फल खाये इस वृक्ष के, बीट लपेड़े पात।
उड़ना हमारा धर्म नहीं, जल मरेंगे साथ॥

राष्ट्र के लिये जल मरना या युद्ध-ज्वाला में शरीराहुति देने की तो कभी-कभी ही नौबत पड़ती है परन्तु राष्ट्र को व्यक्तियों

के राष्ट्रीय जीवन की सदा अपेक्षा रहती है। राष्ट्रीय जीवन उस व्यक्ति का होता है जो प्रत्येक कार्य में इस बात का ध्यान रखता है कि मेरे कार्य से कहीं मेरे राष्ट्र की आनबान या उन्नति में बाधा तो नहीं पड़ रही ? जापान में भारतवर्ष से एक स्वामी जी गए। ज्यों ही वे जहाज़ से उतरे उन्होंने बन्दरगाह पर पके पकाए खाद्य पदार्थ के लिये दृष्टि दौड़ाई, परन्तु कहीं कोई वस्तु दृष्टि न आई। साथ वाले से कहने लगे, 'यह देश बड़ा भूखा दीखता है।' झाड़ू लगाने वाले ने यह बात सुनी ही थी कि झाड़ू छोड़ कर दौड़ा २ गया और मिठाइयाँ खरीद लाया। स्वामीजी से बोला, 'ये लो खाद्य वस्तुएं, पर आगे को मेरे देश की निन्दा कभी न करना।' स्वामीजी लज्जित हुए। यह हैं जाज्वल्यमान राष्ट्रीयता का उदाहरण। साधारण बातों में और व्यवहार में जब तक राष्ट्र का ध्यान न रहेगा तब तक वह राष्ट्रीय जीवन ही नहीं कहला सकता। नेहरू का जीवन निस्संदेह राष्ट्रीय जीवन है। परन्तु चोरबाज़ारी, घूसखोरी, बेईमानी आदि करने वालों का जीवन भी यदि राष्ट्रीय जीवन माना जाय तो अराष्ट्रीय जीवन कौन-सा होगा ?

भारतवर्ष में अभी सामान्य व्यक्तियों में राष्ट्रीयता की भावना जागृत नहीं हुई। राष्ट्रीयता का पुजारी राष्ट्र की जनता को राष्ट्र की सम्पत्ति समझता है। यदि उसके हाथ में घी का व्यापार है तो वह कभी भी उसमें मिलावट कर राष्ट्र की सम्पत्ति को नाश करने का अपराध अपने सिर न लेगा। यही दशा दूसरे व्यवसायवालों की है। यदि हम सब शासक और प्रजा राष्ट्र का हित सर्वोपरि रखकर कार्य करें तो राष्ट्र शीघ्र ही उन्नत और सम्पन्न हो जाय। जिस व्यक्ति को अपने राष्ट्र

या जन्मभूमि से प्रेम नहीं वह पशु के समान है—

"होगा नहीं कहीं भी ऐसा अति दुरात्मा वह प्राणी
अपनी प्यारी मातृभूमि है जिससे नहीं गई पहिचानी ॥
"मेरी जननी यही भूमि है"—इस विचार से जिसका मन।
नहीं उमङ्गित हुआ वृथा है उसका पृथ्वी पर जीवन ॥"

मातृभूमि प्रेम या उसके प्रति कर्तव्य के साथ-साथ ही मातृ-भाषा और संस्कृति का प्रेम और उसके प्रति कर्तव्य भी राष्ट्रीय-भावना के अन्तर्गत आ जाते हैं। वेदों में इन तीनों को माता के तुल्य कल्याणकारी माना है—

"इडा सरस्वती मही तिस्रो देवीर्मयोभुवः ।" संस्कृति में तीन चीजें आती हैं—

(१) चारित्रिक शुद्धता।
(२) धार्मिक मर्यादा और
(३) ऐतिहासिक परम्परा।

इस लिये हिन्दुस्तान की राष्ट्रीयता में यहाँ की मातृभूमि, धर्म और ऐतिहासिक परम्परा तथा भाषा से प्रेम और इनके प्रति कर्तव्य स्वतः आ जाते है। धर्म से अभिप्राय सम्प्रदाय से नहीं। यह पहिले ही प्रतिपादन किया जा चुका है। सौभाग्यवश काँग्रेस सरकार ने हिन्दी भाषा को राष्ट्र भाषा स्वीकार कर अधूरी राष्ट्रीयता की पूर्ति की है। इन तीनों—भाषा, संस्कृति और मही (मातृभूमि) के मंगलमय संगम को गंगा, यमुना और सरस्वती के संगमस्थान—प्रयाग से भी अधिक कल्याणकारी और पवित्र माना गया है। स्वामी दयानन्द, महात्मा गान्धी, गोखले और तिलक इस संगम की ही अभिलाषा और इसके लाने का प्रयत्न करते २ स्वर्ग सिधारे हैं।

अस्तु उन्नत राष्ट्र में सम्पन्नता और खुशहाली का होना भी आवश्यक है। राष्ट्र की भी दो प्रकार की सम्पत्ति होती है—

(१) चल।

(२) अचल।

चल में नर व पशु सम्पत्ति—नर (योद्धा, दार्शनिक, वैज्ञानिक, साहित्यिक बच्चे, स्त्री आदि), गाय, घोड़े आदि और अचल में भूमि, भवन आदि आ जाते है। इन सबको उन्नत करना तथा इनकी सब प्रकार से रक्षा करना राष्ट्र का कर्तव्य हो जाता है, क्योंकि राष्ट्र में इनके अतिरिक्त कोई विशेष वस्तु नहीं रह जाती। इनकी रक्षा और उन्नति से ही राष्ट्र उन्नत होता है।

संक्षेप से राष्ट्र के लिये जीना और राष्ट्र की प्रत्येक वस्तु को अपना समझना तथा अपना राष्ट्र के प्रति पूर्ण कर्तव्य निभाना ही राष्ट्रीयता है।

विज्ञान और मनुष्य सेवा

विचार-तालिका :—

१. भूमिका:—मनुष्य शारीरिक रूप से प्रकृति की विरोधी शक्तियों से संघर्ष करने में सबसे असमर्थ। मस्तिष्क बल से क्षतिपूर्ति। क्रमिक विद्यादि विकास। विज्ञान मनुष्य की सेवा के लिए आगे बढ़ा। २. यातायात के वैज्ञानिक साधन। ३. औद्योगिक यन्त्रों के आविष्कार। ४. ज्ञानप्रसार के वैज्ञानिक साधन। ५. रेडियो और दूरदर्शक यन्त्रों से वसुधाभर कुटुम्ब बन गया है। मनोविनोद-साधन। ६. विद्युत् की सेवाएं। ७. चिकित्सा और शरीर-रक्षा के उपायों में विज्ञान सहायक। ८. हानियां। ९. उपसंहार।

प्रकृति के सब प्राणियों में बिचारा मनुष्य ही दुर्बल है। अन्य छोटे बड़े सभी पशु-पक्षी कीट आदि प्रकृति के शीतोष्ण आदि द्वन्द्वों को भली-प्रकार सहन कर पाते हैं, परन्तु मनुष्य के सद्योजात शिशु को तो सर्दी की तनिक सी शीतवायु और ग्रीष्म की आँधी का आधा ही झोंका जीवन से वञ्चित कर देता है। नाना प्रकार की आंधियां और व्याधियां इस मनुष्य को ही घेरे रहती हैं, जबकि अन्य प्राणी वनों में नीरोग और निश्चिन्त हो अपना जीवनयापन करते हैं। प्रकृति के तनिक से प्रकोप को सहने में असमर्थ मनुष्य को परमात्मा ने मस्तिष्क शक्ति देकर क्षतिपूर्ति की है। इस अद्भुत मस्तिष्क शक्ति के विकास से वह आज सब प्राणियों में शिरोमणि और सृष्टि का सबसे उत्तम प्राणी माना जाता है।

मनुष्य को सदा ही प्रकृति की विरोधी शक्तियों से संघर्ष करना पड़ा। आदिम मनुष्य सर्दी के मारे ठिठुरता हुआ गिरि-गुहाओं और वृक्ष कोटरों की शरण लेता रहा। गर्मी से बचने के लिए तरु-छाया और नदी तटों का सहारा लेता रहा। वर्षों तक पत्थरों के शस्त्रों से शिकार खेल अपना पेट भरता गया। दिनों तक शिकार हाथ न आने से भूखों मरा। कभी स्वयं ही शिकार का शिकार बनना पड़ता था। आवश्यकता आविष्कार की जननी है। उसने आवश्यकता पड़ने पर अपने आपको साधन सम्पन्न बनाया। पाषाण काल से लोहकाल और लोह से ताम्रकाल आया। पशुओं से ऊँचा उठते हुए उसने समाज-गठन किया। धर्म, राजशासन, कला और विज्ञान का प्रादुर्भाव किया। विज्ञान-सरणी पर अग्रसर होकर उसने प्रकृति की विरोधी शक्तियों को ललकारा। बीसवीं शताब्दी तक पहुँचते-

पहुँचते विज्ञान द्वारा मनुष्य भूखण्ड का एकमात्र प्रभु बन बैठा।

प्रकृति मानव मस्तिष्क से पराजित सी दृष्टिगोचर हो रही है। प्रकृति ने मनुष्य को शीघ्र से शीघ्र दौड़कर भी दिन भर ४०-४५ मील चलने का सामर्थ्य प्रदान किया है, परन्तु वाष्प-शक्ति के रहस्य का भेद पाकर वाष्पगन्त्री द्वारा एक दिन में ही आबालवृद्ध युवकों को मनों सामान के साथ बैठे-बैठे या सोकर ही सैंकड़ों मील दूर की यात्रा करवा दी है। अब बद्रीनाथ, केदारनाथ आदि दुर्गम तीर्थ स्थानों की यात्रा भी श्रद्धालु यात्रियों के लिए आपत्तिजनक नहीं रह गई। देशाटन के प्रेमी जहाँ घूमना चाहें घूमें, थकने हारने की कोई आशंका ही नहीं। मास से भी कम अवधि में सारे विशाल भारत की यात्रा कर जाइए। प्रत्येक बड़ा नगर देखिए। नगर के आन्तरिक निकट और दूर के दर्शनीय स्थानों को देखने के लिए पैदल क्यों छिड़ पड़ते हो? इस प्रकार तो हो गई सैर? एक ही कलकत्ता, बम्बई, दिल्ली या कराची को देखने को महीना चाहिए। सारा पैसा बैठे यहीं खा जाओगे क्या? क्यों न टेक्सी बस या ट्रेम में बैठकर थोड़े से पैसों में एक ही दिन में सारे नगर की सैर करली जाय। मोटर साइकल पर बैठ सको तो बहुत ही अच्छा है। मिन्टों में मीलों दूर पटक देगी। कुछ भी अड़ंगा न करना चाहो तो दो चार मन चले साथी साईकल पर बैठकर ही निकल पड़ते हैं।

अरे बाज! आकाश में इतनी कलाबाजियाँ खाकर क्या इठलाता फिरता है? क्या तू नहीं जानता कि अमेरिका निवासी दो भाई राइटर ब्रदर्स (Wrighter Brothers) की कृपा से हम वायुयान में बैठकर तेरे से भी ऊँची उड़ान भर कर विश्व के जिस कोण में चाहें उड़कर जा सकते हैं? क्या हमारे प्रधान-

मन्त्री पं० जवाहरलाल नेहरू अभी-अभी इङ्गलैण्ड, अमेरिका आदि का भ्रमण कर मास के ही अन्दर भारत की शान को चार चान्द लगा कर वापिस देहली नहीं आ गए ? पाकिस्तान ने सोचा था कि काश्मीर पर अकस्मात् आक्रमण कर दो दिन में ही विजयवधू से परिणय हो जायगा, परन्तु भारतीय सरकार ने घण्टों में ही वायुयान द्वारा कुमुक और खाद्य सामग्री भेजकर परिस्थिति को बिगड़ने से बचा लिया। युद्धकाल में निस्सहाय नागरिकों, बच्चों व बूढ़ों को इसी से सुरक्षित स्थान पर पहुंचाया जाता है। अब सधे हुए कबूतर के गले में डाक बाँध कर भेजने की मूर्खता क्यों करते हो ? डाक का वायुयान सुरक्षित ही तुम्हारी डाक विश्व के किसी भी भाग में अल्पकाल में ही पहुँचा देगा।

यदि स्थल और आकाश मार्ग से यात्रा करने में रुचि नहीं रही तो जलपोत का टिकट लीजिए। अब कोई मगरमच्छ आदि जलचर का भय थोड़ा ही रह गया है ? धूम्रपोत (स्टीमर) में जुड़ी तोपों और मशीनगनों से वे तो इस विशालकाय दानव की ध्वनि को सुनकर ही प्राण बचाने के लिए मारे २ फिरते हैं। लाखों मन व्यापार की सामग्री इन्हीं से एक देश से दूसरे देशों में पहुँचाई जा रही है। जो वस्तु जहाँ की भूमि में उत्पन्न नहीं होती वह इन्हीं से देशान्तर से आती है। आज भारत की खाद्य-समस्या इसीलिए घातक सिद्ध न हो पाई क्योंकि जलयानों द्वारा अन्न अन्य देशों से यहाँ पहुँचता रहा।

विचारे बैल की पीठ का सांटों से धुन धुनकर चमड़ा क्यों उड़ाए जा रहे हो ? आखिर विवश मूक प्राणी उतनी त्वरा से ही तो तुम्हारा हल खींच पाएगा जितना उसमें सामर्थ्य है ?

तुम चाहते हो घण्टे में कई बीघों में हल जोतना ! तो ट्रेक्टरों से यह काम क्यों नहीं लेते ? २०० मज़दूरों के स्थान ४०-५० ही मनुष्य काम चला लेंगे। बैलों के भी प्राण बचेंगे। फसल काटने में 'रीपर' को नियुक्त कर दो। तब देखना भारत की खाद्य समस्या हल होती है या नहीं ? रूस आदि देश वैज्ञानिक कृषि साधनों के प्रयोग से ही आत्म निर्भर हो पाए।

अब तन्वंगी-मृगलोचनी ललनाओं को प्रातःकाल ही चक्की में आटा पीसने क्यों जोड़ा जाय जब आटे और मैदे की घण्टों में सहस्रों मन अनाज पीसने वाली मशीनें आविष्कृत हो चुकी है ? रूई पीजने के यन्त्रों द्वारा हज़ारों मन रूई अल्पकाल में ही पींज दी जाती है। लकड़ी चीरने जैसे कठिन श्रम में पड़ने की मनुष्य को आवश्यकता ही क्या जब लकड़ी चीरने की इतनी मशीनें बन चुकी हैं कि उनको ही काम काफ़ी नहीं मिल सकता। किसी भी कार्य क्षेत्र में कूद जाइए सर्वत्र वैज्ञानिक यन्त्र मनुष्य के शारीरिक श्रम को बचाने के लिए सौ गुणा अधिक कार्य सुचारु रूप से अद्भुत त्वरा से पूरा करने के लिए छटपताते दृष्टिगोचर हो रहे हैं।

भोजपत्रों पर लिखे प्राचीन ग्रन्थों को देखकर दया आती है उन अभागे मानवों पर, जो उस काल में रह रहे थे। हाथ से लिख लिखकर कितनी संख्या में उसकी प्रतियां अधिक से अधिक जिज्ञासुओं के पास पहुंचाई जानी सम्भव हो सकती है ? बच्चे पढ़ते तो क्या पढ़ते ? आज मुद्रण-कला के आविष्कार ने हमारी इन सब मुश्किलों को सुलझा दिया है। एक ही दिन में एक ही प्रैस हज़ारों समाचारपत्र मुद्रित कर ताजे समाचारों से पाठकों को अवगत करता है। विश्वभर के विद्वानों के विभिन्न

विचारों से इसी के द्वारा विश्वभर के सभी व्यक्ति ज्ञान बढ़ा सकते हैं।

विज्ञान ने आज सचमुच सब के लिए वसुधाभर को कुटुम्ब बना दिया है–"वसुधैव कुटुम्बकम्"। इटली के प्रसिद्ध वैज्ञानिक मारकोनी ने रेडियो का आविष्कार कर ऐसा जादू सा कर दिया है कि अपने कमरे में बैठे-बैठे ही रेडियो द्वारा विश्वभर के समाचार सुन लो; बड़े २ विशेषज्ञों के विशेष-विशेष विषयों पर भाषण श्रवण करलो; संगीत प्रेमी हो तो पक्के या कच्चे फिल्मी या क्लासिकल गानें सुन लो। अच्छे से अच्छे नाटकों के संवाद भी घर बैठे ही सुन लो। यदि दिवंगत महात्मा गान्धी, हिटलर, रूजवेल्ट आदि के भाषणों से स्फूर्ति प्राप्त करना चाहते हो तो एडिसन से आविष्कृत ग्रामोफोन (इनके पुराने भाषणों) का एक रिकार्ड रेडियो पर लगा छोड़िए फिर देखिए दिवंगत आत्माएं पुनः जोश में आकर अपने वास्तविक शब्दों में वक्तृताएं देने लगती हैं या नहीं ? यदि सुदूर के संगीत या वार्तालाप के श्रवणमात्र से सन्तुष्टि नहीं तो तनिक प्रतीक्षा कीजिए दूरदर्शक यन्त्र (Television) आपकी सेवा में उपस्थित हो रहा है जिसकी सहायता से संसार की प्रत्येक वस्तु का चित्र भी दृष्टिगोचर हो सकेगा। तब तो घर में बैठे २ ही विश्व भर के संगीतों के साथ-साथ ही नृत्य और नाटकों के देखने का आनन्द भी लूटिए। इसका आविष्कार तो हो ही चुका है, केवल वैज्ञानिकों को कुछ अवसर दीजिए ताकि वे इसे सबके लिए सुलभ बनाने के मार्ग की कठिनाइयों को दूर कर सकें।

तब तक के लिए मनोविनोदार्थ चित्रपट में ही पधारने की

कृपा कीजिए। अमेरिका निवासी एडीसन बाबा ने इस अद्भुत विनोद के साधन को निकाला है। इसमें नाटक के समान कोई भी दृश्य इसलिए वर्जित नहीं रह जाता कि उसका अभिनय होना कठिन है। यहाँ तो सब कुछ ज्यों का त्यों प्रदर्शित किया जा सकता है। रंगमंच में युद्ध प्रदर्शित न हो सकता हो तो क्या? चित्रपट में तो द्वितीय विश्वयुद्ध जैसी भयानक वस्तुओं के सच्चे दृश्य देखने को मिलते हैं। 'अमृत-मन्थन' की कल्पना को प्रत्यक्ष करके तो इस आविष्कार ने ही बताया।

आज सूक्ष्म से सूक्ष्म (अणोरणीयान्) पदार्थों को अणुवीक्षण-यन्त्र ने बड़े से बड़ा (महतो महीयान्) बनाकर हमें दिखा दिया है। दूर से दूर की वस्तु को दूरदर्शक यन्त्र ने निकट से निकट बनाके बता दिया है। भला फिर छोटे २ रोग कीटाणु कैसे मनुष्य की दृष्टि से बच पाते? पता लगते ही वैज्ञानिक चिकित्सा द्वारा उनका संहार प्रारम्भ हो जाता है। दूरदर्शक यन्त्रों की सहायता से वायुयान में बैठकर चाहे सुदूर के पार्वत्य प्रदेशों के मनोमुग्धकारी दृश्य देखिए चाहे नीचे की ओर झाँक कर नगर की गली में चलती भीड़ को निहारिए अथवा दूर से ही भय के कारण का पता लगाइए।

घर बैठे-बैठे मित्र से बातें किया चाहते हो तो रिसीवर उठाकर टेलीफोन पर बातें कर सकते हैं। डाक्टर, पुलिस, आग बुझाने वाले आदि जिनकी भी आवश्यकता है, क्षण भर में टेलीफोन पर सूचित कर सकते हो। तारहीन तार (wireless) आदि के आविष्कार से इस दशा में अभूतपूर्व लाभ पहुँचा है।

अब तो विज्ञान ने इस चंचला बिजली को भी अचला बना कर मनुष्य-सेवा के कार्य में नियत कर दिया है बैंजामिन

फ्रैंकलिन, प्रोफेसर वोल्टा और एडिसन के अनथक श्रम और मस्तिष्क बल से यह दैवी-शक्ति वश में की जा सकी है। परन्तु इसका वश में आना ही अलाउद्दीन का दीपक प्राप्त होना सिद्ध हुआ। ग्रीष्म ऋतु में अब गर्मी से हांपने की क्या आवश्यकता? बटन दबाया कि बिजली के पंखे 'फर्र-फर्र' करके हवा देने लगे। ठण्ड सता रही हो, बिजली क्षणभर में ही हमारी अंगीठी गरम कर देगी। ऊंचे भवनों की मंजिलों पर चढ़ने को जी नहीं चाहता तो लिफ्ट पर बैठिए विद्युत् शक्ति स्वयं उठाए ले जायेगी। कोयले से हाथ काले करने की अब सुन्दरियों को क्या पड़ी जब बिजली उनके लिये खाना तैयार कर देती है, कपड़ों पर लोहा करने के लिये उसे गरमा देती है। रेडियो और टेलीफोन में भी इसी से काम लिया जाता है। विद्युत् का प्रकाश देना तो अब साधारण-सी बात समझी जाती है। ट्यूब वैल से पानी निकालने में भी यही काम आती है। इस कल्पलतिका के गुणों की परिगणना तो असम्भव ही समझिये।

विज्ञान शारीरिक उन्नति के लिये सुमहान् देन है। विविध प्रकार के खाद्य पदार्थों के तत्त्वों की छान-बीन कर संतुलित भोजन द्वारा सुदृढ़ शरीर रचना और पूर्ण आयुष्य की प्राप्ति अब सुगम हो गई है। विविध प्रकार के संक्रामक आदि रोगों के पता लगाने, उनके कीटाणुओं और उनसे बचने की दशा में विज्ञान ने आशातीत उन्नति की है। विद्युत शक्ति का चिकित्सा में अद्भुत स्थान है। फ्रांस निवासिनी मेडम क्यूरी द्वारा आविष्कार किये हुए एक्सरे और रेडियम की सहायता से शरीर के अन्दर स्थित सभी विकारों का साक्षात्कार हो जाता है। अब शल्य कर्म भी हव्वा नहीं रहा, क्योंकि एनस्थाटिक्स

(संज्ञा शून्य-कारी औषधि) द्वारा आपरेशन का स्थान सन्न कर दिया जाता है।

मनोविज्ञान ने मानसिक जगत् की गुत्थियाँ खोलकर दूसरों के समझने और अपने अनुकूल करने में सहायता पहुंचाई है। भाषा-विज्ञान के आविर्भाव से भाषा और संस्कृति सम्बन्धी गुप्ततम रहस्य खुल गए हैं। भाषाओं की प्रकृति, प्रवृत्तियों और परिवारों के मूल के बोध से परस्पर सम्बन्धित भाषाओं का ज्ञान सुगम हो गया है।

क्या हुआ यदि इतने अनगिनत लाभों के साथ साथ विज्ञान के आविष्कारों से कुछ हानियाँ भी हुई हैं। शुद्ध घी आदि में मिलावट करना वैज्ञानिकों के उपजाऊ मस्तिष्क के कारण सम्भव हो सका। इससे लोगों का स्वास्थ्य बहुत गिरा, परन्तु उसकी पूर्ति के लिये विज्ञान ने नाना प्रकार के बहुमूल्य पाऊडर और लिपस्टिक आदि दे दिये हैं। जिन पर धन व्यय करके हम अपनी कृत्रिम सुन्दरता बनाए रख सकते हैं। बढ़ती हुई जन-संख्या को रोकने के लिये विज्ञान ने सन्तति-निरोध के अस्वाभाविक साधन सम्पन्न कर ब्रह्मचर्य के कंकटाकीर्ण मार्ग पर भटकने से बचाया है। चित्रपट आदि के सतत अभ्यास से लोगों की आँखें खराब हो गई हैं अवश्य पर विविध प्रकार के उपनेत्र (चश्मे) प्रदान कर कमी पूरी करने का प्रयास भी विज्ञान ने ही किया है।

कहा जाता है मनुष्य स्वार्थी हो गया है। पशु पक्षियों को खाकर समाप्त किया चाहता है। जल स्थल और आकाश में इसने विज्ञान बल से एकाधिपत्य स्थापित कर अन्य प्राणियों के

अधिकारों और जीविका के उपायों को कम किया है। परन्तु वे भूल जाते हैं कि प्रति दसवें वर्ष विश्व-युद्ध छेड़कर करोड़ों की संख्या में घातक वैज्ञानिक शस्त्रों द्वारा किया हुआ नरसंहार पशुपक्षियों के लिए आहार और निवास स्थान जुटाना ही तो है। अभी अणुबम्ब तो जापान के एक ही नगर पर छूटने पाया है और तब भी मानव जगत् भयभीत दिखाई देता है। यदि दोनों दल आगामी विश्व युद्ध में उदारतापूर्वक इनका एक दूसरे के नगरों पर उपयोग करेंगे तो भीरु मनुष्य क्या करेंगे ? वे कहने लग पड़े हैं कि विज्ञान हमें ह्रास की ओर ले जा रहा है। यदि १०२ मञ्जले भवन बम्बारी से धूलिसात् किए जाते हैं तोउन का बनाना भी तो विज्ञान ने सिखाया।

अस्तु, अन्त में वैज्ञानिक आविष्कारों के लाभ और हानियों पर विचार करने के उपरान्त यह कह देना अनुपयुक्त न होगा कि विज्ञान सदा उपादेय वस्तु है। उसका दुरुपयोग मनुष्यों की दुर्भावनाओं पर निर्भर है। यदि विवेक से काम लिया जाय तो यही घातक अणु शक्ति अतुल लाभदायक हो सकती है। आशा है विज्ञान उन्नति करता हुआ अपनी चरम सीमा तक पहुंच जाएगा और मानव धर्म-भावना उसे दुरुपयोग से बचाएगी। ऐसी अवस्था में स्वर्ग यही विश्व बन जाएगा, हमें दूसरे लोक में उसे ढूंढने का उद्योग न करना पड़ेगा। विज्ञान के साथ आध्यात्मिक ज्ञान मिला दिया जाय तो ऐहिक और पारलौकिक दोनों सुख सम्भव हो जाएंगे।

भक्ति

विचार-तालिका :—

१. भूमिका—भक्ति प्रेम की उत्कृष्ट शाखा। भक्ति का उद्देश्य। २. भक्ति धारा का प्रादुर्भाव हृदय में प्रसार विश्व में। ३. सक्रिय भक्ति ही वास्तविक भक्ति। ईश्वर की सेवा नहीं सेवन सम्भव है। ४. कुछ आदर्श भक्त। ५. उपसंहार

"भूली यौवन मद करे अरी बावरी बाम।
यह नैहर दिन दोय को अन्त कन्त ते काम॥"

मनुष्य के हृदय में अनेक भाव रहते हैं—अच्छे और बुरे। उनमें से कुछ क्रोध आदि भाव अपने को और दूसरों को दुःख देने वाले और कुछ करुणा आदि सुख देने वाले होते हैं। सुखद भावों में से सबसे प्रबल प्रेम-भाव है। यह भाव केवल मानव हृदय तक ही सीमित नहीं, वरन् पशु-पक्षियों में भी इसकी सत्ता है। हृदय पर्वत से यह प्रेमस्रोतस्विनी निकलती है। आगे चलकर पात्रभेद से इसकी अनेक धाराएं हो जाती हैं। बच्चे की मनोमुग्धकारी क्रीडाओं और तुतली बातों को श्रवण कर जो हृदय में उसके प्रति आकर्षण सा उत्पन्न होता है उसे वात्सल्य कहते हैं। इसी प्रकार पति के मन में पत्नी और पत्नी के मन में पति को देख कर जो आकर्षण भाव जागृत होता है उसे रति कहते हैं। माता-पिता या गुरुजनों के प्रति जो उनके उपकार आदि को देख कर भाव जागता है उसे श्रद्धा कहते हैं। इसी प्रकार उस दयालु प्रभु के प्रति उसकी रचना और उपकारों को देखकर जब हृदय स्वतः पसीज पड़ता है तो उसी प्रेम को हम भक्ति कहते हैं।

भक्ति स्रोत की उत्पत्ति हृदयकन्दरा में होती है, और उसके प्रवाह का प्रसार बाहर विश्वाभिमुख होता है। अर्थात् भक्त की भक्ति का परिचय उसके बाहरी अद्भुत प्रकार के सद्व्यवहार से मिलता है। उसके लिए विश्व में अपना पराया, छोटा बड़ा, मित्र शत्रु आदि का भेद भाव नहीं रह जाता। सब हरि के प्राणी हैं यही उसकी दृष्टि में होता है।

"प्रेम दीवाना जो भया पलट गया सब रूप।
'सहजो' दृष्टि न आवहि कहा रंक कहा भूप॥"

भक्त के लिए उसका इष्टदेव प्रभु ही सर्वस्व है। विषयभोगों के लिए भक्त के हृदय में स्थान ही नहीं होता।

"जा तन हरि छवि बसी औरै छवि न समाय।
भरी सराय रहीम लखि आपै पथिक मुड़ि जाय॥"

भक्त विश्व के कार्यों को कर्तव्य समझ कर करता अवश्य है परन्तु उसका ध्यान सदा ईश्वर में ही रहता है। भक्त प्रवर कबीर जी कहते हैं—

सुमिरन की सुधि यों करे ज्यों गागर पनिहार।
हालै डोलै सुरति में कहै कबीर विचार॥

अर्थात् जिस प्रकार पनिहारन सिर पर पानी का भरा घड़ा लाती हुई हिलती-जुलती भी है परन्तु ध्यान गागर में ही रहता है, ठीक इसी प्रकार भक्त सांसारिक कर्तव्य करता हुआ भी प्रभु-स्मरण का ध्यान रखता है।

पहिले ही संकेत किया जा चुका है कि भक्ति भी प्रेम का एक भेद है। प्रेम एक प्रकार की सीमेन्ट है जो दो भिन्न व्यक्तियों को मिलाती है। मां को बच्चे से उसका वात्सल्य, और प्रेमी

को प्रेयसी से उन दोनों की रति मिलाती है। ऐसे ही भक्त को हरि से भक्ति मिलाती है। इस मधुर हरि और हरिजन मिलन में जाति पांति आदि बाह्य आडम्बरों के लिए कोई स्थान नहीं—

जाति पांति न पूछे कोय।
हरि को भजे सो हरि का होय॥

सच्ची भक्ति में प्रभु की सेवा नहीं वरन् सेवन होता है। वह जीवात्मा अपने आप अपूर्ण है। यह दो पूर्णों के मध्य में पड़ा है—एक ओर सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्मा तो दूसरी ओर जड़ प्रकृति। प्रकृति भी अपने आपे में पूर्ण है। उसे पूर्णता के लिए जीव की सहायता की अपेक्षा नहीं रहती। हिमालय को सर्दी और मरु भूमि को गर्मी से बचाने के लिए कोई वस्त्र या पंखे आदि की आवश्यकता नहीं। इसलिए मनुष्य प्रकृति की भी सेवा नहीं कर सकता वरन् सेवन करता है। परमात्मा जो सर्वथा निरपेक्ष है उसे तो मनुष्य सेवा की आवश्यकता ही क्या? हाँ सेवन उसका भी सम्भव है। उसके गुणों को अपने में धारण करना ही उसका सेवन कहाता है। इसीलिए वेद में प्रार्थनाएं आती हैं ऐ प्रभु, "तेजोऽसि तेजो मयि धेहि, वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि·····" आप तेज स्वरूप हैं कृपा करके मुझे भी तेजस्वी बनाइए आप वीर्यवान् हैं मुझे भी वीर्यवान् बनाइये आदि। इसलिए उस प्रभु का वास्तविक भक्त वह है जो केवल स्तुति गानमात्र अपना कर्तव्य नहीं समझता वरन् उसके गुणों को अपने में धारण करने का सतत प्रयास करता है। प्रभु को 'दयालु' 'दयालु' की रट लगाने से न प्रसन्नता ही होती है न लाभ ही। वह तो उसकी दयालु-रटना से प्रसन्न होता है जो स्वयं भी दयालु बने। न्यायकारी हरि उसी पर कृपालु होता है

जो स्वयं भी न्याय करता है। दीनबन्धु का सच्चा उपासक वह है जो दीनों की सहायता करता है। जिनको दीनों से घृणा है उनको दीनबन्धु कहने का दुस्साहस ही कैसे होना चाहिए ?

"दीननि देखि घिनात जे, नहिं दीननि सों काम।
कहा जानि के लेत हैं, दीनबन्धु को नाम॥"

सारांश यह कि यदि जीवन पर आन्तरिक भक्ति का प्रभाव न पड़ा तो भक्ति की सार्थकता ही क्या ? इस भक्ति के क्रियात्मक व व्यावहारिक स्वरूप के दर्शन करने हों तो सन्तप्रवर तुलसीदास की निम्नलिखित पंक्तियां देखिए। तुलसीदास जी भक्ति की शपथ लेते हुए कहते हैं—

"प्रण करिहौं हरि, आजु ते रामद्वार पर्यो हौं।"
'तू मेरो' यह बिनु कहे उठिहौं न जनम भरि प्रभु की सौं करि निवर्यो हौं
प्रकट कहत जौ सकुचिये, अपराध भर्यो हौं।
तो मन में अपनाइए तुलसिहि कृपा करि कलि बिलोकि हहर्यो हौं।

परन्तु तुलसीदास को कैसे विदित हो कि प्रभु ने उसे अपना लिया है ? तुलसीदास जी कहते हैं यह पहिचान तो कोई कठिन नहीं। तब तो मन स्वतः बुराइयों से दूर भागेगा—

"तुम अपनायो तब जानिहौं जब मन फिरि परि हैं।
हरष है न अति आदरे, निदरे न जरि परि है।
हानि लाभ दुख सुख सबै समचित हित अनहित
कलि कुचाल परिहरि है।

अब तनिक कुछ उदाहरणों द्वारा देखना चाहिए कि क्या ऐसे भक्त कहीं दृष्टिगोचर होते भी हैं या नहीं जिनके जीवनों पर भक्ति का प्रभाव पड़ा है ?

कहते हैं हरिद्वार के पास गंगा नदी के वाम-तट पर एक

साधु की कुटिया थी। उसमें एक विचित्र ही प्रकृति का साधु रहता था। उसकी चेष्टाओं को देख साधारण लोग उसे पागल समझते थे। न किसी से कुछ मांगता न कई दिनों तक कुछ खाता ही। कोई कुछ वहीं देता तो खा लेते नहीं तो हरिभजन में ही मस्त रहते। एक दिन किसी कृपक को दया आई। उसने कुछ रोटियां और घी महात्मा जी की सेवा में रखे। महात्मा जी घृतपात्र खूंटी पर लटका कर और रोटियां चौकी पर रख कर स्वयं स्नान करने निकले ही थे कि कुत्ता रोटी मुँह में लिए निकलता दिखाई दिया। महात्मा जी कुटिया की ओर मुड़े और खूंटी से घृतपात्र लेकर कुत्ते के पीछे हो लिए, "ओ पागल कुत्ते, यदि भूख लगी थी तो रोटी के साथ के लिए घी भी ले जाता, सूखी रोटी तू कैसे खाएगा, ले कुछ घृत भी रोटी पर लेता जा।" पर कुत्ता किसी की क्यों सुनने लगा यह है सच्ची भक्ति। इसे कहते हैं आत्मवत् परभूतेषु (अपने समान ही पराया भी देखना।) किसी अंग्रेज़ी कवि ने ठीक ही कहा है, "He prayth well who loveth well all men and birds alike." अर्थात् उत्कृष्ट प्रार्थना वह व्यक्ति करता है जो मनुष्य पशु और पक्षी सभी के साथ सच्चा प्रेम करता है।

चैतन्य प्रभु पर मघइया डाकू ने डाका डाला। परन्तु वह क्या समझता था कि अपनी पापपोटली ही लूटी जाएगी। उसके सम्पर्क से मघइया आगे के लिए चैतन्य प्रभु का आज्ञाकारी शिष्य और प्रभु का भक्त ही बन गया।

बन्दा वैरागी अत्याचार पीड़ित अनाथ, विधवाओं गाय और ब्राह्मणों की 'त्राहि-त्राहि' ध्वनि से कातर हो समाधि छोड़ जनताजनार्दन की सेवा में रत हो जाते हैं। स्वामी दयानन्द जगन्नाथ घातक को ही रुपयों की गठड़ी सौंप मुक्त कर देते हैं।

महात्मा गान्धी ७० वर्ष की आयु में भी साम्प्रदायिक उपद्रवों से पीड़ित लोगों की देख-रेख व रक्षा के लिए पैदल ही नोआखली की कण्टकाकीर्ण पगडण्डियों की धूल छानते हैं। जो उस दयालु को दुखियों के बीच नहीं ढूंढता या कर्मपथ त्याग कर व्यर्थ ही—निर्जन वन में घूमता है उसे वह प्रभु नहीं मिलता क्योंकि उसकी खोज ही अनुचित स्थानों पर की गई। निराश होकर उसे अन्त में कहना ही पड़ता है—

"दुखियों के बीच में तू मेरे लिए खड़ा था,
मैं स्वर्ग झांकता था झुकता कहां चरण में॥
तू ने दिए अनेकों अवसर न मिल सका मैं।
तू कर्म में निरत था, मैं व्यस्त था कथन में॥"

भारतीय कृषि और कृषक

विचार-तालिका:—

१. भूमिका :—कृषि-प्राधान्य। २. हमारी खाद्य समस्या का एक मात्र स्थायी हल कृषि और कृषक सुधार। ३. भूमि का कृषीकरण। ४. भूमि का यन्त्रीकरण। ५. यन्त्रनिर्माणी—निर्माण परम आवश्यक। ६. सिंचाई, खाद और चकबन्दी का सुचारु रूप से प्रबन्ध। ७. कृषकों की शिक्षा दीक्षा और संकीर्ण मनोवृत्ति में परिवर्तन। ८. उपसंहार।

"उत्तम खेती मध्य व्यापार, निकृष्ट चाकरी भीख निदान"

सभी कालों और सभी देशों में विचारशील व्यक्तियों ने कृषि-व्यवसाय की भूरि भूरि प्रशंसा की है। रूस की उन्नति को देखकर आज विश्व चकित हो रहा है, परन्तु उसकी उन्नति का रहस्य वहां की कृषि का सुधार है। भारतमें अंग्रेजी शिक्षा के

कारण 'उत्तम खेती' का जयघोष कुछ धीमा हो चला था। इसका स्थान 'उत्तम क़र्की' के दुन्दुभि-नाद ने ले लिया था। स्वभावतः बुद्धिमान लोग नौकरी की ओर झुके और कृषि का सुधार अनपढ़ अनघड़ कृषकों से न हो पाया। अंग्रेजों की कुटिल नीति भी इसके लिए उत्तरदायी थी। परिणामस्वरूप रुष्ट कृषि के अभिशाप के फल रूप हमें बंगाल आदि के भयानक अकालों का सामना करना पड़ा।

भारतवर्ष का कृषि व्यवसाय इस देश की रीढ़ की हड्डी है जिसके बिना इसका राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक आदि विभिन्न अंगों वाला कलेवर खड़ा ही नहीं रह सकता। इङ्गलैण्ड आदि यूरोपीय देशों की जनता का एक बहुत बड़ा भाग नगरों में रहता है, भान्ति २ के उद्योग धन्धे करता है। परन्तु भारत की ७५ प्रतिशत जन संख्या प्रत्यक्ष या परोक्षतः कृषि पर ही आश्रित है। कपड़ा, पटसन, टाट, बोरियां आदि के कारखाने कृषि पर ही निर्भर हैं। खाण्ड की निर्माणियां (कारखाने) भी यदि खेती से गन्ना न उपजे तो व्यर्थ हो जाती हैं। इसके अतिरिक्त प्रति चार भारतीयों में से तीन व्यक्ति कृषि करते हैं। अतः यदि यहां का कृषि-कार्य शिथिल या असफल हो जाय तो भारतीय जन-संख्या के एक सुमहान् भाग को भूखो मरना पड़ता है, कपड़े के बिना त्राहि त्राहि मच जाती है।

भारत विभाजन से भारत की खाद्य समस्या और भी विकट रूप धारण कर गई है। क्योंकि भारत का अन्नभण्डार पश्चिमी पञ्जाब पाकिस्तान का अंग बन गया है। तभी से भारत सरकार के सन्मुख खाद्य-समस्या एक ऐसी उलझन बन गई है जो शीघ्र सुलझने में ही नहीं आती। सरकार की पूंजी और शक्ति विदेशों

से अन्न मंगवाने पर ही व्यय हो रही है। इसके अतिरिक्त भारत के कुछ बंगाल मद्रास आदि प्रान्त ऐसे भी हैं जिनको वर्ष भर के निर्वाह के लिए अन्य प्रान्तों का मुख ताकना पड़ता है। दूसरे पश्चिमी पंजाब के शरणार्थी बड़ी संख्या में हिन्दुस्थान में आए हैं जिससे आबादी का समतोल विकृत हो गया है। इसके अतिरिक्त जहां खाने वालों की संख्या दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है वहां कृषकों की अन्न-उत्पादन शक्ति में अभिवृद्धि या उल्लेखनीय सुधार नहीं हो पाया। पुरानी लकीर का फकीर कृषक अपने ढंग जल्दी बदलने का भी नहीं। ऐसी अवस्था में स्वतन्त्रता की अवस्था में भी भारत में सम्पन्नता और खुशहाली के लिए कृषि-व्यवसाय का परिष्कार और सुधार सोचना और करना ही पड़ेगा।

भारतीय कृषि-व्यवसाय को सुधारने और खाद्यसमस्या को सुलझाने के लिए इस दिशा में जो भारत सरकार या कृषि-समितियों का सर्वप्रथम पद हो वह भारतीय ऊसर भूमि के कृषीकरण की ओर होना चाहिये। वर्तमान काल में जिस कृषि पर अन्न उपजाया जा रहा है वह ३५ करोड़ भारतीयों के पेट पालने के लिए अभी भी अपर्याप्त है और निकट भविष्य में बढ़ती हुई आबादी के लिए तो किसी भी दशा में भरपेट अन्न उपजाने में समर्थ नहीं हो सकती। दूसरे उस पर आजकल जितने कृषक या कृषि-श्रमिक कार्य कर रहे हैं उतनों की आवश्यकता नहीं है। इन्हीं में से एक बड़ी संख्या के श्रम को बचाकर उसका अन्यत्र प्रयोग किया जा सकता है। कहां ? इसका सरल सा उत्तर है उस ऊसर भूमि में जहां अभी हानिकारक घास और झाड़ियां खड़ी हैं या कुछ भी उत्पन्न नहीं हो रहा है। लगभग ६५०००,००० एकड़ भूमि ऐसी है जिसमें कृषि-योग्य बनाने के लिए सिंचाई की आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त ३५ करोड़ एकड़ भूमि ऐसी है जिसमें वर्षा के जल से ही कृषि हो सकती है। इस भूमि को कृषि-योग्य बनाने के लिए सिंचाई की आवश्यकता नहीं

एकड़ भूमि भारत में ऐसी उजाड़ पड़ी है जिस को उपजाऊ बनाया जा सकता है। खाद्यान्ननीति समिति ने भी सुझाव रखा है कि देश में कृषियोग्य बंजर भूमि का कृषीकरण करने से ३०००,००० टन अन्न अधिक उपजाया जा सकता है। भारत सरकार के सामने सारी ऊसर भूमि के दसवें भाग अर्थात् ६५००,००० एकड़ भूमि के कृषीकरण की अल्पकालीन योजना है। आशा करनी चाहिए यह योजना पूरी होगी और दूसरी योजना में शेष भूमि का भी कृषीकरण हो जाएगा। पर्याप्तभूमि सुलभ हो जाने से सम्भावित जमीदार, कृषक और कृषकश्रमिकों के परस्पर संघर्ष की सम्भावना भी कम हो जाएगी।

भूमि के कृषीकरण के साथ ही साथ कृषि के यन्त्रीकरण का प्रश्न उपस्थित होता है। वर्षों से उजाड़ पड़ी कास झाड़ियों और घने वृक्षों वाली भूमि श्रमिकों के शारीरिक श्रम से तो नियत अवधि तक कृषि में परिणत नहीं की जा सकती। इसके लिए तो ट्रैक्टर आदि विशालकाय वैज्ञानिक कृषियन्त्रों की आवश्यकता है। इनकी सहायता से ही विशाल ऊसर भूमि जो कांस और झाड़ियां उपजा कर घातक प्राणियों का घर बनी हुई है गेहूँ, चना, सेब और सन्तरा उपजा सकेगी।

गत महायुद्ध से पूर्व भारत के कृषि व्यवसाय में ट्रैक्टरों की अत्यल्प संख्या थी। अनुमानतः पाकिस्तान सहित सारी भारत भूमि पर २४८ ट्रैक्टर काम करते थे। दूसरी ओर अकेले छोटे से व्यापारी इङ्गलैण्ड में १५,००० ट्रैक्टरों से काम लिया जाता था। रूस ने कृषि का अल्पकाल में ही अद्भुत यन्त्रीकरण कर कई गुणा अधिक अन्नोत्पादन शक्ति बढ़ाई। १९२८ में उसके पास ६७०० ट्रैक्टर थे और १९३७ में ८४,५०० हो गए। अब

तो इससे कहीं अधिक बन चुके हैं। इसलिए श्रमिकों के श्रम तथा कृषकों के समय को बचाने और शीघ्र ही अधिक अन्न उपजाने के लिए भारत में पर्याप्त ट्रैक्टर चालू कर देने चाहिये। व्यय के दृष्टिकोण से भी ट्रैक्टरों पर दूसरे अवैज्ञानिक साधनों की अपेक्षा कम व्यय होता है। अनुमानतः ३० अश्व शक्ति का एक ट्रैक्टर जितनी भूमि जोतता है उतनी के लिए कम से कम ४८-५० बैलों की जोड़ियां पर्याप्त हो सकती हैं। उनको और पालने वालों को रखने और पालने के लिए ट्रैक्टर से कहीं अधिक व्यय चाहिए। हानि की सम्भावना बैलों आदि के मरने, पड़ने से सदा बनी ही रहती है। तीसरे जो कठिन कार्य यन्त्रों से सम्भव है वे मानवी हाथों से होने भी कठिन हैं। एक हजार एकड़ भूमि के लिए कमसे कम २०० व्यक्ति कार्यकर्ता चाहिएं पड़ते हैं जब कि उस कार्य में आने वाले ट्रैक्टरों के लिए ४० व्यक्ति ही पर्याप्त हो सकते हैं।

ट्रैक्टरों के साथ ही साथ हार्वेस्टर आदि फसल काटने, दाना निकालने, निलाई करने आदि के विविध यन्त्र भी जुटाने आवश्यक हैं।

कृषियन्त्रीकरण योजना में पूरी सफलता यन्त्रों को अन्य देशों से मंगवा कर नहीं हो सकती। यह एक अल्पकालिक साधन तो हो सकता है, पर स्थायी नहीं। जितना ट्रैक्टरों से आय आदि बढ़ती हैं उतना ही दूसरे देशों को उसका बड़ा भाग यन्त्रों के मूल्य को चुकाने के निमित्त देना पड़ता है। इसलिए कृषि यन्त्र-निर्माणी-निर्माण भारत में ही होना चाहिए। बम्बई प्रान्त ने इस ओर सराहनीय पद रखा है। वहां ट्रैक्टर तैयार करने के लिए दो चार निर्माणियां (कारखाने) तैयार हो चुकी

हैं। आशा है अन्य प्रान्त इसका शीघ्र ही अनुकरण करेंगे। केन्द्रीय कृषि विभाग को भी इस ओर विशेष ध्यान देना चाहिए। सरकार को यन्त्रों के सब स्थानों पर पहुंचाने के लिए यातायात के साधनों सड़कों आदि का समुचित प्रबन्ध करना चाहिए। इसके साथ साथ ही विकृत यन्त्रों के शोध के लिए स्थान स्थान पर यथा शीघ्र शोध-केन्द्र खुलने आवश्यक हैं ताकि उनमें पड़े पड़े जंग ही न लगती रहे।

भारतभूमि उर्वरा होते हुए भी शुष्क है। वर्षा समय पर कभी हो जाती है कभी नहीं। इस लिए प्रत्येक प्रान्त में सिञ्चाई के सुचारु साधन जुटाने का प्रबन्ध सरकार और कृषकों को मिल कर करना चाहिए। पञ्जाब, संयुक्त प्रान्त आदि में तो नदियों से अच्छी नहरें निकाली गई हैं परन्तु कई प्रान्त तो पानी बिना बहुत शुष्क पड़े हैं। ट्यूब वैल के द्वारा नहरों रहित स्थानों की सिञ्चाई सम्भव है। हर्ष का विषय है कि अपनी सरकार इस ओर भी जागरूक है। भारत सरकार की युद्धोत्तर-वर्ती कृषि योजना के अनुसार २२५ करोड़ रुपया सिञ्चाई के विविध साधनों पर ही व्यय किया जाएगा। इस में पूर्ण सफलता मिलने पर अन्न समस्या पर्याप्त अंश तक हल होजाएगी।

सिञ्चाई के उपरान्त खाद का प्रश्न उठता है। जिस प्रकार घी दूध आदि के बिना मनुष्य केवल अन्नमात्र से सर्वाङ्ग सुडौल-डौल नहीं बन सकता इसी प्रकार अच्छी खाद के बिना पहिले तो फसल का होना ही कठिन है पर हो भी जाय तो बहुत कम मात्रा में होती है। भारतवर्ष में खाद का प्राकृतिक साधन गोबर है। उस का खाद भी अत्युत्तम होता है, परन्तु ईंधन की कमी और कृषक की अज्ञानता से वह इस देश की पूञ्जी को उपले

बना बना कर फूंकता जा रहा है। एक जर्मन यात्री ने आश्चर्य के साथ यह दृश्य देखा और कहा—"भारतीय किसान अपने हाथों देश के धन में आग लगा देते हैं।"

इसके अतिरिक्त वैज्ञानिक ढङ्ग से बनाए गए रासायनिक खादों का प्रयोग भी उपादेय है। सरकार ने भावी योजना में १०० करोड़ रुपया ऐसी खादों और खादों को तैयार करने वाली निर्माणियों के निमित्त स्वीकार किया है।

भारतीय कृषि के सुधार में एक सब से बड़ी अड़चन उस की चकबन्दी का अभाव है। एक पिता के अनेक पुत्र बंट कर उसी भूमि के छिटके भाग पाते हैं। न ये छोटे २ टुकड़े ट्रैक्टरों से जोते जा सकते हैं न वैज्ञानिक ढङ्ग की कृषि उन में सम्भव ही है। अतः या तो कृषकों को सहयोगी समितियों का निर्माण कर स्वयं इस प्रकार का क्षेत्र वितरण करना चाहिए कि एक व्यक्ति की सारी भूमि एक स्थान पर ही आ जाय। इस से उसे कार्य करने, खाद डालने और देखरेख में सुभीता रहेगा, दूसरे वैज्ञानिक यन्त्र उस में कार्य कर पाएंगे। दूसरा उपाय यह हो सकता है कि कृषि का राष्ट्रीयकरण हो। दोनों में से कोई भी उपाय क्यों न किया जाय परन्तु कृषि की चकबन्दी अत्यावश्यक है।

भारतीय कृषि के सुधार और परिष्कार के साथ-साथ कृषक के मनोविज्ञान में परिवर्त्तन लाना परम आवश्यक है। वह लकीर का फकीर बना बैठा है। सब से शोचनीय दशा में होता हुआ भी परिवर्त्तन का घोर विरोधी है। कवि ने भारतीय कृषि का अच्छा चित्र खींचा है—

"पिचके-पिचके गाल, गढ़े में आँख गड़ी हैं ।
सटा पीठ से पेट, भूख से आँत चढ़ी है ॥
बड़े केश कृश-काय, ठूंठ से हड्ढे खड़े हैं ।
झुर्रीयुत है खाल, गात में गड्ढ पड़े हैं ॥
असमय में ही जराविजित, सब तन जर्जर है ।
चर्म-मढ़ित अवशेष, अस्थियों का पिंजर है ॥
कटि झुक हुई कमान, निपट नैराश्य-भार से ।
चिथड़े तक उड़ गये, दुसह दारिद्र्य-भार से ॥"

बिचारे किसान को इस दीन-हीन दशा से तभी निकाला जा सकता है जब उसका दारिद्र्य-भार दूर हो। उसके दारिद्र्य-भार का कारण जमींदार भी है—

"पूंजीपति, धनवान पनपने कब देते हैं ।
जो कुछ होती उपज ब्याज में ले लेते हैं ॥
फिर भी रहता खड़ा मूलधन मृत्यु दिवस तक ।
भरते रहते घड़ा इन्हीं का जीवन जब तक ॥"

"स्वयं कृषिकार ही भूमि का स्वामी हो" इस नियम के लागू कर देने से अत्याचारी के अत्याचार और अत्याचारपीड़ित की यातनाएं समाप्त हो सकती हैं। मध्यप्रांत और मद्रास ने इस ओर सराहनीय प्रथम पद रखा है। जब कृषि-श्रमिक कृषि के स्वामी घोषित होंगे तो वे तन, मन, धन से कृषि को ऊर्वरा बनाने के उद्योग करेंगे और फसल दुगनी तिगुनी अधिक लेंगे। जमींदार भी छिनने के भय से अपने पास रखी भूमि को परिश्रम से कमाएगा। परिणाम देश भर की भुखमरी और विपन्नता का नाश होगा।

इसके अतिरिक्त कृषक को पुरानी रुढ़ियों और रीतिरिवाजों के भयानक पंजे से छुड़ाना चाहिए। गाढ़े पसीने की कमाई को

एक ही पुत्री के विवाह या शेखी के निमित्त लड़े जाने वाले अभियोग पर लगा देता है। तनिक २ बातों पर उसकी नाक कटती है।

कृषक की सब त्रुटियों की एकमात्र अमोघ औषध है उसकी शिक्षा। शिक्षित कृषक ही स्वतन्त्र देशों के कृषकों से टक्कर ले सकेगा, अशिक्षित नहीं। कृषि का यन्त्रीकरण भी तभी सम्भव होगा जब कृषक वैज्ञानिक यन्त्रों का बुद्धिपूर्वक प्रयोग कर पाएगा। आशा है स्वतन्त्र भारत निकट भविष्य में उन्नत कृषि और सुशिक्षित कृषक तैयार करने में पूर्ण सफल होगा।

"कर्म-प्रधान विश्व रचि राखा"

विचार-तालिका :—

१. भूमिका—विश्व की कर्मप्रधानता। कर्मठ को ही ईश्वर दर्शन २. 'अकर्मा दस्युः' निकम्मा व्यक्ति चोर है। ३. संसार कर्मों के कर्म के कारण ही लुभावना। ४. कर्मयोगी के लिए कुछ भी कठिन या असम्भव नहीं। ५. प्रत्येक कर्म कर्तव्य रूप में उत्तम है।

विश्व में कर्म ही प्रधान है। दार्शनिकों का तो सिद्धान्त ही यह है कि विश्व प्राणियों के कर्म के विस्तार और उसके परिणाम के अतिरिक्त कोई वस्तु नहीं। उस सृष्टि कर्ता ने इस विश्व में नाना प्रकार के भोगों की सृष्टि की है, परन्तु भोगने का सौभाग्य उस व्यक्ति को ही प्राप्त होता है जो कर्मयोगी हो। 'वीरभोग्या-वसुन्धरा' विश्वभर के पदार्थ कर्मयोगी के लिए हैं। बैठे २ आलस्य में आयु बिताने वाले के लिए अपमान, घृणा और

उदासी के और धरा ही क्या है ? सन्त प्रवर तुलसीदासजी ने ठीक ही कहा है —

"सकल पदार्थ हैं जग मांही, कर्महीन नर पावत नाहीं।"

कुछ भ्रान्त साधु कर्ममार्ग को त्याग कर संसार से परे भागते हैं। वे संसार पर भार रूप हैं। वे अपने जीवन और मुख से अकर्मण्यता का उपदेश देकर जाति को पतन के गढ़े की ओर धकेलते हैं। मलूकदास जी कहते हैं—

अजगर करे न चाकरी, पंछी करे न काम।
दास मलूका कह गये, सबके दाता राम॥

वस्तु स्थिति इसके विरुद्ध है। ऐसे अकर्मण्य व्यक्तियों के पास वह प्रभु नहीं आता। वह तो कर्मठों के भवनों में ही झांकता है। रवीन्द्र नाथ टेगोर लिखते हैं—"Salvation and God do not come to the saint sitting in a corner of a cloister and losing himself in contemplation : rather God reveals Himself to the man of action, to the mender of thwart, to the tiller of the field. This is true worship." अर्थात् मुक्ति या परमेश्वर आश्रम के किनारे में समाधिस्थ सन्त के पास नहीं आता, वरन् वह प्रभु तो कर्मठ व्यक्ति को ही आत्म स्वरूप दिखाता है। उदाहरणार्थ-छत के परिष्कार करने वाले और खेत के जोतने वाले कृषक को। यही सच्ची पूजा है।

यह विश्व क्षेत्र है। हम सब प्राणी कृषक हैं। किसान जो कुछ बोएगा वही काटेगा--'जो बवै सो लवै निदान'। इसमें अकर्मण्य रहने का किसी भी शरीरधारी को अधिकार नहीं, क्योंकि उसे

शरीर का पालन पोषण करने के लिए कुछ न कुछ करना ही पड़ता है। यदि वह बिना कुछ किए कराए पेट भर लेता है तो वह डाकू या चोर है क्यों कि दूसरे के कर्म से उपार्जित फल ही का वह भोग करता है। वेद भगवान् भी उसे दस्यु की उपाधि देता है—'अकर्मा दस्युः' अर्थात् निकम्मा व्यक्ति चोर या डाकू है। चोर और डाकू दूसरों से उपार्जित द्रव्य को बिना कुछ दिए चुरा या लूट कर भोगते हैं, ऐसा ही बिना काम किए जीने वाला व्यक्ति करता है। इस लिए अकर्मण्य और दस्यु समान रूप से समाज के अपराधी हैं।

यह विश्व कर्मठ योगियों के कारण ही सुभावना बनता है। आज मनुष्य कर्मयोगियों के प्रताप से पंख न रखता हुआ भी आकाश में उड़ता है; स्थलचर होता हुआ भी अगाध जल में विचरता है और घर बैठे बैठे ही विश्व भर के समाचार और गीत सुनता है। विविध प्रकार के शास्त्र, दर्शन, चिकित्साएं और कलाकौशलों की उत्पत्ति तो पूर्ववर्ती भगीरथ प्रयत्न करने वाले पुरुषार्थों के प्रयास का ही फल है। सड़कें, नगर, कूप, धर्मशालाएँ, मन्दिर, पुस्तकालय सब पुरुषार्थी व्यक्तियों ने अपने पुरुषार्थ से बना कर हमारे लिए छोड़े हैं।

कर्मवीर सदा उत्साही होते हैं। उनके कोश में कठिन या असम्भव शब्दों का अभाव ही है। छत्रपति शिवाजी का प्रण ही 'कार्यं वा साधयेयं देहं वा पातयेयम्' 'या काम साध के छोड़ूंगा या मर जाऊँगा' था। एक साधारण पिता का पुत्र इस अदम्य उत्साह से एक दिन सम्राट् औरंगजेब के लिए हउवा बन कर रहता है। राम तपस्वी थे। न कोई वन में सुशिक्षित सेना थी न शस्त्राशस्त्र, परन्तु इस उत्साह गुण से वन में ही साधन

जुटाकर अभिमानी रावण की सुनहरी लंका की ईंट से ईंट बजा कर छोड़ी। नैपोलियन ने आस्ट्रिया पर आक्रमण किया। मध्य में एल्प्स पर्वत (Alps) ने बाधा डाली। इञ्जनीयरों ने कहा, "महाराज इधर से मार्ग कठिन है।" नैपोलियन ने कहा, "केवल कठिन ही असम्भव तो नहीं?" "नहीं महाराज असम्भव तो नहीं।" "तब रुकने का कोई कारण नहीं। सेना अवश्यमेव कूच करेगी।" परिणाम यह हुआ कि आस्ट्रिया पर फ्राँसीसियों का आधिपत्य स्थापित हो गया। इसी प्रकार शिक्षा के क्षेत्र में ईश्वरचन्द्र विद्यासागर और धन के क्षेत्र में सर गंगाराम आदि को लिया जा सकता है, जिन्होंने निर्धन होते हुए भी अपने लक्ष्य की सिद्धि की। किसी कवि ने ठीक ही कहा है 'क्रियासिद्धिः सत्त्वे भवति महतां नोपकरणे।' अर्थात् महान् पुरुषों की कार्य की सफलता उनके उत्साह में रहती है न कि साधनों में।

प्रत्येक कार्य जो कर्तव्य समझ कर शुभ भावना से किया जाता है पवित्र और आदरणीय होता है। रस्किन ने कहा है "work is worship" अर्थात् अपना कार्य ही पूजा है। इसी को पश्चिमीय विचारक 'Dignity of labour' 'कार्य या व्यवसाय की शान' कहकर पुकारते हैं। इस अपने कर्म की महानता को समझते हुए ही श्री कृष्ण जी ने गीता में कहा 'स्वधर्मे निधनं श्रेयः' अर्थात् अपने कर्म या कर्तव्य पर तो प्राण न्यौछावर करना भी प्रशंसनीय है। यूरोप आदि उन्नत देशों में लोग इस रहस्य को भली-भान्ति समझते हैं। वहां बड़े से बड़ा व्यक्ति भी अपना कार्य करते नहीं शर्माता। यथाशक्ति अपना भार आप उठाना, खेती का काम करना, कल कारखाने में हाथों से

काम करना, झाड़ू लगाना, कपड़े धोना, भोजन पकाना आदि काम लज्जाजनक नहीं समझे जाते। चमार, लोहार, बढ़ई आदि का व्यवसाय पढ़ाई लिखाई या क़लकी से अणुभर भी हीन नहीं समझा जाता। परिणाम स्वरूप वहाँ नौकरियों के लिए लोग ऐसे लालायित नहीं रहते जैसे भारत में। नौकरी की अपेक्षा स्वतन्त्र कार्य को वहाँ अधिक आदरणीय समझा जाता है। यहाँ तो यदि बाबू जी के हाथ में छोटा सा सूटकेस भी स्टेशन से निकलते किसी परिचित ने देख लिया तो बाबू जी की नाक ही न रहने पाएगी। वाशिंगटन ने देखा कि कुछ मजदूर भारी लकड़ी को खड्ड से निकालने के लिए सिर एडी तक का ज़ोर लगा रहे हैं पर निकाल नहीं पाते, और किनारे पर एक व्यक्ति उन्हें आदेश देकर ही खड़ा यह दृश्य देख रहा है और उन्हें डॉट पिला रहा है। राही आगे बढ़ा और लकड़ी उठाने में सहायता की। लकड़ी निकल आई। किनारे पर खड़े आदेशदाता जमादार ने धन्यवाद दिया। उत्तर में राही बोला, "कोई बात नहीं जब कोई ऐसा वैसा काम अड़े तो अमेरिका के सेनापति को सूचित करना।" यह बात सुनते ही जमादार खिसिया कर वाशिंगटन के पांव पड़ा और क्षमा मांगी।

भगवान् कृष्ण ने कर्म की श्रेष्ठता प्रतिपादन करते हुए एक शर्त लगाई है और वह है कर्म करते जाना पर फल की आकांक्षा न करना। इससे मनुष्य बेईमानी से बच जाता है। उन्होंने कहा है 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन' (ऐ मनुष्य तेरा अधिकार कर्म करने मात्र का है फल को फलदाता के हाथ छोड़)। यदि भारत में कर्म की श्रेष्ठता समझ कर फल की अत्सासक्ति न होती तो आज दूध में पानी, घी में चर्बी, आटे

में सड़ी लकड़ी और मिठाई में कोटोजम न दीखते। न ही चोर बाजारी जैसी कोई वस्तु देश की सत्ता या स्वतन्त्रता को सन्देह में डालती। कर्म में प्रेम नहीं होता सब फलमात्र चाहते हैं। परिणाम यह हो रहा है कि सब लोग अच्छे या बुरे सभी उपायों से फल ही चाहते हैं। विद्यार्थी पढ़ने में प्रेम न रख नकल से पास होकर नाम मात्र का प्रमाणपत्र चाहता है, दूध वाला दूध में पानी मिलाकर शीघ्र धनवान बना चाहता है, यही अवस्था अन्य व्यवसाय वालों की है। जब हम इन सब का सर्वयोग करते हैं, तो हमें कोई भी वस्तु अपने शुद्ध रूप में नहीं मिलती। इसीलिए जाति का खान पान, शिक्षा दीक्षा सब नकली वस्तुओं पर आश्रित है। आयु खाद्य पदार्थों के मिलावटी होने के कारण घटती जा रही है। स्वास्थ्य की शोचनीय दशा है।

इसलिए यदि 'कर्मदेव' को प्रसन्न कर उसके प्रसाद का फल वास्तविक सम्पन्नता या खुशहाली लानी है तो अपना कर्म न हीन समझना चाहिए और न उसमें बेईमानी करनी चाहिए। सुचारुरूप से किए हुए कर्म का फल स्वयं ही मिल जाएगा। आशा है स्वतन्त्र भारत में पुनः कर्म का महत्त्व समझा जाएगा और उसके अनुसार पुनः जीवन ढालने का प्रयास किया जाएगा।

"हो सचेत श्रम करो सदा तुम, चाहे जो कुछ हो परिणाम।
सदा उद्यमी होकर सीखो धीरज धरना, करना काम॥"

---

*

नागरिकता

[नागरिकता से तात्पर्य 'नागरिक जीवन' से नहीं। बहुत से विद्यार्थी इस निबन्ध में नगरवास के गुण तथा दोष, लाभ व हानियाँ दर्शाने लग जाते हैं, जो कि अभीष्ट नहीं। नागरिकता, जिसे इंगलिश में 'Citizenship' कहते हैं, 'प्रजा के अधिकार' से तात्पर्य रखती है। प्रजा चाहे बड़े नगर में बसती हो अथवा किसी चार-पाँच घरों वाले छोटे से ग्राम में, उसके कर्त्तव्य तथा अधिकार नागरिकता के नाम से पुकारे जाएंगे।]

मनुष्य एक सामाजिक जीव है वह अकेला निर्वाह नहीं कर सकता; उसे हर बात में तथा हर कार्य में दूसरों की सहायता लेनी, तथा करनी पड़ती है। अन्यथा उसका जीवन दो कौड़ी का भी नहीं। यह पारस्परिक सम्बन्ध न केवल उसके परिवार अथवा पड़ोसियों तक ही सीमित रहता है, अपितु बढ़ते २ उसके ग्राम, नगर, देश, यहाँ तक कि सम्पूर्ण संसार के साथ स्थापित हो जाता है। इसी सम्बन्ध को फैलाने का भार एक सच्चे नागरिक पर है और उसके कर्त्तव्यों तथा अधिकारों का नाम 'नागरिकता' है।

जो कार्य हम करते हैं, उसका प्रभाव दूसरों पर पड़े बिना नहीं रह सकता। यदि हमारे कार्यों से हमारे नगर की भलाई होती है तो हम एक सच्चे नागरिक हैं, अन्यथा बुरे। और एक बुरा नागरिक अपने नाश के साथ २ नागरिक जनता के भी नाश का कारण बनता है। व्यक्तिगत श्रेष्ठता तथा अश्रेष्ठता दोनों का प्रभाव सदा पड़ता है जो कि नगर को अथवा हमारे जन-समाज को बनाने अथवा बिगाड़ने का कार्य करता है। साधारण

जनता दूसरों का अनुकरण करना जानती है। वह ठीक उसी मार्ग पर चलेगी, जिस पर उसके आदर्श पुरुष—जिन्हें वह कम से कम आदर्श समझती है—चलेंगे। इस विचार से एक सच्चे नागरिक का—आदर्श व्यक्ति का—उत्तरदायित्व अधिक बढ़ जाता है।

एक सच्चा नागरिक दूसरों के आराम का ध्यान रखता है। उसे अपने नगरनिवासियों के साथ सहानुभूति होती है, दूसरों के सुख में सुखी तथा दुःख में दुःखी होता है। पड़ोसी के घर में यदि कोई रोगी पड़ा है तो उसके घर में बज रहा बाजा अथवा आमोदप्रमोद बन्द हो जाया करता है। इसमें दिखावा नहीं, अपितु सच्ची सहानुभूति होती है और सहायता करने का स्वाभाविक भाव।

अपने ग्राम अथवा नगर को आदर्श बनाने के लिये प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य हो जाता है कि वह इसके लिये पूरा २ प्रयत्न करे। स्वस्थ रहना प्रत्येक नागरिक के लिये प्रथम कर्तव्य है, इसके लिये उसे अपने नगर में स्वच्छता का पूर्ण रूप से ध्यान रखना होता है। स्वच्छता का न रखना बीसियों प्रकार के रोगों को निमन्त्रण देना है। नगर की म्युनिसिपल कमेटियों का ध्यान इस ओर आकृष्ट कराने के लिये उसे कमेटी के अधिकारियों से प्रार्थना करनी चाहिये, पर इसमें उच्छृङ्खलता का भाव लाना या करना श्रेयस्कर नहीं। अधिकारियों के नियमों का पालन भी अधिकारियों का साथ देना है। अपना झूठा अभिमान दिखाने के लिये सामयिक शासन विधानों का न मानना एक निकृष्ट नागरिक का कार्य है। हाँ अपनी समुचित मांग पेश करना अथवा किसी अनुचित कानूनों का विरोध

करना तो एक सुविज्ञ नागरिक का कर्त्तव्य है ही।

शिक्षा वह साधन है, जिससे किसी भी जन-समाज को सभ्य तथा व्यवहार-कुशल बनाया जा सकता है। नागरिकता इस क्षेत्र के बिना भी अधूरी रह जाती है। इसके प्रसार के लिये प्रत्येक नागरिक स्वयं शिक्षित होने के साथ २ अपनी भावी सन्तान को शिक्षित बनाने का उद्योग करे। इसके लिये उसे अधिकारियों को सहयोग देना चाहिये। यदि अधिकारिवर्ग अथवा म्यूनिसिपल कमेटी के कार्यकर्त्ता आर्थिक कठिनाइयों अथवा किसी अन्य कारण वश इस ओर कार्य करने में असमर्थ हों तो प्रत्येक नागरिक को अपने चन्दा इत्यादि से शिक्षा का प्रबन्ध करना चाहिये, क्योंकि एक आदर्श नगर अथवा ग्राम के लिये वहाँ की जनता का शिक्षित होना अनिवार्य है।

नागरिकों के हाथ में एक बड़ी शक्ति चुनाव के दिनों में हुआ करती है। उससे पूरा २ लाभ उठाना अथवा न उठाना भी उनके हाथ में हुआ करता है। अपने एक २ वोट का मूल्य असाधारण नागरिक भली-भांति जानते हैं, क्योंकि उनके एक २ वोट से चुना गया म्यूनिसिपल कमेटी, असैम्बली अथवा कौन्सल का सदस्य एक अच्छा अधिकारी प्रमाणित होगा। सच तो यह है कि नागरिकता की एक प्रबल शक्ति जनता के यही वोट हैं। बिना सोचे समझे मत देकर फिर अधिकारिवर्ग की अथवा उनके कानूनों की निन्दा करना अपनी निन्दा करना है। इस लिए जहां तक हो सके, प्रारम्भ में ही प्रत्येक अच्छे नागरिक को निष्पक्ष भाव से अधिकारियों को चुनना चाहिए, ताकि बाद में शिकायत अथवा निन्दा करने की नौबत ही न पहुँचे।

नागरिकता का एक बड़ा महत्वपूर्ण लक्षण एक दूसरे की

सहायता करना है, अतः एक सच्चा नागरिक अपने नगर निवासियों की आर्थिक कठिनाइयों को दूर करने की चेष्टा करता है। आर्थिक कठिनाइयां किसी भी व्यक्ति को अपने आदर्श से गिरा कर पाप के गढ़े में धकेल सकती हैं। अतएव बेकारी तथा निर्धनता को दूर कर देना अपने ग्राम अथवा नगर को समुन्नत बनाना है। इसी प्रकार अपने नगर की बाह्य शत्रुओं अथवा आन्तरिक कलहों से रक्षा करना नागरिकों का कर्त्तव्य है। आन्तरिक कलहों को तो पैदा ही न होने में नागरिकों का गौरव है। अपराधियों को खोजने में पोलिस की सहायता करना अपराधों का घटाना है। लोगों में, जहां तक बन पड़े, धार्मिकता के भाव भरे जाएं, ताकि अपराध कम हों, और इन सब आदर्शों को स्थापित करने के लिए हमें स्वयं आचरण करना होगा, क्योंकि साधारण जनता तो अनुकरण करना ही जानती है। अपने नगर को ही समुन्नत बनाकर नागरिकता के कर्त्तव्यों की इतिश्री नहीं हो जाया करती, यहां से उसका प्रारम्भ होता है। एक उत्तम नागरिक तो संसार भर का निवासी है। वह संसार भर के साथ सम्बन्ध स्थापित करना तथा उसे उन्नत बनाना अपना गौरव तथा अधिकार समझता है। मनुजी महाराज की भी यही आज्ञा है—

अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानान्तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥

अर्थात् 'यह अपना (देश) है, और यह पराया, ऐसी गणना तो संकुचित हृदय वालों की हुआ करती है, उदारहृदय मनुष्य के लिए तो सारी पृथ्वी ही अपना कुटुम्ब है', और यही नागरिकता का वास्तविक स्वरूप है।

संयुक्तराष्ट्र संघ

पिछले पच्चीस वर्षों में दो बार समस्त संसार महा समरों के बीच से गुजर चुका है। इनके पीछे कुछ ऐसे विशिष्ट कारणों का जमघट आ जुटा था, जिसका निदान करने के लिए विश्व में हिंसात्मक प्रवृतिवेत्ता नागरिक समुदाय ने सार्वभौमिक महायौद्धिक क्षेत्र में उतरना स्वीकार किया और इसका परिणाम यह हुआ कि उनमें से लगभग सभी राष्ट्रों को, जो अपने मन अथवा बेमन किसी रूप से भी युद्ध में घसिट आये थे, राजनीतिक हानि के साथ-साथ आर्थिक एवं सामाजिक हानियां हुई। जनता के सांस्कृतिक ह्रास का तो कहना ही क्या। इन युद्धों की पुनरावृत्ति को रोकने के लिए ही 'लीग आफ नेशन्स' की नींव डाली गई थी, जो समय की भाग-दौड़ में तथा जो स्वार्थपरता के साये में असफलता की काया बनी। यह तो प्रथम महासमरोपरान्त काल की बात है। इस बार उसके स्थान पर 'संयुक्त राष्ट्र संघ' संस्था निर्मित की गई है। इसके नाम के साथ-साथ इसके सिद्धान्त तथा काम भी सुन्दर हैं, जिनका हम संक्षेप में निरूपण करेंगे। परन्तु इसकी सफलता इन उच्च उद्देश्यों की कार्यान्वितता पर आश्रित है।

संयुक्तराष्ट्र संघ क्या है ?

संयुक्त राष्ट्र-संघ एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था है। इसके अन्तर्गत विश्व की छोटी तथा बड़ी अट्ठावन स्वतन्त्र राष्ट्र शक्तियों ने संयुक्त राष्ट्रों के अन्तर्राष्ट्रीय चार्टर में निहित तमाम उत्तर-दायित्वों को पूरा करने का प्रण किया है। इस चार्टर का नाम-करण 'एटलांटिक चार्टर' किया गया है इस चार्टर की पृष्ठ-भूमि

में विश्व की जनता की आवाज है, उसकी शक्ति है और उसकी सदिच्छाओं की पूंजी है। तथापि विश्व की सामूहिक जनता ने यह निर्णय किया है:—

(१) भावी संतति को युद्ध के कराल गाल से बचाया जाय।

(२) समस्त संसार के मनुष्यों के विशुद्ध मौलिक अधिकारों की रक्षा की जाय तथा राष्ट्र यह मानने के लिए तैयार हैं कि समग्र राष्ट्रों के नर तथा नारियों के अधिकार समान हैं, उसमें किसी प्रकार के अन्तर का समावेश नहीं है।

(३) विश्व में ऐसी अवस्थाएं उत्पन्न की जायं और एक बार ऐसा होने से उनको इस प्रकार स्थापित रखा जाय कि जिससे तमाम शान्ति-संधियों में निहित उत्तरदायित्वों के अन्तर्गत होने वाले न्याय तथा सम्मान की उचित एवं पूर्णरूपेण रक्षा की जा सके।

(३) सकल मानव का जीवन-स्तर चिर प्रगतिशील किया जाय।

वास्तव में इस अन्तिम ध्येय की स्थापना ही संयुक्त राष्ट्र-संघ का मनोनीत ध्येय है, जिसकी चिरवांछित कामना उपर्युक्त तीन अन्य ध्येयों के अभाव में पूर्ण नहीं हो सकती। यदि विश्व वैयक्तिक, सामूहिक अथवा राष्ट्रीय रूप से युद्ध की बेढब विभीषिका में धू-धू जलता रहे तथा एक मनुष्य दूसरे स्वजातीय, विजातीय तथा अन्य राष्ट्रीय मनुष्य के मौलिक अधिकारों की अवहेलना करता रहे तथा नर-नारी के अधिकारों में असमानता चलती रहे, तब उनके जीवन में ऐसी अस्थिरता आ जाना आवश्यक है, जिससे विश्व में अशान्ति का दौरा बार-बार होता रहेगा। उसमें रोक लगा सकना नितान्त असम्भव होगा।

इसके अतिरिक्त इन राष्ट्रों के लिए यह भी आवश्यक है कि वे पारस्परिक द्वेष को समाप्त कर शान्तिपूर्वक रहें। इसके साथ-साथ उनको चाहिए कि वे अपनी वैयक्तिक शक्तियों को एकीकृत करके सामूहिक रूप प्रदान करें, जिससे वे उस समय पूर्ण-रूपेण कार्यान्वित की जा सकें, जब कोई भी राष्ट्र किसी अन्य राष्ट्र के ऊपर आक्रमण करे। ऐसे कार्य के शान्तिपूर्वक संचालनार्थ उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय माध्यमों की शरण लेनी होगी, जिसके मूल आधार पर विश्व की तमाम जनता की आर्थिक तथा सामाजिक उन्नति हो सकती है।

संघ के समक्ष कार्यों की सूची

इन ध्येयों की सर्वव्यापी पूर्ति के निमित्त इन राष्ट्रों के समक्ष चार मुख्य कार्य हैं। ये निम्नांकित हैं:—

(१) अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं रक्षा स्थापित करना।

(२) इनके लिए यह आवश्यक कार्य है कि समस्त देश आपस में मित्रता का सम्बन्ध रखें, जिसका आधार यह होगा कि देशों की जनता स्वतन्त्र है और उनके अधिकार सर्वथा समान हैं, क्योंकि यदि सबके स्वतन्त्र रहने तथा समानता का अधिकार अंगीकार नहीं किया जाता, तो कभी न कभी वह समय भी आ सकता है, जब उनमें शत्रु-भावों का प्रादुर्भाव हो जाय और विश्व में युद्ध की प्रचण्ड अग्नि की लपटें उठने लग जायँ।

(३) अतएव यह भी आवश्यक कार्य है कि उन देशों में उन खड़ी होने वाली तमाम आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा मानवीय संरीखी अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं को सुलझाने में वे सब पारस्परिक सक्रिय सहयोग प्रदान करें। पर यह काम

सफलतापूर्वक उस समय तक कदापि नहीं हो सकता, जब तक कि ये देश मानवीय अधिकारों तथा मौलिक एवं जन्मसिद्ध स्वतन्त्रता के अधिकार को हृदयंगम न कर लें। इसके अभाव में वे एक न एक दिन अपने मित्र राष्ट्र पर हावी हो जायेंगे और इस प्रकार विश्व को दो विभिन्न दलों में विभक्त कर सकते हैं।

(४) इन उपर्युक्त कार्यों को सम्पादित करने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ ऐसे काम करे, जिसमें सब सदस्य देश अपना-अपना सहयोग दें। अतः यह संघ इन कार्यों का केन्द्र होना चाहिए।

सिद्धांत

वैयक्तिक, सामूहिक, राष्ट्रीय, अथवा अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में काम करने वाले किसी आंदोलन तथा संस्था की सफलता प्रचार एवं प्रसार और उसके सिद्धांतों पर निर्भर होता है। साधारणतया भी जीवन का मूल आधार सिद्धान्त है। इन सिद्धांतों को विचारशीलता का आवरण प्राप्त होता है। यदि संस्था ने ऐसे सिद्धांतों का आश्रय ग्रहण किया है, जिनकी पूर्ति पर मानवी कल्याण निहित है, तब कोई कारण नहीं कि समस्त मानव-जनता समुद्र की उत्ताल तरंगों की तरह बल खाती हुई उस संस्था की सदस्यता पाने की मांग करे। संयुक्त राष्ट्र संघ के सामने भी ऐसे ही विश्व-व्यापी, विश्व-शान्ति तथा विश्व-प्रगति के लिये आवश्यक कुछ सिद्धांत हैं। इनका मनन करना, हमारे लिये कल्याण प्रद है:—

(१) संयुक्त राष्ट्र संघ का सार्वभौमिक भवन प्रत्येक राष्ट्र-सदस्य की सात्त्विक समानता की नींव पर निर्मित किया गया है।

(२) यह हम पहिले ही देख चुके हैं कि संघ का निर्माण अटलांटिक चार्टर को क्रियान्वित करने के लिये हुआ है। तथापि इसके सदस्यों ने बृहत्तर सार्थक विश्वास की पूंजी पर इस चार्टर के अन्तर्गत आने वाली सारी जिम्मेदारियों को निभाने का प्रण किया है। इस सिद्धान्त को मानकर यदि किसी समय किसी अवस्था में कोई सदस्य देश अपने उत्तरदायित्वों से मुकरने का प्रयत्न करता है, तो वह अन्य देशों से शत्रुता ठानने की गलती करेगा, और वे देश उसके विरुद्ध हथियार तक उठा सकते हैं।

(३) यद्यपि ऐसे देश, किसी एक देश अथवा एक देश समूह के विरुद्ध अस्त्र उठा सकते हैं, परन्तु यह निर्णय संघ के समस्त देश करेंगे। इसीलिये यदि देशों में कोई अन्तर्राष्ट्रीय विरोध उपस्थित हो जाता है, तो वे देश उसका निबटारा शान्तिमय साधनों से करेंगे।

(४) संघ के समस्त सदस्य यह मानते हैं, कि वे अपने अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को ठीक रखने के लिये किसी प्रकार का हठ अथवा धमकियों का प्रयोग न करेंगे, जो संयुक्त राष्ट्र के महान् कार्यों का विरोधी हो।

(५) समस्त सदस्य इसका भी प्रण करते हैं कि विरोधी देश अथवा देशों के विरुद्ध कार्यवाही करने के अवसर पर संयुक्त राष्ट्र संघ को सहायता देंगे, चाहे वे कार्यवाहियां रोकथाम की अथवा आक्रमणकारी ही क्यों न हों। इस विश्वासी सिद्धान्त पर निर्भर रहकर ही संघ अपने ध्येय की पूर्ति कर सकने में समर्थ हो सकेगा इसमें किसी प्रकार की थोड़ी अथवा अधिक दिखावट आ जाने से विश्व-शान्ति की रक्षा नहीं

हो सकती।

(६) संयुक्त राष्ट्र संघ इस बात का विश्वास दिलाता है कि वे देश, जो संघ के सदस्य नहीं हैं, वे भी इन सिद्धांतों पर काम करेंगे ताकि संसार में शान्ति बनी रहे और उसकी रक्षा हो सके।

(७) देश में घरेलू झगड़े भी हुआ करते हैं, पर इनसे संघ का कोई सरोकार न होगा। वह इन मामलों में हस्तक्षेप न करेगा, क्योंकि सदस्य देशों को चाहिए कि वे ऐसे झगड़े-टंटों को स्वयं निबटा लें।

संगठन

संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रमुख अंग हैं:—

(१) साधारण सभा
(२) सुरक्षा समिति
(३) आर्थिक तथा सामाजिक समिति
(४) ट्रस्टीशिप समिति
(५) अन्तर्राष्ट्रीय न्याय अदालत
(६) सचिवालय

इन अंगों के सफल संचालन में करोड़ों रुपयों का वार्षिक व्यय होता है। प्रत्येक आगामी वर्ष के लिए आय-व्ययक बनाकर साधारण सभा में पास किया जाता है, और उनके प्रस्तावानुसार प्रत्येक सदस्य देश को व्ययांश देना पड़ता है।

संघ अधिकारियों को संघ के कार्य को पूरा करने के लिये विशेष अधिकार तथा सुविधाएं दी जाती हैं, जिससे उनकी कार्य पद्धति में सुचारुता आ सके। वे अपनी कार्यवाही करने

के लिये किसी भी देश के किसी भी क्षेत्र में जा सकते हैं और कार्यपूर्ति के समय तक अपना अड्डा जमा सकते हैं।

(नवयुग से)

छायावाद

परिस्थितियां—आज का विश्व 'वादों' का संसार है। राजनैतिक क्षेत्र को गणतन्त्रवाद, साम्यवाद, पूंजीवाद, समाजवाद आदियों ने व्याप्त किया हुआ है, तो साहित्यिक क्षेत्र में छायावाद, रहस्यवाद, प्रगतिवाद, आशावाद, निराशावाद, भौतिकवाद और हालावाद आदि वादों का ही बोलबाला है।

गत द्वितीय विश्वयुद्ध के पूर्व इन वादों को भारतीय साहित्य क्षेत्र में इन नामों से कोई नहीं जानता था। परन्तु युद्ध के कुपरिणाम-स्वरूप देश में आर्थिक दशा बिगड़ती गई। बेकारी बढ़ती गई। कांग्रेस के स्वतन्त्रता के आन्दोलन दबाए जाते रहे। हीन-वृत्ति से युवक-हृदयांकुर बुरी तरह मसला गया, इसलिए वह विद्रोह न कर सका वरन् लोक से निराश होकर आध्यात्मिकता में शरण ढूंढने लगा। वह यहां के सम्बन्ध झूठे और नीरस देखकर परमसत्ता से गठजोड़ करने को उतावला हो उठा।

द्विवेदी युग की क्रियात्मकता, शुष्कता और इतिवृत्तात्मकता की चट्टानें कुछ काल तक तो भावुक हृदय की कोमल भावनाओं के स्रोत को रोक रखने में सफल हुईं, परन्तु अन्ततोगत्वा वह 'छायावाद' में रूपान्तरित होकर प्रबल वेग से फूट पड़ा। अंधकाश जाते ही रीति काल की शृङ्गारिकता की अश्लीलता का

चोगा उतार और शिष्टता का रूपधार कर बह पड़ी।

इस नए ही प्रकार की साहित्यिक धारा के प्रवाह को द्विवेदी काल के कर्णधारों ने उपहास, व्यंग्योक्तियों, अन्योक्तियों और कटु आलोचनाओं की शिलाओं से रोकना चाहा, परन्तु परिस्थिति की अनुकूलता और प्रवाह के प्रबल वेग के कारण यह हिन्दी साहित्यिक क्षेत्र को व्याप्त करके ही रही।

यद्यपि नवीन प्रकार की इस साहित्यिक धारा के बीज हमारे रूपकों या 'अद्वैतवाद' में विद्यमान थे परन्तु आधुनिक भारतीय छायावाद और रहस्यवाद पश्चिम से अंग्रेज़ी संस्कृति के साथ बंगाली साहित्य से होते हुए हिन्दी साहित्य में आ घुसे।

छायावाद नाम के कारण—(१) कुछ आलोचकों का विचार है कि इस पर पश्चिमी और उससे प्रभावित बंगाली नए प्रकार के साहित्य की छाया पड़ी है, इसलिए इसे छायावाद कहते हैं।

(२) रामचन्द्र शुक्ल ने छायावाद को (Phantasmata) अर्थात् छायाभास से निकला हुआ बताया है।

(३) कुछ कलाविद् इस मत के हैं कि प्रकृति सुन्दरी में चेतनता का आरोप कुछ अस्पष्ट सा रहता है, उस की छाया या झलक मात्र ही दृष्टिगोचर होती है। सम्भव है इसी लिए ऐसा दर्शन और वर्णन पद्धति को 'छायावाद' कहते हैं।

(४) जयशङ्कर प्रसाद 'छाया' से मोती पर की 'आभा' लेते हैं। उन की दृष्टि से इस में तथ्यता के साथ ही साथ अद्भुत छाया (आभा) है। जिस के सम्बन्ध में वे लिखते हैं, "कवि की वाणी में यह प्रतीयमान छाया युवती के लज्जाभूषण की तरह

होती है। ध्यान रहे कि यह साधारण अलङ्कार जो पहन लिया जाता है वह नहीं है; किन्तु यौवन के भीतर रमणीसुलभ श्री की बहिन ही है, घूंघटवाली लज्जा नहीं।"

परिभाषाएं—जैसे 'छायावाद' के नाम के भिन्न भिन्न कारण बताए जाते हैं पर वास्तविक कारण फिर भी सन्दिग्ध ही रह जाता है, ऐसे ही इस की परिभाषाएं भी भिन्न भिन्न विद्वानों ने भिन्न २ की हैं, परन्तु इस सम्बन्ध में लोगों की सन्देह निवृत्ति अब तक भी नहीं होने पाई।

(१) "विश्व की किसी वस्तु में एक अज्ञात सप्राण वस्तु की छाया या झांकी पाना अथवा उस का आरोप करना ही छायावाद है।"

छायावादी कवि प्रकृति के पुजारी की भान्ति विश्व के कण-कण में अपने सर्वव्यापक प्राणों की छाया देखता है। वह केवल प्रकृति के बाह्य सौन्दर्य का ही उपासक नहीं वरन् उसके आन्तरिक सौन्दर्य या छवि का भी भक्त होता है। तभी महादेवी वर्मा ने छायावाद की परिभाषा करते हुए कहा है—

(२) "छायावाद ने मनुष्य के हृदय और प्रकृति के उस सम्बन्ध में प्राण डाल दिए जो प्राचीन काल से बिम्ब प्रतिबिम्ब के रूप में चला आ रहा था, और जिस के कारण मनुष्य को अपने दुःख में प्रकृति उदास और सुख में पुलकित जान पड़ती है। छायावाद की प्रकृति एक महाप्राण बन गई, अतः मनुष्य के अश्रु, मेघ के जलकण, और पृथ्वी के ओस बिन्दुओं का एक ही कारण, एक ही मूल्य है।"

श्री गुलाबराय एम० ए० ने छायावाद की परिभाषा निम्न लिखित की है।

(३) "प्रकृति की गोचर सीमाओं को पार कर उस में दृश्यमान इतिवृत्तात्मक भौतिकता की अपेक्षा एक अलौकिक अगोचर मानवी भावुकता के दर्शन करने की प्रवृत्ति को छायावाद कहते हैं।"

स्पष्टीकरण—प्रथम परिभाषा में बताया गया है कि छायावादी कवि विश्व या प्रकृति की किसी वस्तु में एक अज्ञात सप्राण वस्तु की छाया (झांकी) पाता या आरोप करता है। दूसरे शब्दों में हम इसी बात को इस रूप से रख सकते हैं कि जिस प्रकार मानव दर्पण में अपनी परछाया देखता है और कहता है, 'यह मैं हूँ', "मैं दुबला पतला, सुन्दर या हृष्टपुष्ट हो गया हूँ" आदि, इसी प्रकार कभी कभी कवि जड़ प्रकृति में चेतनसत्ता की छाया (प्रतिबिम्ब) देखता है। उस अवस्था में जड़ की जड़ता जाती रहती है और कवि अपनी चेतनता का उस पर आरोप कर उस से घुल मिल कर चेतनता का उस पर आरोप कर उस से चेतन के समान बातें भी करने लगता है जैसे कि मानो वह सुन व समझ रही हो। वर्मा को रजनी बाला तारों के गजरे बेचने जाती हुई दीखी तो पूछ ही बैठे—

इस सोते संसार बीच
जग कर, सज कर, रजनी वाले !
कहां बेचने ले जाती हो,
ये गजरे तारों वाले ?

(राम कुमार वर्मा)

महादेवी वर्मा ने अपनी छायावाद की परिभाषा में बताया है कि छायावादी प्रकृति के साथ तादात्म्य (एकता का) सम्बन्ध जोड़ लेता है। तब उस के लिए प्रकृति जड़ व अचेतन

नहीं रह जाती, वरन् सुख-दुःख में पूर्ण सहानुभूति प्रदर्शित करती है। तनिक चञ्चला वसन्त रजनी वधू का हर्षान्वित कवयित्री के पास आगमन देखिए।

तारकमय तव वेणी-बन्धन
शीश फूल कर शशि का नूतन
रश्मि वलयसित घन अवगुण्ठन,
मुक्ताहल अभिराम बिछा दे चितवन से अपनी
पुलकती आ वसन्त रजनी।

तीसरी परिभाषा में छायावाद का स्वरूप पर्याप्त स्पष्ट हो जाता है। जब तक कवि प्रकृति के किसी पदार्थ को प्रकृति की गोचर सीमाओं के भीतर—जड़ को जड़ के रूप में, छोटे को छोटे के रूप में और बड़े को उसी रूप में देखता व वर्णन करता है तब तक वह प्रकृति-कवि है। उसकी वर्णन-पद्धति स्वभावोक्ति अलंकार के अन्तर्गत समझनी चाहिए। परन्तु जब कवि प्रकृति के पदार्थ की भौतिक सीमाओं की चिन्ता न करके उसमें मानवोचित भावनाएं देखता या निजी भावनाओं को उस पर आरोपित कर वर्णन करता है' तब वह प्रवृत्ति या वह वर्णन छायावाद की सीमा में परिगणित होता है।

छायावादी कवि का प्रकृति-दर्शनप्रकार—छायावादी कवि बाह्य प्रकृति का चित्रण भी आन्तरिक रूप से करता है। जब उसके सम्मुख कोई प्राकृतिक रूप आता है तो सर्व प्रथम वह उसका मानवीकरण करता है और फिर उसको मानवी भावों से अनुप्राणित करता है। प्राकृतिक वस्तु को वह कटी-छटी सीमाओं में नहीं देखता, वरन् उसका वायवीकरण (Ætherealization) कर देता है। तब किरण साधारण प्रकाश रेखा न

रह कर विकल विश्ववेदना की दूती बन जाती है:—

"किसी अज्ञात विश्व की विकल-वेदना दूती सी तुम कौन ?"

(प्रसाद जी)

छायावाद की अन्तिम सीढ़ी—जड़ में चेतनता या प्रकृति में मानवता के देखने के समान छायावाद की अन्तिम सीढ़ी पर पहुँच कर भावुक कवि सान्त और मूर्त प्रकृति में ही अनन्त और अमूर्त सत्ता की झांकी पाने लगता है। भारतीय एकात्मवाद के अनुसार विश्व उस विराट् का शरीर है। इस लिए इस का पत्ता पत्ता उस का परिचायक हो जाता है—'पत्ता पत्ता पता तेरा है दे रहा।'

"एक ही तो असीम उल्लास
विश्व में पाता विविधाभास,
तरल जलनिधि में हरित विलास
शान्त अम्बर में नील विकास।"

छायावाद की कुछ विशेषताएं:—

(१) आत्म-प्रकाशन या आत्माभिव्यक्ति की ओर अधिक ध्यान दिया जाता है। फलतः भाव की प्रगाढ़ता स्वयं आ जाती है।

(२) सत्य, शिव और सुन्दर के अतिरिक्त असत्य, अशिव और असुन्दर को छायावाद में कोई स्थान नहीं है। इस दृष्टि से छायावाद यथार्थवाद का विरोधी है। सुन्दरता के चित्रों में अतीन्द्रियता लाई जाती है, जिससे सामान्य भौतिक इन्द्रियां उसे भोग ही न सकें।

(३) लाक्षणिकता की प्रधानता:—प्रकृति और मानवता के तादात्म्य को अभिव्यक्त करने के अंग्रेजी ढङ्ग के लाक्षणिक

शब्दों का बहुत प्रयोग किया गया है। अन्योक्ति, वक्रोक्ति तथा प्रतीकों का भी सहारा लेना पड़ा है।

(४) प्रकृति के साथ रागात्मक सम्बन्ध दर्शाया जाता है।

(५) जीवन के प्रति दृष्टिकोण दुःख और निराशापूर्ण है। इसी लिए छायावाद में दुःख की साधना को कला माना जाता है। आंसू की खूब बाढ़ चलती है। आहों और सिसकियों की भरमार रहती है।

आलोचना—रीतिकाल की शृङ्गारिक कविता के एकदम विरोध में छायावाद का प्रादुर्भाव हुआ था। उस के अभिसार, चुम्बन और परिरम्भण की प्रतिक्रिया ही छायावाद में स्वाभाविक थी, परन्तु छायावाद में वही शृङ्गार रूपान्तरित होकर प्रविष्ट हुआ। प्रत्यक्ष रूप-श्रीसम्पन्ना नारी को तो शृङ्गारक्षेत्र में कोई स्थान न मिला, परन्तु लता-विटप अथवा शैफाली और पवन का संयोग विलास सूक्ष्मता से वर्णन किया गया। इसी लिए रामचन्द्र शुक्ल ने छायावाद को "कायावृत्तियों का प्रच्छन्न पोषण" बताया है।

प्रसाद जी की कामायनी से कुछ उद्धरण देखिए:—

(१) "सिन्धु सेज पर धरा बधू अब,
तनिक संकुचित बैठी थी,
प्रलय निशा की हलचल स्मृति में,
मान किए सी ऐंठी सी।"

(२) "फटा हुआ था नील वसन क्या ओ यौवन की मतवाली।
देख अकिंचन जगत् लूटता तेरी छवि भोली भाली॥"

यद्यपि उक्त दोनों पद्यों में 'धरा' और 'रात' का वर्णन है परन्तु समालोचक आँखें साल पर्दों को फाड़ कर छायावादी

कवि की चित्तवृत्ति को स्पष्ट पढ़ने से नहीं मान सकती है। इस के अतिरिक्त छायावाद पर अस्पष्टता, अमौलिकता, अव्यवहारिकता, अनैतिकता और अशरीरिपन आदि के दोष भी लगाए जाते हैं।

छायावाद का भविष्य—छायावाद का भविष्य विशेष उज्ज्वल नहीं दीखता क्योंकि आज समाज और राष्ट्र की परिस्थितियां बदल गई हैं। छायावाद का आध्यात्मिक आधार अद्वैतवाद ही, ढह सा रहा है। हृदय का स्थान बुद्धि ने ले लिया है। बुद्धि और छायावाद का विरोध है। अब कविगण इस की ओर विशेष आकर्षित नहीं हो रहे हैं। हाँ प्रसाद, निराला, पन्त और महादेवी वर्मा व रामकुमार वर्मा जैसे प्रतिभाशाली कवियों की अमर छायावादी कृतियां इसे नामशेष होने से अवश्य बचाए रखेंगी।

रहस्यवाद

रहस्यवाद की अनुभूति—छायावाद की अगली दशा रहस्यवाद है। जब छायावादी कवि प्रकृति दर्पण में मानवता या विराट का प्रतिविम्बमात्र देखता है तो वह दर्शन या वर्णन छायावाद और जब वह प्रकृति से तादात्म्य स्थापित करता उसी में ही लीन हो जाता है तब वह अनुभव रहस्यवाद के अन्तर्गत आता है। कबीर ने ठीक ही कहा है—

"तू तू करता तू भया, मुझ में रही न मैं।" जैसे निर्विकल्प समाधि में ध्याता, ध्येय और ध्यान की सुध ही नहीं रहती—

"ध्याता बिसरे ध्यान में ध्यान-लीन हो ध्येय", रहस्यवाद में भी वैसी ही तादात्म्य अनुभूति की गाढ़ता होती है।

परिभाषा—(१) "आत्मा और परमात्मा के घनिष्ठ सम्बन्धों का भावातिरेक मे वर्णन करना ही रहस्यवाद है।"

(२) "सान्त और अनन्त तथा ससीम और निःसीम का मिलन ही रहस्यवाद है।"

(३) "आत्मा की उन अन्तर्हित प्रवृत्तियों के प्रकाशन को रहस्यवाद कहते हैं जिनके द्वारा आत्मा परमात्मा से अपने प्रेम की अमूल्य निधि लेकर मिलता है।

(४) "जिस प्रकार प्रकृति की गोचर सीमाओं को पार कर उसमें दृश्यमान भौतिकता की अपेक्षा एक अलौकिक अगोचर मानवी भावुकता के दर्शन करने की प्रवृत्ति को छायावाद कहते हैं, उसी प्रकार 'दृश्य सम्बन्धों से परे लोकोत्तर सत्ता के एक-भावात्मक सम्बन्ध स्थापित करने की प्रवृत्ति को रहस्यवाद कहते हैं।"

(गुलाबराय एम० ए०)

स्पष्टीकरण—यदि हमें शब्दों के हेर फेर में न पड़ कर रहस्यवाद का सीधा और संक्षिप्त सा स्वरूप बताना हो तो कह सकते हैं कि 'जीवात्मा और परमात्मा के मिलने' या 'इन दोनों के एक हो जाने के सम्बन्ध को रहस्यवाद कहते हैं। श्री गुलाबराय की परिभाषा में रहस्यवाद की परिभाषा के साथ-साथ उसका छायावाद से अन्तर भी बताया गया है। उसके अनुसार—

(१) किसी प्रकृति के पदार्थ का भौतिक सीमा के अन्दर वर्णन प्रकृति-वर्णनमात्र,

(२) प्रकृति की भौतिक वस्तुगत सीमाओं को पार कर

उसमें मानवता देखना छायावाद, और

(३) विश्वभर के सभी सम्बन्धों से परे उस अदृष्ट सत्ता (परमात्मा) से ही एकता का सम्बन्ध जोड़ना रहस्यवाद कहाता है।

इस जीव और परमात्मा का एकभावात्मक सम्बन्ध 'अद्वैत-वाद, के 'सोऽहम्' सम्बन्ध के समान है। जैसे ज्ञान द्वारा द्वित्व बुद्धि के नाश के उपरान्त जीवात्मा और परमात्मा में अन्तर नहीं रहता, इसी प्रकार रहस्यवादी अपनी भावुकता से अपने और परमात्मा में अन्तर की अनुभूति नहीं करता वरन् एकात्म-कता की अनुभूति करता है। 'नश्वर स्वर से कैसे गाऊँ आज अनश्वर गीत ?' के असमञ्जस में रहते हुए भी वह मिलने की अभिलाषा सफल या असफल रूप से प्रकट कर सकते हैं—

"मेरे जीवन में एक बार तुम देखो तो अनुपम स्वरूप,
मैं तुम में प्रतिबिम्बित होऊँ, तुम मुझ में होना अनूप।'

(महादेवी)

नाम का कारण—सान्त जीव जब अनन्त से एकात्म-कता की अनुभूति करता है तब उसके लिये वह अलौकिक अनुभव, अनुभव का ही विषय बनता है वर्णन का नहीं। गूंगे को शक्कर खाने को दो और पूछो "कैसा स्वाद है ?" बिचारा मूक प्राणी मुस्कराहट मात्र से ही तो अनुभव प्रकट कर सकता है, शब्द कहाँ से लाए ? इसी प्रकार रहस्यवादी उस ब्रह्ममिलन के सम्बन्ध को शब्दों द्वारा या तर्क द्वारा प्रकट करने में असमर्थ है। सीमित ज्ञान व शक्ति वाला प्राणी सूक्ष्म और निस्सीम का ज्ञान व अनुभव व्यञ्जनाशक्तिविहीन शब्दों द्वारा कैसे कर सकता है ? उसके लिये तो वह अनुभव गूंगे की शक्कर के समान

अनुभवमात्र का विषय है, वर्णन का नहीं। परन्तु वर्णन करने की कुछ चेष्टा अवश्य करता है जिसका परिणाम यह होता है कि वह अनुभव स्पष्ट नहीं हो पाता वरन् अन्त तक रहस्य ही बना रहता है। दूसरे, कूएं का मेंढक जैसे समुद्र की महानता का अनुमान नहीं लगा सकता, इसी प्रकार सीमित ज्ञान वाले को उस निस्सीम का ज्ञान स्पष्ट और पूर्ण नहीं हो सकता। जब निजी बोध व ज्ञान ही धुंधला, अधूरा और अनिश्चित-सा है तब उस बोध, ज्ञान व अलौकिक सम्बन्ध की अनुभूति का वर्णन तो और भी अस्पष्ट और भेद भरा होगा। इसी लिये इस सब गड़बड़ झाले को रहस्यमय होने के कारण रहस्यवाद कहते हैं।

रहस्यवाद की भाषा—अनुभूत वस्तु का भी भाषा द्वारा वर्णन करना बड़ा कठिन कार्य है, फिर सूक्ष्म तथा अतीन्द्रिय सत्ता के सम्बन्ध के अनुभव का तो कहना ही क्या? परन्तु तब भी वह अटपटी भाषा में कुछ कहता है, संकेत करता है। बहुधा जो कुछ कहता है उस अनुभव और लाक्षणिक भाषा के प्रयोगों से लोग परिचित नहीं होते। वे उसे पागल का प्रलाप समझते हैं, परन्तु वह कब अपने अलौकिक अनुभव को पागल का प्रलाप स्वीकार कर सकता है—

'दुनियाँ कहती मुझे पागल।
मैं कहता हूं दुनियाँ पागल॥

रहस्यवादी अनुभव की गम्भीरता और भाषा की असमर्थता समझता है। इसी लिये वह संकेत, रूपक, अन्योक्तियों और लाक्षणिक भाषा का प्रयोग कर निर्वाह किया चाहता है—

सांकेतिक भाषा के लिए कबीर का निम्नलिखित पद देखिए :—

'काहे री ! नलिनी तू कुहम्लानी, तेरे ही नाल सरोवर पानी।
जल में उपजी, जल में वास, जल में नलिनी तोर निवास ॥'

जल से परमात्मा और नलिनी से जीव लिए गए हैं। आत्मपरमात्म मिलन अधिकतया पतिपत्नी रूपकों द्वारा व्यक्त किया जाता है—

चकई री ! चल चरण सरोवर,
जहां न प्रेम वियोग।'

यहां चकई आत्मा और प्रभुचरण सरोवर है। इसी प्रकार "मैं राम की बहुरिया" में कबीर का रूपक है।

रहस्यवाद की सीढ़ियां—विद्वानों ने रहस्यवाद की तीन स्थितियां बताई हैं। अपने अन्तिम मिलन रूप ध्येय के लिए उन्हें क्रमशः पार करना होता है। प्रथम स्थिति वह है जब वह अपनी आत्मा के साथ उस अनन्त शक्ति का सम्बन्ध स्थापित करने के लिए उन्मुख होता है।

द्वितीय अवस्था वह है जब आत्मा परमात्मा के सहवास-अनुभव के सुफल स्वरूप उसे पार करने लगती है।

तीसरी अवस्था रहस्यवाद की चरम साधना की स्थिति है। इस अवस्था में आत्मा तथा परमात्मा की भिन्नता जाती रहती है।

अथवा

प्रथम स्थिति में रहस्यवादी को प्रकृति किसी (परम सत्ता) की ओर संकेत करती सी दृष्टिगोचर होती है। उसे यही लगता है मानो वह कुछ खो सा बैठा है, पर क्या ? इसका उसे निश्चय नहीं होने पाता। दूसरी स्थिति वह आती है जिसमें

उसे उसकी सत्ता का निश्चय हो जाता है। वह उसको पाने के लिए अधीर हो उठता है, छटपटाता और विरह ज्वाला में जलता है। तीसरी अवस्था में आत्मा और परमात्मा का सुखद मिलन हो जाता है। इस ही एकीकरण की ओर इस पद्य में संकेत किया गया है—

हां, सखि ! आओ बांह खोल हम
लग कर गले जुड़ा लें आज
फिर तुम तम में मैं प्रियतम में
हो जाएं द्रुत अन्तर्धान ॥

हिन्दी में कबीर, जायसी, प्रसाद, पन्त, निराला, महादेवी वर्मा और राम कुमार वर्मा छायावादी और रहस्यवादी कवि हैं।

सूर सूर तुलसी शशी

हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल के अगाध काव्य सागर में भक्त शिरोमणि सूरदास तथा तुलसीदास प्रकाश-स्तम्भ की भाँति अपनी ज्योति से मार्ग आलोकित कर रहे हैं। सगुण भक्ति का आधार लेकर दोनों महानुभावों ने अपने सुन्दर भावों से काव्य कुञ्ज को सुशोभित किया है। दोनों का लक्ष्य एक है किन्तु मार्ग भिन्न। भारत के सुप्त प्राणियों में ईश्वरभक्ति का आधार लेकर अगाध आत्मविश्वास उत्पन्न करना तथा हँसते-हँसते दुःखी जीवन को भी सुखी बना लेने की शिक्षा देना ही इनका लक्ष्य था। लीलापुरुषोत्तम कृष्ण के पावन चरित्र को लेकर सूरदास की सुरीली तान ने लोगों को मुग्ध कर दिया तो रघुकुल कुमुद मर्यादापुरुषोत्तम राम के पावन चरित्र का मानस

में गुणगान कर भक्त तुलसीदास ने लोगों में अगाध विश्वास, गुरुजनों पर श्रद्धा, कर्तव्य पालन, भ्रातृ प्रेम, पत्नी कर्तव्य तथा लौकिक जीवन के प्रायः समस्त अंगों का इतना सुन्दर विश्लेषण किया कि आज भी प्रत्येक भारतीय मानस को अपना आदर्श ग्रन्थ मानता है और राम राज्य उसका आदर्श राज्य है। सूरदास तथा तुलसीदास के आध्यात्मिक दृष्टिकोण का विचार न करते हुए यदि उनके काव्यों के साहित्य सौष्ठव पर ही विचार करें तो निःसन्देह दोनों महानुभाव महाकवि के स्थान से भी उच्च ही रहते हैं। उनकी रचनाओं को दृष्टिकोण में रखते हुए कई व्यक्तियों ने कुछ दोहों की रचना की है जिनमें साहित्य क्षेत्र में उनका स्थान निर्धारित करने की चेष्टा की है।

सूर सूर तुलसी शशी, उडुगण केशवदास।
अन्य कवि खद्योत सम, जहँ तहँ करत प्रकास॥

के आधार पर सूरदास को सूर्य तथा तुलसीदास को चन्द्रमा का स्थान देकर हमारे दृष्टिकोण से तो कवि ने पक्षपात ही किया है। यद्यपि इसके समर्थक सूरदास के अलौकिक गीति-पद्यों के आधार पर इस कथन की पुष्टि करते हैं किन्तु फिर भी तुलसीदास का गीति-काव्य उपेक्षित नहीं रक्खा जा सकता। इस कथन के पुष्टिकर्त्ता संगीत को साहित्य का प्राण मान कर सूर सागर के सम्मुख अन्य समस्त साहित्यिक रचनाओं को उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं। यदि हम उनके ही दृष्टिकोण से भी तुलसीदास की रचना को देखें तो विदित होगा कि तुलसीदास की गीतावली, तथा विनयपत्रिका में संगीत का अभाव नहीं है।

तुलसीदास का क्षेत्र व्यापक है। तुलसीदास ने लौकिक

जीवन के प्रत्येक अंग की सुन्दर व्याख्या की है तथा आदर्श उपस्थित किए हैं। सूरदास का क्षेत्र तुलसीदास की भाँति सर्वांगीण नहीं अपितु संकुचित है। तुलसीदास ने राम के लोकरञ्जनकारी स्वरूप में ही शील, शक्ति तथा सौन्दर्य इन तीनों का सुन्दर समन्वय किया है जबकि सूरदास कृष्ण की बाल्य क्रीड़ा में ही व्यस्त रहते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि जिस क्षेत्र को सूरदास जी ने अपनाया उसके वे एकमात्र अधिपति हैं। उनकी समानता पर विश्व का कोई भी कवि नहीं रक्खा जा सकता। किन्तु फिर भी तुलसीदास की भाँति सर्वांगीणता का उनमें अभाव है। तुलसीदास ने निराश भारत में उस समय आशा का संचार किया था जब उस पर राजनैतिक, धार्मिक तथा नैतिक अंधकार की घटाएं मंडरा रही थीं। हम इस महान कवि की प्रशंसा किए बिना नहीं रह सकते। तुलसीदास की कविता पर निम्नलिखित कविता अच्छा प्रकाश डालती है।

वन्दे जग गुरु तुलसीदास
धर्म कर्म संस्कृति के रक्षक निबिड़, निराशा की मृदु आश
भूल चुकी भारत की जनता, जब अपने पुरुखों का ज्ञान
रहा न उनको जब पुरुखों के, अतुलनीय कर्मों का ध्यान
तब तुम ही तो धर्म दूत बन, शुभ पथ का लाए आभास
वन्दे जग गुरु तुलसी दास
पन्थ वाद गोरख धन्धों में, जीर्ण प्राण जब क्षीण हुए
प्रबल कर्म की व्यर्थ चेष्टाओं से धिर संकीर्ण हुए
विस्तृत मार्ग बताया तुमने चमक रही जिस पर शुभ आस
वन्दे जग गुरु तुलसीदास
वाद विरोध की घटा घुमड़कर अंधकार काला लाई

अलख शैव गोरख पन्थों ने वैमनस्यता अपनाई
विश्व राममय बतला तुमने सब को दिया अमर विश्वास
वन्दे जग गुरु तुलसीदास
कहीं शक्ति पूजक पशु बलि ही जीवन ध्येय बना बैठे
कहीं शील-मय बने अहिंसक अकर्मण्य जन बन बैठे
शील शक्ति सौन्दर्य समन्वय कर तुमने नव किया प्रकाश
वन्दे जग गुरु तुलसीदास
यही नहीं साहित्य सृजन भी, उच्च कोटि का है गुण युक्त
अर्थ महत्ता, उपमा, रूपक युक्त और दोषों से मुक्त
अन्य जगत् के कवि कविता में पा न सके तुमसा आभास
वन्दे जग गुरु तुलसीदास
हे आचार्य दार्शनिक भावुक कवि गुरु शत शत तुम्हें प्रणाम
रुग्ण जगत् को मानस देगा युग २ तक औषध का काम
और निराशा में चमकेगी इससे युग युग तक मृदु आश
वन्दे जग गुरु तुलसीदास ॥

('प्रेरणा' से)

उपर्युक्त विशेषताओं के आधार पर तुलसीदास को निःसन्देह सूर्य का स्थान दिया जा सकता है और हम कह सकते हैं कि—

तुलसि सूर शशि सूर है उडुगण केशवदास ।
अन्य कवि खद्योत सम, जहँ तहँ करत प्रकास ॥

आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल के आधार पर भी तुलसीदास का स्थान ही उच्च रहता है तुलसीदास ने संसार के सम्मुख एक ऐसा आदर्श ग्रन्थ उपस्थित किया है जिससे शिक्षा ग्रहण कर मनुष्य आज भी विपत्ति में धैर्य धारण करता है, दुःखों में मुस्कराता है, कर्तव्य का पालन करता है, सत्य की उपासना

करता है, बुराई से घृणा करता है और सन्मार्ग पर अग्रसर होता है।

सूरदास की रूप माधुरी का माधुर्य, मुरली माधुरी की मादकता, विनय की विनम्रता, भ्रमर गीत की वाग्विदग्धता तथा साहित्य लहरी की साहित्यक सहृदयता यद्यपि अद्वितीय है किन्तु फिर भी उनकी तूलिका केवल कृष्ण के चांचल्य और गोपियों के विरह का वर्णन करने में ही उलझ जाती है, भागवत के दशम स्कन्ध का ही सूरदास जी ने विशद वर्णन किया है उनका नायक राधिकाहृदयेश्वर गोपाल कृष्ण ही है, द्वारिकाधीश कृष्ण नहीं। राधा तथा कृष्ण के लौकिक प्रेम में उच्च दार्शनिकता का सफल वर्णन कवि की विशेषता है।

तुलसीदास जी का नायक अवधेशकुमार राम है। राम के बाल्य वर्णन से लेकर राज्यसञ्चालन तक प्रायः जीवन की सारी घटनाओं का वर्णन किया है। धनुष भंग, वनगमन, राम रावण युद्ध, राज्याभिषेक आदि अवसरों के सुन्दर वर्णन के साथ २ प्रायः समस्त रसों का साङ्गोपाङ्ग वर्णन हुआ है। सूरदास जी का प्रमुख रस शृङ्गार और वात्सल्य ही है किन्तु तुलसीदास जी की रचनाओं में प्रायः नव ही रसों का सफल दिग्दर्शन हुआ है। सूरदास जी ने पद्य रचना की है तथा कुछ दोहे भी उनके उपलब्ध होते हैं; किन्तु तुलसीदास ने चौपाई, दोहा, सोरठा, सवैया, घनाक्षरी, पद, छप्पय आदि अन्य कई छन्दों का प्रयोग किया है। उनका मानस "नाना पुराण-निगमागमसम्मतं" रचना है। तुलसीदास जी की दार्शनिक विचारधारा का विनयपत्रिका में सुन्दर प्रस्फुरण हुआ है।

इस प्रकार कुछ तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर हमें

स्पष्ट विदित हो जाता है कि कौन महानुभाव किस स्थान पर सुशोभित होना चाहिए ! यदि वास्तविकता से हम विचार करें तो तुलसीदासजी का ही स्थान सूरदासजी से कुछ उच्च है किन्तु सूरदासजी का महत्त्व भी उपेक्षणीय नहीं।

हिन्दी भाषा का विकास

जब कोई भी भाषा साहित्यिक रूप धारण कर लेती है तो वह जन साधारण की पहुँच के बाहर होकर कुछ विशिष्ट व्यक्तियों के समुदाय में ही प्रधानता पाती है। जन साधारण के विचार विनिमय के लिए तो एक नवीन भाषा जिसका रूप साहित्यिक भाषा का ही एक विकृत (विकसित) रूप है प्रचलित हो जाती है। भाषाओं के इस प्रकार के विकार को ही भाषा-तत्ववेत्ता 'भाषा का विकास' नाम से सम्बोधित करते हैं।

हमारी हिन्दी भाषा भी किसी भाषा का विकसित रूप ही है। हिन्दी भाषा संस्कृत, पाली या कुरान की भाषा की भाँति अपना ईश्वरोक्त उद्गम रखने का दावा नहीं करती अपितु स्पष्ट रूप से अपनी जननी भाषाओं पर प्रकाश डालती है।

एक समय था जब भारत में अपभ्रंश भाषाओं का दौर-दौरा था। अपभ्रंश भाषाएं अपनी पूर्व भाषाओं का ही विकसित रूप थीं। यदि इन अपभ्रंश भाषाओं के साहित्य को आप अध्ययन करें तो प्रतीत होगा कि जो हिन्दी आज हम बोलते हैं वह अपभ्रंश से बहुत कुछ साम्य रखती है। उदाहरण के लिए अपभ्रंश के दो पद्य देखिए—

भल्ला हुआ जो मारिआ बहिनि म्हारा कंतु।
लज्जे जंतु वयंसिअहि जेहिं भाग्गे घर एंतु॥

सुरतरु सुरही परस मणि, नहिं वीरेस समाण।
ओ वक्कल अरु कठिन तनु, ओ पसु ओ पाषाण॥

उपर्युक्त पद्य का यदि हम वर्तमान हिन्दी अनुवाद भी देखें तो प्रतीत होगा कि कितने अल्प प्रयास से यह अपभ्रंश पद्य हिन्दी पद्य में परिवर्तित हो जाता है।

भला हुआ जो मरे (युद्धमें), बहिन हमारे प्राण धार
समवयस्क सखियों में लज्जित, होती यदि घर आते रहा॥

"विकास भाषा का जीवन है और सम्मिश्रण उसका स्वभाव"। इस दृष्टि से प्रायः समस्त भाषाएँ विकसित होती हैं और एक दूसरे से प्रभावित होती हैं। किन्तु हमारी हिन्दी भाषा के जन्म तथा विकास में इन आवश्यक नियमों के अतिरिक्त कुछ अन्यान्य बातें भी हैं जिनके कारण समय समय पर इस भाषा ने कई प्रकार के आरोहावरोह देखे हैं।

ईसा की सातवीं सदी में सिन्ध पर मुसलमानों ने आक्रमण कर दिया था और भारत की उस आर्य संस्कृति ने जिसने हूण, शक, कुशन आदि अनेक जातियाँ देखीं थी, उनसे संपर्क बढ़ाया था और सदा के लिए अपने विशाल उदर में बिलीन कर लिया था, अबकी बार ऐसी जाति से मेल किया जिसने अपना रंग इस पर चढ़ाना आरम्भ किया। सिंध का आक्रमण तो लोग भूल गए किन्तु यही जाति ग्यारहवीं सदी के पश्चात इस जोर के साथ भारत में आई कि जिसके वेग को रोकना भारतीय वीरों के लिए असम्भव हो गया और ये लोग भारत के शासक बन बैठे। इन लोगों के लिए देश की प्रचलित भाषा एक विचित्र जन्तु की भाँति थी और देश के निवासियों से अपना विचार विनिमय करने के लिए इन्हों ने एक नवनी प्रकार की भाषा

को बोलना प्रारम्भ किया जिसमें कुछ प्रभाव अपनी निजी भाषा का भी था। और इसही भाषा का नाम इन्होंने हिंद की भाषा होने के कारण हिन्दी रक्खा जिसका उदाहरण खुसरो की भाषा में स्पष्ट रूप से मिलता है।

एक कहानी मैं कहूं, तू सुनले मेरे पूत।
बिना पाँव के उड़ गया, बाँध गले में सूत॥

भाषाओं के इतिहास का अध्ययन करने से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि प्रायः सारी भाषाओं में साहित्यक रचना पहले पद्य से ही प्रारम्भ होती है। हिन्दी में पद्य रचना का नमूना हम खुसरों की इन दो पंक्तियों में देख चुके हैं। यदि यही भाषा निर्बाध गति से प्रगति करती रहती तो संभवतः आज हमारी हिन्दी का रूप कुछ और ही होता किन्तु कुछ राजनैतिक, सामाजिक और विशेष रूप से धार्मिक कारणों से साहित्यिक भाषा ने ब्रजभाषा को अपनाया और उसमें पद्य तथा गद्य दोनों में रचना हुई और एक ऐसा समय आगया कि ब्रज भाषा का साहित्य सर्वोच्च साहित्य बन गया।

हिन्दी भाषा में गद्य रचना हमें लगभग १५वीं शताब्दी से मिलती है। उस समय की गोरखनाथ की रचना का नमूना इस प्रकार है,

"स्वामी तुम्ह तो सतगुरू, अम्हे तो सिष सबद एक पूछिवा।
दया करि कहिवा, मानिन करिबा रोस"

इसके उपरान्त सत्रहवीं शताब्दी में "वैष्णवों की वार्ता" नामक पुस्तकों में हमें ब्रज भाषा का नमूना मिलता है। अकबर के समय में गंग कवि ने भी गद्य लिखा था और जहांगीर के समय की जटमल की लिखी हुई गोराबादल की कथा भी गद्य

रचना ही है। यह सब कुछ होते हुवे भी गद्य रचना इतनी प्रगति नहीं कर सकी जितनी कि आज के युग में। उस काल में न ही तो कोई धार्मिक क्रान्ति करने वाला श्रेष्ट व्यक्ति ही बचा हुआ था जिसकी ओज पूर्ण भाषा से गद्य उन्नत होता। धर्म का प्रचार पदों और गीतों के द्वारा होता था और यही कारण है कि उस काल का पद्य-साहित्य विशेष उन्नत है। उस काल में कोई वैज्ञानिक उन्नति नहीं हुई थी जिससे लोगों की प्रकृति गद्यात्मक होती। उस काल के लोग तो काव्य रचना को ही महत्व देते थे और गद्य रचना को अपमान की दृष्टि से देखते थे।

इस प्रकार केवल पद्य ने ही उन्नति की और गद्य अपनी जीर्ण शीर्ण अवस्था में ही गाड़ी को धकेलता रहा। १६वीं सदी में कुछ वैज्ञानिक आविष्कार हुए और कुछ अंगरेजों ने अपनी भाषा तथा धर्म का प्रचार करने के लिए देश की प्रचलित भाषाओं का सहारा लिया जिसके फल स्वरूप हिन्दी भाषा ने खूब उन्नति की! धर्म का जोरदार प्रचार करने वाले ऋषि दयानन्द की कृपा से हिन्दी का गद्य उन्नत होने लगा। बंगाल में राजा राम मोहन राय की अध्यक्षता में ब्रह्म-समाज ने जोर पकड़ा। कलकत्ता के विद्यालय के अध्यक्ष डाक्टर गिल क्राइस्ट की कृपा से कुछ हिन्दी के लेखकों को प्रोत्साहन मिला और उस काल के चार लेखक सर्व प्रमुख हैं—रानी केतकी कहानी के लेखक इन्शा अल्ला खाँ, सुख सागर के लेखक सदासुखलाल, नासिकेतोपाख्यान के लेखक सदल मिश्र और प्रेम सागर के लल्लू लाल।

इसके पश्चात् तो हिन्दी के साहित्यिक क्षेत्र में एक आश्चर्य

जनक प्रगति हुई और तत्कालीन राजनैतिक तथा सामाजिक प्रभावों से प्रभावित होकर राजा लक्ष्मण सिंह तथा राजा शिव प्रसाद सितारे हिंद ने अपने अपने शुद्ध हिन्दी और साधारण हिन्दी के प्रचार के लिए अनथक परिश्रम किया। भारतेन्दु जी ने समन्वयात्मक मार्ग के द्वारा भगवती भारती के मन्दिर की वह सुन्दर सड़क बनादी कि जिस पर हजारों साहित्य सेवी चल पड़े।

भारतेन्दु काल में हिन्दी लेखकों ने साहित्य को तो सम्पन्न किया किन्तु उनकी रचना में कुछ कमियाँ रह गईं जिनके संशोधन के लिए महावीरप्रसाद द्विवेदी जी ने कमर कसी और आज हम हिन्दी का एक बहुत उन्नत रूप देखते हैं।

अब साहित्य की इस उन्नति के साथ साथ पद्य साहित्य भी खड़ी बोली में उन्नत होने लगा और आज का पद्य-साहित्य प्रायः वर्तमान काल की समस्त आवश्यकताओं से परिपूर्ण है। अंगरेजी शिक्षा के अत्यधिक प्रचार से पाश्चात्य साहित्य का बहुत कुछ प्रभाव भारतीय साहित्य पर पड़ा और छायावाद, रहस्यवाद, प्रगति वाद तथा प्रकृतिवाद नाम के कई रचना के स्कूल खुल पड़े। पाश्चात्य देशों में होने वाली क्रान्तियों की हवा भी हमारे देश के साहित्य को प्रभावित किए बिना नहीं रही और मजदूरों का प्रश्न, पूंजीवाद का विरोध तथा रोटीवाद स्पष्ट रूप से आज के साहित्य में झलकता है। गद्य तथा पद्य ही नहीं अपितु नाटक, उपन्यास, कहानी, एकांकी सभी क्षेत्रों में हिन्दी साहित्य अब उन्नत है। गद्य गीत तथा जीवनियाँ भी पर्याप्त संख्या में हिन्दी भाषा में लिखी जाती हैं। अंगरेजी भाषा में यात्राओं का वर्णन अधिक मिलता है। अब हिन्दी भाषा में भी बहुत से ऐसे ग्रन्थ लिखे जा चुके हैं जिनमें यात्राओं का

वर्णन है।

इस प्रकार प्रायः समस्त क्षेत्रों में हिन्दी भाषा में रचना होने लगी है। यदि प्रगतिका यही ढंग रहा तो निःसन्देह एक दिन हिन्दी भाषा विश्वभाषा बन जायगी और इसका साहित्य बहुत उन्नत होगा।

———

जनतन्त्र शासन

भूमिका—१. परिभाषा। २. उत्पत्ति। ३. लाभ। ४. हानियां। ५. उपसंहार।

मध्ययुग में जिस प्रकार विश्वभर में धर्म की दुन्दुभी ही सब जगह सुनाई देती थी, वैसी आजकल शासन की विभिन्न प्रणालियों की। आजकल धर्मभावना व्यक्तिगत और शासन-सम्बन्धी सिद्धान्त व नीति विशेष पूर्णरूप से सामाजिक बन गए हैं। पूर्ववर्ती युद्ध राजा राजाओं के विरोध के कारण होते थे, परन्तु अभी १९३९ का विश्वयुद्ध सिद्धान्तों का युद्ध था। आगे के युद्धों में तो देश का तनिक भी ध्यान न रख सिद्धान्तों का ही प्रमुख स्थान रहेगा। चीन, बर्मा आदि के गृहयुद्ध सिद्धान्तों के युद्ध हैं। आजकल प्रचलित शासन प्रणालियां मुख्यतः तीन चार हैं—(१) साम्यवाद (Communism), (२)समाजवाद (Socialism)(३) जनतन्त्रवाद (democracy) और अधिनायकत्ववाद (dictatorship)। साम्यवाद और समाजवाद में समता की मात्रा का ही अन्तर है। साम्यवाद पूर्णतः साम्य का पक्षपाती है और समाजवाद में समाज में थोड़ा बहुत तारतम्य रहता है। इन का विकास रूस और चीन

आदि पूर्वी देशों में हो रहा है। अमेरिका, इङ्गलैण्ड, फ्रांस उन के उपनिवेश तथा भारत व पाकिस्तान में प्रजातन्त्र या जनतन्त्र शासन-प्रणाली है। जर्मनी, इटली और स्पेन में अधिनायकत्व प्रणाली थी, अब युद्धोपरान्त स्पेन में ही यह नाममात्र के लिए रह गई है। आज का विश्व प्रख्यात साम्यवाद और जनतन्त्र-वाद प्रणालियों से शासित हो रहा है। इन्हीं के सङ्घर्ष की भविष्य में आशङ्का है।

जनतन्त्र की स्थापना तब होती है, जब किसी देश विदेश के लोग सुयोग्य और राजकीय कार्य में भाग लेने के इच्छुक हों, तथा देश के सारे प्रश्नों और उलझनों को सर्वसम्मति या बहुमत से अपने प्रतिनिधियों द्वारा सुलझाना चाहें। एब्राहम लिंकन ने प्रजातन्त्र की परिभाषा इस प्रकार की है—

"The government of the people, by the people, for the people."

अर्थात् 'जनता का, जनता द्वारा, जनता के लिए शासन। वास्तव में जनतन्त्रवाद और साम्यवाद की उत्पत्ति एक-सत्ताक राज्यों के जनता पर किए अत्याचारों की प्रतिक्रिया के रूप में हुई। फ्रांस और रूस के राजाओं के अत्याचारों को देख कर वहां लोगों ने राज-क्रान्तियां कीं और राजाओं को उलट दिया। अमेरिका में भी यही कुछ हुआ। जब प्रश्न राज्य संचालन करने का उपस्थित हुआ तो उसका सुझाव केवल यही निकला कि जनता के निर्वाचित प्रतिनिधि ही जनता के लिए विधान आदि का निर्माण करें। एक व्यक्ति को सर्वाधिकार देने के विषमय परिणाम को तो वे अनुभव कर ही चुके थे। बात भी ठीक थी। प्रजा जितना अपनी भलाई तथा उन्नति का विचार

स्वयं कर सकती है, उतना कोई व्यक्ति विशेष—राजा या अधिनायक—नहीं कर सकता। श्रीरामचन्द्र जैसे राजा और राम-राज्य जैसा राज्य आज नहीं लाया जा सकता।

'जनतन्त्र' शासन प्रणाली का उद्देश्य जनता का हित-साधन करना है। इसके लिए प्रजा का राज्य में हाथ होना आवश्यक है। प्रारम्भ में तो प्रजा के प्रत्येक व्यक्ति का राज्य में हाथ होता था पर इसमें कठिनाई उपस्थित हुई; क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति की हर काम में सम्मति लेना अव्यावहारिक है। इस कठिनाई ने 'प्रतिनिधि-व्यवस्था' (representative system) को जन्म दिया। आज कल के जनतन्त्र-राज्य वहां की जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों की परिषदों द्वारा संचालित किए जाते हैं इन सभाओं को विधान-परिषद् (Constituent Assembly) और धारासभा (Legislative Assembly) कहते हैं। विधान-परिषद् प्रथम देश का विधान-निर्माण करती है और धारा-सभा समय-समय पर आवश्यकतानुसार धाराओं (Acts) में संशोधन, परिवर्तन, व परिवर्धन आदि करती रहती है। इङ्गलैण्ड में हाउस ऑफ़ कॉमन्स और हाउस ऑफ़ लॉर्डज़ के नाम से साधारण जनप्रतिनिधि और लार्ड की दो सभाएं हैं। भारत जनतन्त्र में रियासतों के प्रान्तों में विलीन होने के कारण 'राजपरिषद्' भंग कर दी गई है और अब केवल एक ही सभा जिसे 'धारासभा' कहते हैं शेष है। इसमें जनता के ही सब प्रतिनिधि प्रान्तों की जनसंख्यानुसार निर्वाचित हो के आते हैं। विधान-परिषद् का कार्य लगभग समाप्त है अब धारा-सभा ही कार्य करेगी। भारत जनसंघ (Indian Union) में अमेरिका के समान संघ के प्रधान को विशेष शक्ति होगी। प्रान्तों में भी

इसी प्रकार की परिषदें होंगी जिनका वहां के प्रतिनिधियों से निर्माण किया जाएगा। केन्द्र और प्रान्त की परिषदों के जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि अपनी जनता का पूर्ण हित करने के लिए भरसक प्रयत्न करते हैं। प्रान्तों में प्रतिनिधि एक प्रधान मन्त्री निर्वाचित करते हैं जो अपना मन्त्रिमण्डल बनाता है। भिन्न २ अर्थ, शिक्षा यातायात, विदेशों से सम्बन्ध आदि के लिए अर्थमन्त्री, शिक्षामन्त्री आदि उत्तरदायी होते हैं। प्रधान-मन्त्री का उत्तरदायित्व इन सब शासन की शाखाओं के प्रति भी समान रूप से होता है। अपने मन्त्रित्व काल में वह जनता को अधिक से अधिक उन्नत करना चाहता है।

जनतन्त्र से मुख्य लाभ यह हैं कि इसमें शासन देश की उन्नति अवनति के लिए पूर्ण उत्तरदायी होता है। किसी व्यक्ति-विशेष का लाभ दृष्टि में नहीं रहता वरन् सारे देश, जाति और भिन्न २ जन-विभागों का सामूहिक रूप से! प्रत्येक व्यक्ति तथा विभाग प्रतिनिधि द्वारा अपने अधिकार की रक्षा कर सकता है विद्रोह या क्रान्ति की प्रजातन्त्र में कम सम्भावना है।

जनतन्त्र शासन में लोगों को राज्यकार्य के समझने तथा सहयोग देने की शिक्षा मिलती है। वे शासन को 'कोऊ नृप होउ हमें का हानि' की उपेक्षामयी दृष्टि से नहीं देखते, वरन् जिसके हाथ में उनकी शारीरिक, आर्थिक, सामाजिक उन्नति है उसकी त्रुटियों की कड़ी आलोचना द्वारा उसका सुधार करवाना अपना कर्तव्य समझते हैं। उस शासन में वे अपना हाथ रखते हैं, और प्रतिनिधियों द्वारा अपनी आवाज़ शासन-संचालक के कानों तक पहुँचाते हैं।

प्रजातन्त्र राज्य में जनता देशभक्त होती है, क्योंकि देश

उसका अपना है; शासक उसके निजी निर्वाचित प्रतिनिधि हैं, प्रत्येक राजकीय नियम या कार्य अपने देश की भलाई के लिए होता है। यह देश की प्रत्येक बात का ममत्व, देश के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध और प्रेम उत्पन्न करता है। यदि उसका देश अच्छा है तो उसके कारण, बुरा है तो उसके कारण। किसी एक पर दोषारोपण व्यर्थ है। समय आने पर प्रत्येक जनतन्त्र का व्यक्ति देश के लिए उच्च से उच्च त्याग करने को उद्यत रहता है।

इन लाभों के साथ जनतन्त्र शासन-प्रणाली में कुछ त्रुटियां भी हैं। शासन-सूत्र अशिक्षित, अयोग्य, अनुभव शून्य स्वार्थी बहुसंख्यकों के हाथ में जाने से देश उन्नत नहीं हो सकता। बहुमत ही इसमें मान्य समझा जाता है। बहुधा एक भी विद्वान् अनुभवी तथा विचारशील व्यक्ति किसी बात को अल्पज्ञ बहुसंख्यकों की अपेक्षा अधिक गम्भीरता से विचार व उस पर ठीक २ निर्णय दे सकता है, परन्तु केवल अल्पसंख्यक होने के कारण उसकी विद्वत्ता, अनुभव, दूरदर्शिता और व्यवहार-ज्ञान का लाभ देश को नहीं पहुँच सकता। साम्प्रदायिक झगड़ों के अवसर पर यदि मत-गणना होती तो महात्मा गान्धी निश्चय से उपेक्षणीय अल्पसंख्यकों में आते। परन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं कि देश या जाति के लिए बहुसंख्यकों का बहुमत से किया निर्णय ही हितकर होता।

दूसरे जनसाधारण का बुद्धि-विकास इतने उच्च स्तर तक नहीं पहुँचा होता कि वह देश और जाति के हित को दृष्टि में रखकर निजी स्वार्थ को अपेक्षाकृत कम महत्त्व दे। परिणाम यह होता है कि चाय पार्टी में और मदिरा आदि पिलाने में

उदारता प्रदर्शित करने वाले व्यक्ति को ही अधिक मत (Votes) मिलते हैं। नीति पर ध्यान रखकर अपना मत तो कोई ही सुलझा हुआ व्यक्ति देता है। यदि जनता को अधिक सुशिक्षित व देशभक्त बनाया जाय तो यह त्रुटि दूर भी हो सकती है। 'स्पैंकी' ने जनतन्त्र की आलोचना करते हुए कहा है—

"The government of the poorest, the ignorant, the most incapable, who are necessarily the most numerous." अर्थात् जनतन्त्र ऐसे मनुष्यों की सरकार है जो सबसे निर्धन, सबसे अनाड़ी, सबसे असमर्थ और अयोग्य हैं परन्तु संख्या में अनिवार्य रूप से सबसे अधिक है।

जनतन्त्र की देशी तथा विदेशी नीति सदा स्थायी नहीं होती। जिस दल के हाथ में शक्ति होती है, वह अपनी निजी नीति को निर्धारित कर कार्यान्वित करता है। सभी राजनैतिक दल अपनी २ आर्थिक उन्नति में रत रहते हैं। कला, विज्ञान और संस्कृति की उन्नति की ओर किसी का विशेष ध्यान नहीं जाता। साधारण बहुसंख्यक जन-प्रतिनिधि इनके महत्त्व को हृदयङ्गम भी नहीं कर पाते। जनतन्त्र में शक्ति मध्य श्रेणी के हाथों में चली जाती है। वे उच्च श्रेणी के लोगों को नए करों, नियमों या अन्य असुविधाओं द्वारा नीचे घसीटते हैं। उच्च व्यक्तित्व देश से लुप्तप्राय हो जाता है।

इन सब त्रुटियों के होते भी जनतन्त्र विश्व के बहुसंख्यक सभ्य लोगों की शासनप्रणाली का आधार बन चुका है, वहां की जनता दिन प्रतिदिन उन्नति की ओर अग्रसर हो रही है। कई दृष्टिकोणों से यह शासन प्रणाली अन्य प्रणालियों की अपेक्षा अधिक उपयोगी सिद्ध हुई है। इसकी पूर्ण-सफलता के

लिए प्रजा को सुचारु रूप से शिक्षित करना आवश्यक है। शिक्षित प्रजा ही योग्यतम, निष्पक्ष प्रतिनिधि चुन सकती है। इससे सारा देश क्रमशः उन्नत होता जाएगा। मेज़िनी (Mazzini) ने ठीक ही कहा है—

'The progress of all through all under the leading of the best and the wisest ? अर्थात् योग्यतम तथा सबसे अधिक प्रतिभाशाली व्यक्तियों के नेतृत्व में, सर्व-साधारण द्वारा सब की उन्नति ही जनतन्त्र का उद्देश्य है।

जीवनमरणसंघर्ष

विचार-तालिका :—

भूमिका:—१. जीवन और मृत्यु में सतत संघर्ष।

२. जीवन के चार चिह्न (१) विकास (Growth) (२) संगठन (मेल) (Unity) (३) आत्मसात्करण (Assimilation) (४) प्रतिरोध (Defence)।

३. व्यक्ति जाति और राष्ट्र का जीवन इन्हीं पर निर्भर।

४. उपसंहार।

"शोक भरे छन्दों में मुझ से कहो न जीवन सपना है।
जो सोता है वह है मृतवत् जग का रंग न अपना है॥"
जीवन सत्य, नहीं झूठा है, चिता नहीं इसका अवसान।
"तू मिट्टी, मिट्टी होवेगा उक्ति नहीं यह जीव-निदान॥"

रात दिन और सुखदुःख, जिस प्रकार परस्पर विरोधी युगल हैं इसी प्रकार जन्म मरण या जीवन और मृत्यु भी। इन दोनों का विश्व में सतत संघर्ष चल रहा है। अभी बच्चे का जन्म

हुआ ही है कि मृत्यु पहले ही आन खड़ी होती है। बच्चा मानो इस भेद को समझता है। संसार में आते ही उसकी प्रथम ध्वनि विलाप की होती है। अरस्तू ने ठीक ही कहा है 'Career begins with a cry' जीवन विलाप से प्रारम्भ होता है। डार्विन ने देखा बच्चा ४५वें दिन मुस्कराया, ५५वें दिन हंसा, पर रोया तत्काल ही। मानो बच्चा रोते विलखते थक गया और मृत्यु का आदी हो गया। उसने कहा कुछ मुस्कराना भी चाहिए, हंसना भी चाहिए। भावी जीवन में रोना धोना, हंसना खेलना यही कुछ होता है। न किसी को सतत सुख मिलता है न दुःख ही। सुख दुःख का चक्र क्रमशः ऊपर नीचे होता ही रहता है। कविवर कालिदास ने ठीक ही कहा है—

कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा।
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण॥

जीवन चाहता है मैं बना रहूँ, परन्तु काल प्रबल है। वह उसे यथासम्भव शीघ्र ही यहां से बिदा किया चाहता है। बलवान् से बलवान् भी प्राणी इस भयानक मृत्यु के सन्देश को पाते ही भय के मारे थरथर कांपने लगता है। वनराज सिंह, बाज, मगरमच्छ, ह्वेल मछली, विकट योद्धा सभी उस काल के सम्मुख नतमस्तक हो उसकी आज्ञा का पालन करते हुए जहां वह भेजे, चले जाते हैं। सारांश यह कि जो जन्मा है वह मृत्यु के झपटे से छूट नहीं सकता। इससे मृत्यु की जीवन पर विजय प्रमाणित हो जाती है। परन्तु इतने से ही जीवन हार स्वीकार करने को उद्यत नहीं हो जाता। वह उन हठी योद्धाओं के समान है जो पराजय के उपरान्त पुनः विजयी होने की अभिलाषा से प्रबल शत्रु पर बार २ आक्रमण करता है। मृत्यु से परास्त

होकर जीवन विजय का दूसरा मार्ग निकालता है। वह अपने स्थान पर मृत्यु से लोहा लेने के लिए अनेक प्रतिनिधि (सन्तानें) छोड़ जाता है। क्या हुआ यदि काल ने एक बड़ के विशाल-काय तरु को पुराना होने पर धराशायी बना दिया। उसके असंख्य बीजों में से प्रत्येक अपने पिता के आकार प्रकार को लेकर उसी प्रकार के वृक्षों की सृष्टि करता हुआ मृत्यु को ललकारता है। इसी प्रकार एक वीर्य का कीटाणु माता के गर्भ में प्रवेश करके, रज के साथ मिलकर अपने जैसे आकार, विचार और संस्कारों वाला व्यक्ति उत्पन्न करता है। इस प्रकार जब तक यह रक्त, आकार और संस्कारों के उत्तरोत्तर संचरित करने की परिपाटी चलती रहती है तब तक मृत्यु की विजय नहीं कहलाई जा सकती। यह मृत्यु और जीवन का संघर्ष सदा चलता ही रहता है।

प्रत्येक प्राणी को जीवन से बढ़कर कोई वस्तु प्यारी नहीं। वेद में प्रार्थना की गई है, हे प्रभु, हम 'जीवेम शरदः शतम्' 'सौ वर्ष पर्यन्त जीएं'। इतना ही नहीं, आगे कहा गया है—'भूयश्च शरदः शतात्' हम सौ वर्षों से भी अधिक जीवन धारण कर सकें। अब विचारणीय विषय यह है कि यह जीवन क्या वस्तु है और कैसे व्यक्ति, जाति या राष्ट्र जीवित रहते हैं और कब वे मरते हैं ?

आरण्यकोपनिषद् में जीवन की परमावश्यक चार बातें बताई गई हैं। उन ही के कारण व्यक्ति, समाज और राष्ट्र जीवित कहलाते हैं और उनके अभाव में मृत। वहां लिखा है—

१. ऋक्थं वै प्राणः—विकास (Growth) ही प्राण या जीवन है।

२. यजुर्वै प्राणः—मेल या संगठन ही जीवन है।

३. सामवै प्राणः—आत्मसात्करण (Assimilation) ही जीवन है।

४. क्षत्रंवै प्राणः—प्रतिरोध (Defence) ही जीवन है।

विकास या वृद्धि जीवन का सर्वप्रथम लक्षण है। जीवित प्राणी में विकास होता है। एक नन्हा सा वीर्य कीटाणु माता के गर्भ में विकसित होकर धरा पर आता है। यहां पर भी विकसित होते २ एक दिन विशालकाय भीम, हाथी अथवा ऊँट बन जाता है। बच्चे में जीवनी-शक्ति सब से अधिक है, इसी लिए उसका शारीरिक, बौद्धिक और मस्तिष्कसम्बन्धी विकास भी अन्य अवस्थाओं की अपेक्षा अधिक होता है। जीवित जाति और राष्ट्र भी पानी पर की तेल की बून्द के समान उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त होते चलते हैं। जब मनुष्य या जाति का विकास समाप्त हो जाता है तब उसका ह्रास प्रारम्भ होता है और एक दिन इस सतत ह्रास का परिणाम उस पर प्रबल काल या शत्रु का आक्रमण होना है।

दूसरा जीवन का चिह्न मेल या संगठन है। जीवित प्राणी में चेतना और अनुभूति की प्रधानता होती है। जब शरीर के किसी भी भाग में कोई कष्ट होता है तो सब अंग शिथिल पड़ जाते हैं। सारे अंगों का प्रयत्न उसकी सेवा शुश्रूषा करना ही रह जाता है। परन्तु जब कोई व्यक्ति अधरंग या पक्षाघात से पीड़ित होता है तो उसका अधरंग पीड़ित अंग चेतना विहीन होकर अन्य अंगों की पीड़ा को अनुभव नहीं कर पाता। ऐसा व्यक्ति आंशिक रूप से मरता जा रहा है और एक दिन पूर्णतया काल-कलवित हो जाएगा। वह राष्ट्र या जाति जहां संगठन

नहीं, सहानुभूति नहीं, परस्पर प्रेम नहीं अधिक देर तक जीवित नहीं रह सकते। भारतवर्ष बहुत पुराना देश है। कभी आर्यों ने, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के रूप में एक ही जाति के कर्तव्यानुसार विभाग कर परस्पर एकसूत्रता की लड़ी में बंधकर अद्भुत एकता का परिचय दिया था। परन्तु कालान्तर में इन्हीं वर्णों में स्वार्थभावना आने से परस्पर हीनोत्कृष्ट समझने के घातकभाव समाविष्ट हुए। प्रत्येक वर्ण परस्पर ईर्ष्यालु होता गया। परिणाम यह हुआ कि एक-एक करके मुट्ठी भर यवनों ने यहां के राजाओं को परास्त कर अपनी सत्ता स्थापित की। उसके अनन्तर यही दशा अंग्रेज़ों ने की। अब भी यहां का व्यक्ति सहानुभूति शून्य हो गया है। मुसलमानों में या अंग्रेज़ों में जितना परस्पर प्रेम और सहानुभूति दृष्टिगोचर होते हैं हम में नहीं। स्वराज्य और सत्ता बनाए रखने के लिए संगठन परम आवश्यक है। दुर्बल भी संगठित होकर शत्रु के लिए अभेद्य दीवार खड़ी कर सकते हैं! रहीम कहते हैं—

सबहि अबल मिलि बल करें, करैं जो चाहे सोय।
तिनकन की रसरी करी करी निबन्धन होय॥

तीसरे वह व्यक्ति, समाज या राष्ट्र जीवित रह सकता है जिसकी पाचन शक्ति ऐसी तीव्र हो कि वह जो कुछ खाए उसे आत्मसात् कर सके अर्थात् खाए हुए को अपने शरीर का अंग बना सके। दस्त या अतिसार की अवस्था में व्यक्ति जो कुछ खाता है उसे रूपान्तरित कर अपने शरीर का अंग नहीं बना सकता। दूध, मक्खन, रबड़ी, मलाई आदि जो भी कुछ वह खाता है ज्यों का त्यों निकल जाता है। यदि यह दशा अधिक देर तक रहे तो डाक्टर कह देते हैं, यह व्यक्ति जी नहीं सकेगा।

जीवन के लिए अच्छी पाचनशक्ति का होना अत्यावश्यक है ताकि भोजन से रस, रक्त, मांस मज्जा हड्डी और वीर्य आदि बन सकें। जाति में भी इस पाचनशक्ति या आत्मसात् करने का सामर्थ्य अवश्य होना चाहिए। शक, हूण आदि यहां आए। आर्यों ने उनको ऐसा अपने में मिला दिया कि आज कोई नहीं जानता कि कौनसा हूण वंशज है और कौन शक आदि में से हैं। वृद्ध भारत की पाचनशक्ति बिगड़ी और अकबर जैसों को भी बीरबल सरीखे बुद्धिमानों ने गाय और गधे का सा अन्तर समझा कर अपने में मिलाने से मना कर दिया। परिणाम तब पराधीनता और अब पाकिस्तान का निर्माण हुआ। यदि हिन्दू जाति ने सुधार का चूर्ण सेवन कर यह पाचनशक्ति प्रचण्ड न की तो सात करोड़ असवर्ण हिन्दुओं और चार करोड़ मुसलमानों को पुनः उनका भाग देना पड़ेगा।

चौथा जीवन का चिह्न प्रतिरोध या आत्मरक्षा की शक्ति है। शरीर के नाश के लिए अनेक प्रकार के रोग कीटाणु शरीर पर आक्रमण करते हैं। स्वस्थ व्यक्ति के शरीर के स्वास्थ्यप्रद कीटाणु संघर्ष कर उन रोग कीटाणुओं को मार देते हैं और जीवन बनाए रखते हैं। परन्तु दुर्बल प्राणी न शत्रु से ही और न संक्रामक रोगों से ही आत्मरक्षा करने में समर्थ हो सकता है। पद-पद पर उसको मृत्यु का भय लगा रहता है। इसी प्रकार वह राष्ट्र या जाति जिसके पास आत्मरक्षा (Defence) के साधन नहीं जीवित नहीं रह सकते, संस्कृति सभ्यता और स्वतन्त्रता की रक्षा नहीं कर पाते। यूनान, ईरान और भारत की संस्कृति, साहित्य और सभ्यता जब उच्चकोटि तक पहुँच चुकी थी तब बर्बर विजेताओं ने इनको परास्त कर इनके साहित्यिकों

और दार्शनिकों को दास बनाया। इसलिए किसी भी राष्ट्र को बचाने के लिए उसका क्षात्रबल या सैनिक शक्ति पर्याप्त उन्नत होने चाहिएं। पुराकाल में सब क्षत्रियों को सब प्रकार के शस्त्रास्त्रों का प्रयोग सिखाया जाता था। साथ ही अन्य ब्राह्मण आदि जातियां भी शस्त्रास्त्र चलाना सीखती थीं। द्रुपद से गुरुवर द्रोणाचार्य कहते हैं—

अग्रतश्चतुरो वेदान् पृष्ठतः सशरं धनुः।
इदं ब्राह्ममिदं क्षात्रं शास्त्रादपि शरादपि॥

अर्थात् मेरे सामने ये चार वेद हैं, पीछे पीठ पर धनुषबाण हैं। सामने ब्रह्म चिह्न और पीछे क्षात्रचिह्न को धारण करता हूँ। मैं शास्त्रार्थ और शस्त्रार्थ दोनों के लिए तैयार हूँ। राम लक्ष्मण के शस्त्रगुरु विश्वामित्र ऋषि थे। इससे स्पष्ट है कि तपस्वी भी आत्मरक्षा के लिए क्षात्रविद्या सीखते थे। इसलिए भारत को यदि गत कटु अनुभवों की पुनरावृत्ति नहीं करनी है, तो आधुनिक शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित सेना तैयार करनी ही होगी। शास्त्र व कला भी तभी पनपेंगे। 'शस्त्रेण रक्षिते राष्ट्रे शास्त्र-चिन्ता प्रवर्तते।'

ये ही चार बातें हैं जिनसे व्यक्ति, जाति और राष्ट्र अकाल मृत्यु से बच सकते हैं और जीवनकाल में सुख और शान्ति का अनुभव कर सकते हैं।

हमारी आज की समस्याएं

विचार-तालिका :—

१. भूमिका—स्वतन्त्रता प्राप्ति पर विविध समस्याएं उपस्थित। २. भारत विभाजन और रक्तपात ३. शरणार्थी समस्या ४. सम्प्रदाय-समस्या। ५. खाद्य-समस्या ६. शिक्षा-समस्या ७. काश्मीर-समस्या ८. उपसंहार।

शरणार्थी समस्याएं—बड़े संघर्ष और त्याग के उपरान्त शताब्दियों से दासता की शृंखलाओं में जकड़े हुए देश ने १५ अगस्त सन् १९४७ को प्रथमवार स्वतन्त्रता रवि की किरण देखी। देश के कर्णधार नेतागण बड़ी उत्सुकता से इस स्वातन्त्र्य फल को ग्रहण कर सबको इसके सुखद स्वाद से परिचित कराने को उत्सुक थे। परन्तु ज्यों ही वे इसे ग्रहण करने को ही थे कि कूटनीतिज्ञ अंग्रेजों ने जिन्ना की पीठ ठोंक कर देश के दो टुकड़े करवा दिए।

दो टुकड़ों की घोषणा के साथ ही हमारी विकटतम साम्प्रदायिक समस्या उपस्थित हुई। स्वतन्त्रता समारोह से कई सप्ताह और मास पूर्व ही धर्म-रक्षा की दुहाई दे देकर नरमेध की प्रचण्ड ज्वालाएं धधकने लगीं। अबोध शिशु, निरपराध अबलाओं, विवश बूढ़ों की भी युवकों के साथ ही अविवेकपूर्ण सामूहिक आहुतियां चढ़ने लगीं। तात्कालिक पिशाच लीलाओं के बीभत्स दृश्य को देख कर तो घृणा को भी घृणा आती थी, परन्तु आश्चर्य है कि धर्म को घृणा या दया न आई। अन्त में स्वतन्त्रता मिली।

अस्तु, बटवारा हुआ ही था कि शरणार्थी समस्या आ खड़ी हुई। अभी स्वतन्त्रतादिवस मनाया ही जा रहा था कि लाखों

शरणार्थी जिनका कोई न कोई अंग इस उद्देश्य से काटा गया था कि कोई कार्य न कर पाए तथा पाकिस्तान की स्मृति हरी रखे, पश्चिमी पाकिस्तान और पूर्वी पाकिस्तान से भारत में आने लगे। शीत ऋतु और नंगे भूखे शरणार्थी! अपेक्षा इसके कि देश रचनात्मक काम में जुटता, उसकी सारी शक्ति शरणार्थियों को लाने खिलाने, पिलाने, ओढ़ाने, और बसाने में लगी। किसी भी देश के इतिहास में इतनी बड़ी संख्या निर्वासित होकर शरणार्थी रूप में नहीं आई थी। अब देश के नेताओं और जनता को भली भान्ति विदित हुआ कि अंग्रेजों ने देश को सौंपने से पूर्व ही बिल्कुल खोखला कर छोड़ा है। वे भला इसे कब सुखी और सम्पन्न देखना चाहते थे? जैसे एक दर्सों भागों में कटा सेब जोड़ दिया जाय, और वह ऊपर से एक ही दृष्टि-गोचर होता हो, परन्तु छूते ही उसके टुकड़े २ हो जाते हैं, ऐसे ही देश की बागडोर सम्भालते ही भारत सरकार को विदित हुआ कि देश में तो विविध समस्याओं के कुछ छोड़ा ही नहीं गया। हां, तो शरणार्थी समस्या एक शिरःपीड़ाकारी समस्या है। शरणार्थी बस जायं तो आजीविका का क्या उपाय करें? यदि सब नौकरियां उन्हें दे दी जायं, तो शेष पढ़े लिखे युवकों की बेकारी की विकट समस्या फिर उठेगी। इसके लिए सरकार ने शरणार्थी केन्द्रों में कुछ उद्योग धन्धे भी चालू कराए हैं परन्तु ये पर्याप्त नहीं। सरकार ने भिन्न २ प्रान्तों में शरणार्थियों को कुछ कृषि दिलाने का भी प्रबन्ध किया है परन्तु ग्सारी उलझने तब भी नहीं सुलझती। आधे से अधिक समस्या उत्साही पुरुषार्थियों ने स्वयं हल की। उन्होंने सड़कों पर, ग्रामों में दुकान लगा कर अपना और बच्चों का पेट पाला और पाल

रहे हैं। परन्तु जबतक इनके स्थायी घरबार का सुप्रबन्ध नहीं हो जाता, तब तक इनको और सरकार को शान्ति नहीं मिल सकती।

पहिले शरणार्थियों का कुछ अच्छा या बुरा प्रबन्ध होने ही लगा था कि पूर्वी पाकिस्तान से फिर शरणार्थियों की बाढ़ उमड़ आई। हमारे प्रधान मन्त्री पं० जवाहर लाल नेहरू एक ही मास में दो बार कलकत्ता पहुँचे। गृह मन्त्री पटेल को भी परिस्थिति का सिंहावलोकन करने के लिए पश्चिमी बंगाल पहुंचना पड़ा। डा० श्यामाप्रसाद मुकर्जी ने केन्द्रीय सरकार से त्यागपत्र दे दिया। बंगाल की जनता का भारतीय सरकार के प्रति रुख कड़ा और आलोचना-पूर्ण होता जा रहा है।

सौभाग्यवश भारत और पाकिस्तान के मन्त्रियों, पं० नेहरू और लियाकत अली खान के मध्य हुए दिल्ली के अल्पसंख्यक लोगों के अधिकारों और रक्षाविषयक समझौते से आगे के लिए अधिक शरणार्थियों के आने की सम्भावना समाप्त हो गई है। यदि इस समझौते के अनुसार पाकिस्तान सरकार ने भारत के समान ही क्रियात्मक रूप से अल्पसंख्यकों की धनमाल व जान की रक्षा का दायित्व समझा तो दोनों सरकारें इस विकट समस्या को शीघ्र ही सुलझा पाएंगी। गृहविहीन शरणार्थी सुरक्षा का निश्चय होते ही अपने २ घरों को लौट जाएंगे।

इस समस्या का एक सफल हल यह भी है कि जिस प्रकार भारत विधान में भारत सरकार सेक्यूलर स्टेट (धर्मविहीन सरकार) घोषित की गई है इसी प्रकार पाकिस्तान भी करे। इसके लिये भारत सरकार को बाधित करना चाहिये। यदि भारत सेक्यूलर स्टेट घोषित न होता तो खालसास्तान, जैनस्तान, बुद्धस्तान आदि भागों में कालान्तर में देश को

बटना पड़ता।

खाद्य समस्या—खाद्य जीवन के लिये आवश्यक वस्तु है। धर्म, कर्म, सुव्यवस्था और नैतिकता तब तक रहते हैं जब तक व्यक्ति का पेट भरा है। "बुभुक्षितः किन्न करोति पापम्" (भूखा कौन सा पाप नहीं करता ? भूखे से तो भक्ति भी नहीं होती—"भूखे भक्ति न होय गोपाला, ये लो अपनी काठ की माला।" यद्यपि भारत कृषि प्रधान देश है तथापि अपने लिये अपेक्षित अन्न की मात्रा नहीं उपजा पाता। स्वतन्त्रता से पूर्व भी समय-समय पर गढ़वाल, बंगाल आदि भागों में दुर्भिक्ष के करुण दृश्य देखने पड़े। बंगाल का दुर्भिक्ष तो संसार के ऐतिहासिक दारुणतम दुर्भिक्षों में से एक था। अविभाजित भारत की अपेक्षा विभाजित भारत को दुर्भिक्ष की अधिक आशंका रहती है, क्योंकि भारत का अन्न-भण्डार—गेहूँ उत्पादक पश्चिमी पञ्जाब व सिन्ध और चावल पैदा करने वाला पूर्वी बंगाल पाकिस्तान में चले गए हैं। कृषि-जीवी, वहाँ के किसान जो शरणार्थी बन कर भारत आए हैं उनके पास पर्याप्त धन, धरती, तथा उपकरण नहीं कि भली भाँति कृषि कर सकें। अभी तो भारत सरकार विदेश से महंगे भावों अन्न मंगवा कर सस्ते भाव पर घाटे के प्रान्तों को देती है। परन्तु इससे जहाँ एक बहुत बड़ी धनराशि विदेश में जा रही है, वहाँ देश परमुखापेक्षी होता जा रहा है। इस अन्न समस्या को सुलझाये बिना देश कभी भी आत्मनिर्भर और महान् नहीं बन सकता। शान्तिकाल में तो बाहर से अन्न मंगवाने की व्यवस्था हो भी सकती है परन्तु अशान्तिकाल में तो भूखे मरने के अतिरिक्त कोई उपाय ही नहीं। यही कारण है कि रूस, जर्मन आदि देशों में पञ्च

वार्षिक योजनाओं में महत्त्वपूर्ण भाग कृषि-उपज बढ़ाने को दिया जाता था। रूस भारत के समान ही कृषिप्रधान देश है, परन्तु अन्तर इतना है वहाँ वैज्ञानिक ढंग से खेती होती है और यहाँ शताब्दियों पूर्व की अवैज्ञानिक प्रणाली से। परिणाम यह हो रहा है कि वहाँ खाद्य समस्याएं सुलझी हुई हैं और यहाँ उलझी हुई। भारत में इसके सुधार के लिये कृषि का एकत्रीकरण या पुनः विवेकपूर्ण वितरण और कृषि के अयोग्य भूभाग का वैज्ञानिक विधि से उपजाऊ बनाना तथा शीघ्रातिशीघ्र वैज्ञानिक विधि को अपनाना ही उपाय हो सकते हैं। भारत सरकार इस ओर ध्यान दे रही है। "अधिक अन्न पैदा करो" 'Grow more food' का खूब प्रचार किया जा रहा है परन्तु इस दिशा में प्रगति पर्याप्त नहीं कही जा सकती।

भारत के पुनर्जीवन के लिये अशिक्षितता का निवारण अनिवार्य है। भारत के समान जिन देशों ने निम्नतम स्तर से उठना प्रारम्भ किया, उन्होंने देशोद्धार के प्रोग्राम में शिक्षा को सर्वप्रथम स्थान दिया। भारत में आज १२॥ प्रतिशत के लगभग पढ़े लिखे हैं। रूस में १६१४ में २७ प्रतिशत शिक्षित थे, सन् १६३२ में ६१ प्रतिशत हो गये और १६३८ में शत प्रतिशत। इससे स्पष्ट है कि अन्य देशों ने जिस स्तर से उठना प्रारम्भ किया अभी हमें वहाँ पहुँचते भी समय लगेगा।

हमारी शिक्षा का उद्देश्य केवल लिखना-मात्र नहीं होना चाहिये वरन् उसके साथ-साथ शिल्प, व्यवसाय, श्रम, व्यापार व कलकारखानों की शिक्षा भी आवश्यक है। स्कूलों के साथ रूस के समान, कलकारखाने खोल देने चाहिएं। आश्चर्य की बात यह है कि भारत सरकार जहाँ अन्यान्य बातों में पर्याप्त

पूञ्जी लगा रही है वहाँ बजट में शिक्षा-विभाग के लिये पैसा और भी कम कर दिया। परन्तु शिक्षा के बिना देश जाग सकेगा इसमें सन्देह ही है।

काश्मीर समस्या भी भारत की जटिल समस्या है। अंग्रेजों ने रियासतों को पहिले ही केन्द्र में विलीन न करके स्वतन्त्र भारत के लिये एक जीवन मरण का प्रश्न हल करने को रख छोड़ा था। परन्तु इस युग के चाणक्य गृहमन्त्री सरदार बल्लभ भाई पटेल की नीतिनिपुणता और कार्यदक्षता के फलस्वरूप अन्य रियासतों का तो कहना ही क्या, हैदराबाद समस्या जैसी रियासती समस्याओं को हल कर छोड़ा। परन्तु काश्मीर समस्या एक ऐसी पहेली बन गई है जो बूझने में ही नहीं आती। वास्तव में काश्मीर की भौगोलिक स्थिति ऐसी है कि भारत उसे छोड़ नहीं सकता। भारत को रूस, अफ़गानिस्तान आदि देशों से स्थल मार्ग से मिलाने वाला भूभाग काश्मीर ही तो है। युद्ध काल में तो इसका महत्त्व और भी अधिक हो जाता है। यही कारण है कि भारत सरकार ने काश्मीर की रियासती सरकार के कबायली आक्रमण रोकने में सर्वथा अशक्त होने पर वायुशक्ति द्वारा आड़े काल में इसकी रक्षा की। सड़कें बनवाने, खाद्य सामान पहुंचाने, और सेना के वहाँ रखने आदि पर भारत का करोड़ों रुपया व्यय हो चुका है। पाकिस्तान इसको अपने में विलीन करने को उत्सुक है। राष्ट्र संघ में मामला विचाराधीन है। इस जटिल समस्या ने राष्ट्र संघ वालों को भी उलझा रखा है।

शेख अब्दुल्ला वहाँ का प्रधान मन्त्री है। वह काश्मीर को भारत में मिलाने के पक्ष में है। बहुसंख्यक काश्मीरी उसके

साथ हैं। इस लिये आशा है कि भारत या पाकिस्तान में से किसी एक के साथ विलीन होने के प्रश्न पर जब मत लिये जाएंगे तो भारत की ही विजय होगी।

भारत को स्वतन्त्रता मिले अभी अल्पकाल ही हुआ है। वह भी आपत्ति और संकट का काल था। तब भी भारत ने जिन समस्याओं को सुलझाया है उससे यही परिणाम निकाला जा सकता है कि उक्त समस्याएं भी शीघ्र ही हल हो जाएंगी और भारत एक सुमहान् शक्तिशाली राष्ट्र बन जाएगा।

गणराज्य-स्थापना-समारोह

२६ जनवरी को सूर्योदय के साथ भारत की राजधानी दिल्ली में भारतीय गणराज्य के रूप में नये युग का भी उदय हुआ। पिछली रात से आकाश मेघों से आच्छादित था, परन्तु ये मेघ न तो नये युग की किरणों का मार्ग अवरुद्ध कर सके और न ही जनता के अपरिमित हर्षोल्लास और उत्साह को ही मंद कर सके। सवेरे थोड़ी सी फुहार पड़ी, मानो स्वर्ग के वासियों ने नये गणराज्य के वासियों को आशीर्वाद दिया। राजधानी राष्ट्रीय झण्डों, झण्डियों, बन्दनवारों और राष्ट्रीय चित्रों से अंकित द्वारों से दुलहन की तरह सजी हुई थी। इस दुलहन की गोद में सोये हुए नागरिकों ने नयी आशाओं, उमंगों और स्वप्नों के साथ आँखें खोलीं और ये आँखें देश की अन्य कोटि-कोटि आंखों के साथ उस गवर्नमेंट हाउस की बलायें लेनी लगीं जहाँ भारतीय गणराज्य के पहले राष्ट्रपति ने अपने पद का भार संभाला था।

पिछले एक-दो दिन से राजधानी में सभी दिशाओं से दूर-पास के गाँवों, नगरों और विदेशों तक से अपार जन-समूह अनेक धाराओं की तरह प्रवेश कर रहा था। दिन की गति के साथ-साथ यह जनसमूह उत्तोत्तर बढ़ता जा रहा था और फिर एकाएक ओरछोरहीन अथाह समुद्र की तरह हर्षोल्लास से लहराता हुआ उमड़ पड़ा।

× × ×

१० बज कर १० मिनट पर बिगुलों की हर्षध्वनि और राष्ट्रीय गान की स्वरलहरी के साथ गवर्नमेंट हाउस के दरबार हाल में समारोह शुरू हुआ।

राष्ट्रपति के अंगरक्षक दरबार हाल की सीढ़ियों पर तथा भीतर पंक्तिबद्ध खड़े थे। हिन्देशिया के राष्ट्रपति डा० सुकर्ण तथा उनकी पत्नी भारत के राष्ट्रपति के सिंहासन के दाहिने बाजू प्रधान मन्त्री नेहरू जी के साथ बैठे थे और सरदार पटेल तथा अन्य मन्त्रीगण गद्दी के बायें बाजू बैठे थे। प्रथम पक्ति में विदेशों के राजदूत बैठे हुए थे।

ठीक १०-१५ पर राष्ट्रपति ने चूड़ीदार पायजामा, काली शेरवानी, गांधी टोपी पहने हुए तथा माथे पर 'कुमकुम' लगाये हुए ६ अंगरक्षकों के साथ दरबार हाल में प्रवेश किया। दरबार हाल में प्रवेश करने के पहले राष्ट्रपति को सैनिक सलामी दी गई। दरबार हाल में उनके प्रवेश करते ही बैण्ड ने राष्ट्रीय गीत बजाया। इसके पश्चात् दरबार हाल के दरवाजे बन्द कर दिये गये।

इसके पश्चात् अन्तिम गवर्नर-जनरल श्री राजगोपालाचार्य ने भारत को गणराज्य घोषित किया और संविधान सभा का

संदेश पढ़ कर सुनाया कि भारत के प्रथम राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद चुने गए हैं। इस पर राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद सिंहासन पर विराजमान हो गये। सिंहासन के पीछे खड़ी हुई भगवान् बुद्ध की विशाल मूर्त्ति सत्य, अहिंसा और शांति के मार्ग पर चलने वाले नये भारतीय गणराज्य के राष्ट्रपति को मानों आशीर्वाद दे रही थी।

इतने में भारत के सर्वोच्च न्यायालय के प्रधान न्यायाधीश हरिलाल कनिया सामने आये और हिन्दी में राष्ट्रपति को शपथ ग्रहण कराई।

दरबार हाल का दरवाजा खोल दिया गया। इस के बाद ३१ तोपें दागी गईं। राजभवन से गवर्नर जनरल का झंडा नीचे उतार दिया गया, और राष्ट्रपति का लाल नीला झंडा फहरा दिया गया। बाहर सैनिकों ने गणराज्य की सलामी दी, बैंड ने राष्ट्रीय गीत बजाया। इसी समय भारत की समस्त रेलों के इञ्जनों ने एक साथ मिल कर सीटियाँ बजाईं।

१०·३५ पर गृह सचिवालय के सेक्रेटरी श्री एच० वी० आर० आयङ्गर ने घोषणा की कि राष्ट्रपति का आदेश है कि राष्ट्रपति के पद संभालने की घोषणा की जाय, अतः मैं घोषित करता हूँ कि राष्ट्रपति ने आज अपना कार्यभार सम्भाल लिया है।

इस के बाद राष्ट्रपति भूतपूर्व गवर्नर-जनरल श्री राजगोपालाचार्य के साथ हाल से बाहर निकल आये और विदेशों के प्रतिनिधियों से मिले।

पास के दूसरे कमरे में प्रधान मन्त्री नेहरू जी, सरदार पटेल, अन्य मन्त्रियों तथा उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों ने

गणराज्य के प्रति वफादारी की शपथ ग्रहण की।

× × ×

दोपहर होते-होते सूर्य के साथ-साथ नये गणराज्य का स्वर्णिम प्रकाश भी अपने जोबन पर आ गया। आकाश में छाये हुए बादल छंट गये और राजधानी नये राष्ट्रपति के स्वागत में सुनहरी मुसकानों से लद गई। सारा जनसमूह राष्ट्रपति की सवारी के ५ मील लम्बे मार्गों पर एकत्रित होने लगा।

तीसरे पहर भारतीय गणराज्य के प्रथम राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद का ६ घोड़ों की राजकीय गाड़ी में जलूस निकला, जो गवर्नमेंट हाउस से पार्लमेंट स्ट्रीट, कनाट सरकस, सिकन्दरा रोड और हार्डिङ्ग एवेन्यू होता हुआ इरविन स्टेडियम पहुँचा, जहाँ राष्ट्रपति ने राष्ट्रीय पताका फहरा कर सेनाओं की सलामी ली। नई दिल्ली में इस जलूस के मार्ग पर १५ तोरण द्वार बनाये गये थे, जिन पर भारतीय इतिहास के विभिन्न युगों के चित्र तथा संस्कृत और हिन्दी में आदर्श वाक्य अंकित थे।

लाखों नर-नारी भारतीय गणराज्य के प्रथम राष्टपति के दर्शनों के लिए तथा उन्हें अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करने के लिए नियत मार्ग के दोनों ओर के स्थानों, मकानों की छतों व छज्जों पर घण्टों पूर्व से एकत्र थे। इण्डिया गेट के आसपास दूर तक नर-मुण्ड ही नर-मुण्ड दीख पड़ते थे।

राष्ट्रपति का जलूस गवर्नमेंट हाउस से ठीक २॥ बजे रवाना हुआ। राष्ट्रपति एक स्वर्ण छत्र वाली शानदार खुली गाड़ी में बैठे थे, जिस में ६ घोड़े जुते थे। जलूस के आगे घुड़-सवार बैंड था, जिस के पर्याप्त फासले पर लाल सुनहरी वर्दियाँ

पहने हुए अश्वारोही अङ्गरक्षक और उन के पीछे राष्ट्रपति की बग्घी तथा अन्त में फिर कुछ और अश्वारोही थे। अपने राष्ट्रपति को देखने के लिए राजधानी में दूर-दूर से व्यक्ति एकत्र हुए थे। प्रातःकाल से ही लोग आकाश मेघाच्छन्न होने के बावजूद पैदल, तांगों, मोटरों और लारियों में नई दिल्ली पहुँच रहे थे। बहुत समय तक प्रतीक्षा करने के बाद जब जलूस नियत समय पर गुजरा तो अधिकांश दर्शकों को उसे देख कर बड़ी निराशा हुई, क्योंकि वह उन की कल्पना के विपरीत बहुत संक्षिप्त और हमारे राष्ट्रपति के समान ही आडम्बर-हीन तथा सादा था। जिन व्यक्तियों ने अपने जीवन-काल में ब्रिटिश युग के शाही दरबार देखे थे, वे आज भी उन की स्मृति करके इसे बहुत तुच्छ और भारत के गौरव के प्रतिकूल मान रहे थे। मार्गों पर खड़ी जनता ने राष्ट्रपति का जयजयकार किया। प्रत्युत्तर में इन्होंने हाथ जोड़ कर अभिवादन किया।

सवारी ठीक ३॥ बजे इरविन स्टेडियम पहुंची, जहाँ पहले से ही केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल के सदस्य, विदेशी राजदूत, उच्च सरकारी तथा सेना-अधिकारी, प्रतिष्ठित व्यक्ति तथा हजारों प्रवेश-पत्र प्राप्त दर्शक नियत स्थानों पर बैठे थे। क्रीड़ा-भूमि के बीच जलसेना, वायुसेना तथा स्थल सेना की विभिन्न टुकड़ियों के ६ हज़ार सैनिक खड़े थे। रक्षामन्त्री सरदार बलदेवसिंह ने तीनों सेनाओं के सेनापतियों के साथ राष्ट्रपति का स्वागत किया। उस समय सम्मिलित सैनिक बैण्ड पर राष्ट्रगीत की धुन बजाई गई और समस्त जन-समूह ने खड़े हो कर अभिवादन किया। तदनन्तर राष्ट्रपति राजेन्द्र बाबू ने तिरंगा झण्डा फहराया और उन्होंने एक जीप में खड़े होकर सेनाओं की

परेड का निरीक्षण किया। राष्ट्रपति को ३१ तोपों की सलामी दी गई और सेनाओं ने गोलियां छोड़ कर राष्ट्रपति का तीन बार जयनाद किया। भारतीय हवाई सेना के हवाई सेनाओं की एक टुकड़ी ने आकाश पर से राष्ट्रपति का अभिनन्दन किया।

इसके बाद उपस्थित सैनिक टुकड़ियाँ पताका-स्थल पर खड़े हुए राष्ट्रपति के सामने से एक-एक कर गुजरीं।

यह कार्यवाही ४-२५ पर समाप्त हुई और राष्ट्रपति पुनः अपनी ६ घोड़ों की बग्घी में बैठ कर वहाँ से गवर्नमेंट हाउस लौट गये। उनके जाने पर प्रधानमन्त्री, उपप्रधान मन्त्री तथा अन्य मन्त्री भी अपनी-अपनी गाड़ियों में बैठ कर विदा हो गये।

इन्द्रप्रस्थ के ऐतिहासिक दुर्ग की छाया में इरविन स्टेडियम में चारों ओर बैठने के लिये लकड़ी के सलीपरों के ऊंचे सोपानाकार स्थान बनाये गये थे, जिन पर लाल कपड़ा बिछा था। नवीन युग का सूत्रपात करने वाले इस समारोह को वहाँ लगभग एक लाख जन-समूह ने देखा। प्रतिष्ठित दर्शकों में इण्डोनेशिया के राष्ट्रपति डा० सुकर्ण, अमेरिका में भारतीय राजदूत श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित व काश्मीर के प्रधान मन्त्री शेख अब्दुल्ला भी थे।

× × ×

संध्या होते ही सभी सरकारी भवन, गली-बाजार और पूजास्थल मंगलदीपों और बिजली के रंगबिरंगे बल्बों से जगमगा उठे दूर से ऐसा जान पड़ता था, मानो किसी माया-नगरी में रंगविरंग मणि-रत्न राशि-राशि प्रकाश बिखेर कर रात को दिन बना रहे हैं।

२७ जनवरी को दिन के दो बजे एक विशाल फौजी जलूस, जिस में लगभग ५० बटालियनों ने भाग लिया था, लाल किले से निकल कर चाँदनी चौक, फतहपुरी, लालकुंआ, चावड़ी बाजार और दरीबाकलाँ होता हुआ ३ बजे वापस लाल-किला पहुँच गया, जलूस में सिख, जाट, गोरखा और मरहटा इत्यादि सभी पलटनें शामिल थीं। जलूस के आगे पुलिस दस्ता और पीछे फौजी पुलिस, घुड़सवार दस्ता, पैदल पलटन और मोटर साइकिल सवार चल रहे थे। फौजी बैंड भी जलूस में जहाँ तहाँ लगे हुए थे। लगभग दो मील लम्बा होने के कारण जलूस का अगाड़ी और पिछाड़ी का पता करना बहुत कठिन था।

इस तरह भारतीय-गणराज्य का ऐतिहासिक समारोह समाप्त हुआ।

(वीर अर्जुन से)

तृतीय महायुद्ध और विश्व-शांति

प्रथम महायुद्ध में भाग लेने की घोषणा करते समय अमेरिका के राष्ट्रपति विलसन ने कहा था—"यह महायुद्ध युद्धों का अन्त करने के लिये लड़ा जा रहा है?" लेकिन इसके ठीक पच्चीस वर्षों के बाद ही संसार को एक नये महायुद्ध का सामना करना पड़ेगा, इसकी लोगों में कल्पना भी न थी।

प्रथम और द्वितीय महायुद्ध के बीच के समय में संसार का निःशस्त्रीकरण करने के लिये कई सम्मेलन हुए। वाशिंगटन नौसैनिक सम्मेलन सन् १९२१ में, जिनेवा निःशस्त्रीकरण सम्मेलन सन् १९२६ में, लन्दन नौसैनिक सम्मेलन सन् १९३१

में और विश्व निःशस्त्रीकरण सम्मेलन १९३३ में हुआ। पर बड़े राष्ट्रों की साम्राज्य लिप्सा के कारण इनमें से एक भी सफल न हो सका।

फलतः द्वितीय महायुद्ध प्रारम्भ हुआ, जिसमें एक तरफ़ थे, धुरीराष्ट्र जर्मनी, इटली तथा जापान, और दूसरी तरफ़ थे मित्रराष्ट्र ब्रिटेन, अमेरिका, फ्रांस और रूस। छः वर्षों के उपरान्त यह महायुद्ध भी समाप्त हुआ। इस महायुद्ध की समाप्ति के समय लोगों ने समझा कि दुनिया अब शांति की सांस लेगी, लेकिन उनकी आशा एक कोरा स्वप्न ही रही और आशा क्रमशः निराशा में बदलती गई। द्वितीय महायुद्ध को समाप्त हुए अभी पांच वर्ष भी नहीं हुए कि संसार पर पुनः युद्ध के बादल मंडराते दिखाई देने लगे हैं, और दुनिया भी तृतीय युद्ध की ओर द्रुतगति से झुकी जा रही है।

द्वितीय महायुद्ध के विजेता राष्ट्र ही आज एक दूसरे के शत्रु बन बैठे हैं। दुनिया इस समय प्रायः दो भागों में बट चुकी हैं। एक ओर तो है मजदूरों का राज्य चाहने वाला साम्यवादी रूस, और दूसरी ओर है पूंजीवादी अमेरिका। यदि अमेरिका डालर के बल पर विश्व पर अपना आधिपत्य स्थापित करना चाहता है, तो दूसरी ओर रूस, विश्व के प्रत्येक राष्ट्र में साम्यवाद के जीवाणु फैलाकर दुनिया में अपना प्रभुत्व कायम करना चाहता है।

द्वितीय महायुद्ध से जर्जर राष्ट्रों को अमेरिका अपनी ओर मिला लेने के लिये जी जान से कोशिश कर रूस-विरोधी मोर्चा बनाने की फिक्र में है। मार्शल योजना के मूल में यही उद्देश्य है। साथ ही राष्ट्रपति ट्रूमैन उधर विश्व-शांति का ढोल पीट

रहे हैं—क्या, वायुयान, टैंक, तोप बम आदि दूसरे राष्ट्रों को पहुँचा कर तथा वहां पर गृह-युद्ध की आग भड़का कर अमेरिका दुनिया में शांति स्थापित कर सकेगा ? चीन एवं ग्रीस के गृह-युद्ध इस बात के दृष्टांत हैं कि बड़े राष्ट्र शांति के लिये क्या कर रहे हैं। मध्य पूर्व में साम्राज्यवादी हथकंडे, भूमध्य-सागर में नौसैनिक हलचलें, अटलांटिक समझौता, जर्मनी में विभाजन की नीति क्या ये सब शांति स्थापना के लिये हैं ? या तीसरे महायुद्ध के पूर्व लक्षण हैं।

हालांकि अमेरिका प्रथम और द्वितीय महायुद्ध की चपेट से बच गया तथा इन महायुद्धों का फ़ायदा उठा कर एक महान् शक्तिशाली देश बन गया है, पर अब आगामी महायुद्ध की चपेट से उसका बच जाना सर्वथा असंभव है ! गत महायुद्ध में सबसे अधिक क्षति उठाने वाले राष्ट्र रूस ने अपनी क्षति-पूर्ति करने के बाद चार-साल के थोड़े से ही समय में अपनी सैनिक-शक्ति इस तरह बढ़ा ली है कि वह विश्व को तृतीय महायुद्ध में ढकेलने के लिए तैयार है। एक अणु-बम की वहां कमी थी, अब उसकी भी पूर्ति हो गई है।

इस प्रकार आज दुनियां प्रत्यक्ष रूप से दो बड़े भागों में बंट चुकी है। इनमें एक है रूसी गुट, जिसमें चेकोस्लोवाकिया, पोलैंड, हंगरी, रूमानिया, बलगेरिया, अलबानिया तथा साम्य-वादी चीन शामिल हैं। चीन को छोड़कर इस गुट की आबादी लगभग २६ करोड़ के है। और यदि चीन को शामिल किया जाय तो कम से कम ४० करोड़ की आबादी उसमें और जोड़ दीजिए। पर चीन का ऊंट किस करवट बैठेगा, यह बात अभी अंतिम और निश्चित रूप से नहीं जानी जा सकती, संभव है

कि वह निकट भविष्य में एक स्वतंत्र और तीसरे महायुद्ध की स्थापना करे !

जहां तक पैदल सेना का बल है रूस की 'लाल-सेना' दुनिया में सबसे बड़ी है तथा मौका पड़ने पर वह दो माह के भीतर ही ३०० डिवीजन फौज युद्ध में भेज सकता है ! रूसी गुट की सैनिक शक्ति इस तरह है—

देश का नाम—	सैनिक शक्ति—हवाई जहाज़	
रूस	४०,५०,०००	२६००
पोलैंड	३,००,०००	—
चेकोस्लोवाकिया	१,५०,०००	—
हंगरी	१,७५,०००	७५
बलगेरिया	२,२५,०००	६०
अलबानिया	७५,०००	—

इसके अलावा रूस के पास लगभग ३५० पनडुब्बी तथा छोटा जहाज़ी बेड़ा भी है।

द्वितीय—अमेरिकन गुट—(वेस्टर्न ब्लाक)—इस गुट में अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस, हालैंड, बेलजियम, इटली, आस्ट्रेलिया, केनाडा आदि हैं। जहां तक सैनिक शक्ति (पैदल) का सवाल है, अमेरिका रूसी गुट से पिछड़ा हुआ है। पर वायु तथा समुद्री शक्ति में यह गुट रूस तथा उसके पिछलग्गू राष्ट्रों से कहीं ज्यादा मज़बूत है। इस गुट की सैनिक शक्ति इस प्रकार है—

देश का नाम	सेना	लड़ाकू वायुयान
अमेरिका	१६,६५,०००	३,२५००
कनाडा	३६,०००	१६०
ब्रिटेन	८,००,०००	६०००

फ्रांस	६,८५,०००	७५०
नार्वे	१५,०००	६००
हालैंड और बेलजियम	१,६५,०००	५५०
डेनमार्क	१२,५००	३०
पुर्तगाल	६०,०००	५२५
इटली	२,७०,०००	५०००

इसके अलावा अमेरिका के पास ६५३ लड़ाकू जहाज़ तथा १५० पनडुब्बियां हैं।

क्या, उपरोक्त आंकड़ों से यह संभव है कि अमेरिका, अपने सहयोगी राष्ट्रों की मदद कर सकेगा? ब्रिटेन, जो कि युद्ध के पहले दुनिया की महान् शक्ति समझा जाता था, आज तीसरे दर्जे की शक्ति रह गया है। अमेरिका को अभी तक परमाणु बम का घमंड था कि कोई राष्ट्र उसे बना नहीं सकता। और वह इन्हीं के बल पर संसार को अपने वश कर सकता है, लेकिन दस जुलाई के रूस के परमाणु बम ने अमेरिका के आसन को हिला दिया है।

आज दोनों महाशक्ति, रूस और अमेरिका—एक दूसरे को अधिक से अधिक नुकसान पहुँचाने के लिये भयंकर से भयंकर शस्त्र ढूंढने में व्यस्त हैं। कोई परमाणु बम बनाता है, तो कोई उससे बचने के लिये हवाई रेडियो स्टेशन; कोई मृत्यु किरण तथा राकेट तैयार करता है, तो कोई फसलों को नष्ट करने के कीड़े (विशेषकर आलू तथा गेहूँ)।

युद्ध के लिये पूरा मसाला तैयार है। सिर्फ आग लगाने भर की देर है। आग लगते ही सब एक दम ही भड़क उठेगा। इस महायुद्ध की भयंकरता का वर्णन करते हुए यूरोप स्थित अमे-

रिकन वायुसेना के अध्यक्ष किनेथ रायल का कहना है कि "यह तृतीय महायुद्ध केवल ४० घंटों में ही समाप्त हो जायगा। संसार के बड़े बड़े शहर देखते ही देखते नष्ट कर दिये जायेंगे। संस्कृति तथा मानव-सभ्यता का विनाश हो जायगा।" इसी बात से युद्ध की भयंकरता का अनुमान किया जा सकता है।

हर राष्ट्र अपनी आवश्यकताओं (भोजन, वस्त्र, रहना) पर खर्च कम कर युद्ध सामग्री तथा सैन्य बढ़ाने में ज्यादा से ज्यादा धन व्यय कर रहा है। यह निम्न आँकड़ों से स्पष्ट हो जायगा :—

अमेरिका अपनी आय का २५ प्रतिशत, ब्रिटेन १७ प्रतिशत, रूस १३ प्रतिशत, चीन (गृह युद्ध के कारण) ६० प्रतिशत, भारत ४० प्रतिशत, पाकिस्तान ५५ प्रतिशत।

यदि इतना ही खर्च कहीं दुनिया की सुख-शान्ति के लिये किया जाय तो दुनिया स्वर्ग बन सकती है, अन्यथा उसकी बरबादी निश्चित है। हमें मालूम ही है कि दुनिया के सभी राष्ट्रों का आर्थिक ढांचा बिलकुल ही बिगड़ जायगा, तथा कई राष्ट्र तो हमेशा के लिये नष्ट हो जायेंगे।

अब जनता युद्ध से ऊब गई है, लेकिन युद्ध उसके ऊपर लादा जा रहा है। जनता शान्ति चाहती है, लेकिन साम्राज्यवादी मनोवृत्ति के थोड़े से लोगों के पीछे उसे पिसना पड़ रहा है। द्वितीय महायुद्ध के बाद भी शान्ति के लिये बहुत से सम्मेलन किये गये, जैसे पोर्ट सडम (१९४५), पेरिस तथा सेनफ्रांसिसको में। लेकिन उसमें माने हुए प्रस्तावों को ठुकरा दिया गया है। यदि केवल ये शब्द संसार की रक्षा कर सकते हों, तो निस्संदेह नवीन 'विश्व-संघ' युद्ध को रोक सकेगा।

छोटे-बड़े राष्ट्रों में समानता स्थापित कर सकेगा, क्षुधा तथा नग्नता को इस लोक से दूर कर सकेगा, स्वास्थ्य वृद्धि करके मनुष्य को दीर्घायु बनावेगा और जीवन को सुखमय बनाकर नर को नारायण की ओर ले चलेगा।

प्रसिद्ध लेखिका म्यूरियल लिस्टर कहती हैं—"जिस युग में शान्ति के विरुद्ध निरन्तर षड्यन्त्र चल रहे हों, जिनकी आत्मा सुप्त हो, जहाँ शक्तिशाली राष्ट्र अपने स्वार्थ में लिप्त हों वहाँ शांति कहाँ ? ऐसे संसार में जहाँ एक ओर लोग भूखे मरते हों दूसरी ओर अन्तर्राष्ट्रीय लूट की योजना बनाई जाती हो, एक ओर गन्दे मकानों में लोग तड़फ रहे हों, दूसरी ओर चैन की बंशी बजाई जा रही हो, वहाँ शांति कैसे हो सकती है ? आज के संसार में शान्ति केवल युद्ध स्थापित होने का दूसरा नाम है।"

पलडोले हैक्स बेर लिखते हैं—"हर एक देश की जनता शांति चाहती है, परन्तु किसी भी देश की जनता शांति का उत्तरदायित्व लेने को तैयार नहीं है। आधुनिक युग में जिन साधनों से शांति स्थापित हो सकती है वे हैं—निःशस्त्रीकरण, साम्राज्यवाद का मूलोच्छेदन, आर्थिक राष्ट्रीयता का त्याग, हर एक स्थिति में अहिंसात्मक साधनों का उपयोग।" संसार में आज कितने शांतिवादी हैं, जो शांति की इन शर्तों को मानने के लिये तैयार हैं।

जिस प्रकार प्रथम महायुद्ध के बाद युद्ध रोकने के लिये राष्ट्र संघ की स्थापना की गई, वैसे ही द्वितीय महायुद्ध के बाद भी संयुक्तराष्ट्र संघ की स्थापना की गई, यद्यपि इसे स्थापित किये चार साल हो गये, लेकिन अभी तक किसी भी बात में

इसने सफलता नहीं पाई। डच-इंडोनेशिया की लड़ाई, फिलस्तीन का झगड़ा, काश्मीर का मामला, दक्षिण अफ्रीका तथा भारत का मामला आदि बातों पर सं० रा० सं० अभी तक कुछ भी निर्णय नहीं दे सका। इस समय सं० रा० सं० में ५६ राष्ट्रों के प्रतिनिधि हैं। यहाँ पर इस समय दलबन्दी चल रही है। "जिसकी लाठी उसकी भैंस" वाली कहावत चरितार्थ होती है। जिसके पास शक्ति है वह बाजी मार ले जाता है, गरीबों, निर्बलों की कोई पूछ नहीं।

संयुक्तराष्ट्र संघ तब तक सफल नहीं हो सकता जब तक उसके पास एक संयुक्त फौज न हो। संयुक्तराष्ट्र संघ केवल खर्चे की चीज है। यदि संसार को आज युद्ध की धधकती आग से कोई शक्ति बचा सकती है तो वह है "महात्मा गांधी की अहिंसात्मक नीति।" उसी को कार्य रूप में परिणत करने में ही संसार का भला है अन्यथा नाश तो निश्चित है ही।

(संगम से)

ललित-कलाएं

सौंदर्य प्रवृत्ति—परमात्मा स्वयं सौन्दर्य-प्रिय है। उसने प्रकृति का प्रत्येक पदार्थ जहां उपयोगी बनाया वहां सुन्दर भी। संसार में ऊंची, भीषण, कठिन शिलाओं वाले पर्वतों की बड़ी आवश्यकता है, परन्तु उसने उनकी उपयोगी कुरूपता और कठोरता को कोमल रंग बिरंगी लताओं और रंग बिरंगे पौधों से आच्छादित कर दिया है। मोर के उपयोगी पंखों को रंग बिरंगे चन्दवों से सजा दिया है। हमारे कुरूप परन्तु परम उपयोगी हाड़,

मज्जा, मांस, रुधिर आदि बीभत्स धातुओं वाले शरीर को सुन्दर त्वचा से आवृत कर दिया है ।

मनुष्य भी सौन्दर्य प्रेमी है । उसे नदी, पहाड़, झरना, फूल, पत्ते, जंगल और हरी-हरी घास, मोरों के नाच आदि अच्छे अच्छे प्राकृतिक दृश्यों को देखकर, तथा पक्षियों की चहचहाहट और भ्रमरों की गुञ्जार सुनकर आनन्द प्राप्त होता है । जब एक रमणी दुकान पर शरीर की आवश्यकता पूर्ति के लिए वस्त्र खरीदने जाती है तो साथ ही उसका डिज़ाइन चुनती है । यह डिज़ाइन का चुनाव सौन्दर्य-प्रवृत्ति का प्रदर्शक ही तो है ।

परन्तु क्योंकि शरीर के लिए अत्यावश्यक वस्तुएं पहिले चाहिएं सुन्दरता हम बाद में देखते हैं । रोटी परम आवश्यक है, चटनी अचार भी साथ में हो तो सोने में सुगन्धि आ जाय । 'इसलिए एक पन्थ दो काज' वाली उक्ति चरितार्थ करते हुए उपयोगी पदार्थों में भी सौन्दर्य भरने का मनुष्य ने सदा उद्योग किया है ।

भेद—इसलिए जो मानवी उद्योग हमारी प्रथम शारीरिक आवश्यकताओं को पूरा करते हैं वे 'उपयोगी कला' के अन्तर्गत गिने जाते हैं और जो सौन्दर्यप्रवृत्ति को तृप्त करते हैं वे 'ललित कला' में आजाते हैं । दर्जी, लुहार, बढ़ई आदि के व्यवसाय उपयोगी कला में और अच्छे भवन (वास्तु कला) मूर्ति, चित्र, संगीत और काव्य ललित कला में परिगणित हैं । उपयोगी कला शरीर की आवश्यकताओं को पूरा करती है और शरीर की आवश्यकताएं पूरा होने पर ललित कलाएं मानव के मन को आनन्द-विभोर करती हैं । इसलिए श्रमिकों को उपयोगी कलाएं अपनानी पड़ती हैं और धनाढ्य ललित कलाओं से मनो-विनोद

करते हैं।

कला का उत्पत्तिक्रम—श्री यशपाल जी ने अपने एक लेख में लिखा है—'पहिले अपने हाथ से काम करके जरूरत पूरी होती थी। अब अगर आपके पास गुलाम है तो मसनद पर बैठिए, गुलाम आपका सब काम करेंगे। पहिले आदमी में जितनी शक्ति थी, उससे वह अपना पेट भर पाल कर थक जाता था। अब उसके थकने का सवाल नहीं रहा। इसलिए उसे पहाड़ खोदने और दरिया पाटने की सूझने लगी। मीलों से सुन्दर पत्थर ढो-ढोकर ईरान, रोम, मिस्र और भारत में भव्य इमारतें१ खड़ी होने लगीं, और गुलामों के मालिक दूसरा जरूरी काम न होने से आकाश में बुद्धि के घोड़े दौड़ाने लगे। तारों की चाल के हिसाब लगाने लगे। समय काटने के लिए बांस में तार बांध कर वीणा२ बनी और उस उदास स्त्री को जो जमीन खोद और पत्थर तोड़ कर उतने आनन्द की सृष्टि न कर सकती थी, जितनी कि वह स्वामी के सामने कमर में बल देकर और ठुमक-ठुमक कर उसकी आँखों को रिझा सकती थी, हुक्म हुआ—'तुम नाचो'३। उस सुन्दरी के हावभाव की ताल पर संगीत चला,४ जिसने मालिक के कानों को अमृत से भर दिया। उस संगीत में न केवल कानों को तृप्त करने वाले परन्तु हृदय को गुदगुदाने वाले वर्णन, व्याख्या और संकेत पैदा हुए। ऐसे विलक्षण या चतुर आदमी को, जो किसी भी स्थूल पदार्थ के बिना शब्दों से ही मोहक चित्र बना दे, महाकवि५ और पण्डित की उपाधि दी गई। समाज में कला और विद्या का प्रसार हुआ।'

जहाँ उक्त उद्धरण से कला के (१) वास्तु कला (२) मूर्ति कला (३) चित्रकला (४) संगीत और नृत्य-कला तथा (५) काव्य-

कला इन पाँच भेदों तथा उनके उत्पत्ति क्रम व प्रकार आदि का कुछ अनुमित आभास मिलता है वहां यह भी पता चलता है कि ललित कलाओं की उत्पत्ति केवल आनन्द की प्राप्ति के लिए हुई। ललित कलाएं हमारे हृदय की तन्त्री को आनन्द से झंकृत कर देती हैं। वास्तु (भवन-निर्माण), मूर्ति और चित्र कलाएं तो आंखों द्वारा हमारी आत्मा को रसास्वादन करवाती हैं और संगीत और काव्यकला श्रवण द्वारा।

कलाओं में उत्कर्षापकर्ष--मनुष्य का दृश्य-जगत् से घनिष्ठ सम्बन्ध है। प्रकृति के नाना रूप उसके अनेक भावों को जगाते हैं। बाहरी पदार्थ जो उसके हृदय पर प्रभाव डालते हैं या भाव उत्तेजित करते हैं उन्हें वह कभी तो भवन (ताज महल) आदि बनाकर, कभी मूर्ति बनाकर, कभी चित्र खींच कर, कभी कुछ गाकर और कभी कविता रचकर व्यक्त करता है। भावों, विचारों और अनुभवों को प्रगट करने के लिए कुछ कलाओं को बाहरी स्थूल जगत का कुछ न कुछ सहारा लेना ही पड़ता है। मिसर के पेरामिट्स, आगरा के ताज महल आदि भव्य तथा दर्शनीय भवनों के निर्माण के लिए न जाने कितनी बड़ी बड़ी शिलाओं आदि का प्रयोग करना पड़ा। परन्तु लोग इन्हें देखने के लिए दूर दूर से आते हैं और हृदय की सौन्दर्य पिपासा को तृप्त करते हैं। जहां ये भवन सौन्दर्य पिपासा की तृप्ति करते हैं, वहां साथ ही इनको देखकर हमारे विविध भाव जागृत होते हैं। इसलिए कला का आन्तरिक स्वरूप आनन्द और बाहरी स्वरूप सौन्दर्य है।

मूर्ति-कला भी नेत्रों द्वारा बाह्य देव तथा देवोपम महापुरुषों की भावभरी मूर्तियों का अवलोकन कराकर हमारे हृदय में

भक्ति, श्रद्धा आदि जगाती है। मूर्तिकला के लिए मूर्ति की लम्बाई, चौड़ाई और ऊंचाई आदि आवश्यक होती हैं। परन्तु वास्तुकला की सामग्री से इसका बाहरी आधार कम है। शैव और वैष्णव सम्प्रदायों तथा बौद्ध काल में मूर्ति कला का भारत में अच्छा प्रचार तथा प्रसार हुआ।

मूर्ति कला के उपरान्त 'चित्रकला' आती है। इसमें दोनों की अपेक्षा अधिक सूक्ष्मतत्त्व का प्रयोग होता है। रंगों से ही भावमय सजीव चित्र रचने होते हैं। इनमें लम्बाई-चौड़ाई तो होती है परन्तु मोटाई का भ्रम मात्र होता है। मूर्ति द्रष्टा का एक भाव ही प्रबुद्ध कर सकती है जबकि चित्र द्वारा अनेक भाव चित्रित किए जाते हैं। ये तीनों कलाएं भौतिक आधार पर आश्रित हैं और इनमें भी जितना ही किसी कला का भौतिक आधार सूक्ष्म व कम होता है उतनी ही वह उत्कृष्ट मानी गई है। इसलिए वास्तु या गृहनिर्माण कला से उत्कृष्ट मूर्ति कला, मूर्ति कला से उत्कृष्ट चित्रकला मानी गई है। भारतवर्ष में चित्रकला का प्रचार बहुत पुराना है। संगीत, काव्य आदि के समान राजा लोग चित्रकला में भी निपुणता प्राप्त करते थे। शकुन्तला नाटक में दुष्यन्त के शकुन्तला का सजीव चित्र खींचने का उल्लेख आता है। अजन्ता की गुफा की चित्रकारी भी प्राचीन भारतीय चित्रकला की उत्कृष्टता की प्रदर्शक है।

काव्य और संगीत—कानों के द्वारा आत्मा को आनन्दित करने वाली संगीत और काव्य कलाएं हैं। इन दोनों का कलाओं में महत्त्वपूर्ण स्थान है। भर्तृहरि ने तो मानवता के लिए साहित्य और संगीत का ज्ञान आवश्यक बताया है। वे लिखते हैं कि साहित्य और संगीत के बिना मनुष्य पूंछ और सींग से रहित

पशु से बढ़कर नहीं होता--"साहित्यसंगीतकलाविहीनः साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः।"

संगीत का आधार नाद है जिसे या तो कलाकार अपने कण्ठ से या कई प्रकार के वीणा, सितार आदि यन्त्रों द्वारा उत्पन्न करता है। वेद के उदात्त, अनुदात्त और स्वरित का विकास होते होते आज संगीत के सप्त स्वरों का सिद्धान्त निकाला गया है। संगीत का प्रभाव प्रबल और व्यापक होता है। सांप, हिरण आदि तक इससे प्रभावित होते हैं। संगीत मानव के विविध भावों को जगा सकता है। यह हमें रुला सकता है, हंसा सकता है, हमारे हृदय में आनन्दसरिता बहा सकता है तथा शोक सागर में डुबा सकता है। परन्तु अन्य कलाओं के समान संगीत भी सीमित है। बिजली की चमक, मेघों की गड़गड़ाहट तथा समुद्री तरंगों के आघात प्रतिघात संगीत में नहीं दिखाए जा सकते।

यदि किसी की सामर्थ्य से कोई वस्तु बाहर नहीं तो वह काव्य कला है। कवि तलवारों की झनकार, पत्तियों की खड़-खड़ाहट, भौंरों की गुञ्जार तथा कोयल की काकली के साथ साथ विविध प्रकार के दृष्टि से सम्बद्ध नदी, पर्वत, झरना, उषा, तथा तारों आदि के सजीव चित्र भी चित्रित कर सकता है। इसके लिए न उसे भौतिक तत्त्व का आश्रय लेना पड़ता है न नाद का ही। शब्द मात्र की सामग्री उसके लिए पर्याप्त है। पन्त द्वारा चित्रित तारों का चित्र देखिए—

ऐ अज्ञान देश के बालक, ऐ अनन्त के हलके पन,
नव प्रभात के अस्फुट अंकुर, निद्रा के रहस्य कानन।

संगीत और काव्य का मिश्रण--संगीत के साथ जब काव्य-

कला मिलती है तब दोनों के सम्मिश्रण से एक अद्भुत ही प्रकार की कला की सृष्टि होती है। उसका प्रभाव और आनन्द अनुपम होता है। सूर, मीरा, जयदेव और विद्यापति के गीतकाव्यों में दोनों कलाओं का मिश्रण हुआ है, इसी लिए वे इतने सुन्दर, और प्यारे लगते हैं।

यन्त्र युग और कलाएं—यह युग यन्त्रों का युग है। हस्तकला का स्थान जैसे कलकारखानों ने ले लिया है ठीक ऐसे ही गाने बजाने आदि कलाओं के भी वैज्ञानिक यन्त्र आविष्कृत हो चुके हैं। टाकी, रेडियो, और टेलिविजन ने पुराने काल के नाटकों, चित्रों, नृत्य-संगीत-सम्मेलनों को पीछे छोड़ दिया है। अब इन यन्त्रों के सहारे कलाओं का आनन्द देशकाल की सीमाओं से निकल कर अपरिमित और व्यापक बनता जा रहा है। समय के परिवर्तन के साथ ही कलाओं में भी महान् परिवर्तन आता जा रहा है। वह स्वाभाविक ही है। परन्तु जहां तक हृदय या आत्मा को आनन्दविभोर करने का सम्बन्ध है वहाँ कला अपने उद्देश्य से तनिक भी विचलित नहीं हुई।

द्वितीय खंड

पत्र-रचना

पत्र-लेखन

१. **आवश्यकता:**—पत्र लिखने की कला बड़ी आवश्यक और उपयोगी है। पढ़े लिखों का तो कहना ही क्या परन्तु अपठितों को भी बहुश: दूसरों से पत्र लिखवा कर निर्वाह करना पड़ता है। इस लिए पत्र लेखन का प्रचलन तभी से है जब से लिखने का आविष्कार हुआ।

२. **पात्र:**—इससे अभिप्राय उन दो व्यक्तियों से है जिन में पत्र-व्यवहार हो रहा हो। पत्र का भेजने वाला—'*प्रेषक*' और प्राप्त करने वाला 'प्रेष्य' या '*प्रापक*' होता है।

३. **प्रकार:**—'प्रेष्य' या 'प्रापक' तीन प्रकार के होते हैं—

(१) कोई निजी सम्बन्धी या मित्र।
(२) कोई व्यापार या व्यवसाय वाला व्यक्ति।
(३) कोई सरकारी या अधिकारी व्यक्ति।

इस लिए इन को लिखे जाने वाले पत्र भी क्रमश:

(१) निजी-पत्र
(२) व्यावहारिक या व्यावसायिक-पत्र
(३) सरकारी-पत्र, कहलाएंगे।

(क) निजी-पत्र:—ये वे होते हैं जो किसी निज के गुरु, सम्बन्धी या मित्र को लिखे जाएं। इन पत्रों के 'प्रेष्य' या 'प्रापक' तीन प्रकार के होते हैं:—

(१) बड़े:—जो आयु, योग्यता, पद अथवा सम्बन्ध आदि में प्रेषक से बड़े हों।

(२) *समानः*—जो अधिकार, शिक्षा या सम्बन्ध आदि में समान हों; जैसे, मित्र, सहपाठी, सहकारी, साला, बहिनोई आदि।

(३) *छोटेः*—जो आयु, पद, सम्बन्ध या योग्यता आदि में पत्र-प्रेषक से छोटे हों।

निजी-पत्र लिखते समय निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना चाहिएः—

१. **शैली**:—निजी-पत्रों की शैली स्वाभाविक, सरल, सरस, स्पष्ट, प्रेमपूर्ण और प्रत्यक्ष बोलचाल की सी होनी चाहिए। विषय की गम्भीरता के साथ शैली भी स्वतः ही प्रौढ़ हो जाएगी, परन्तु यथासम्भव सरलता और स्वाभाविकता को अक्षुण्ण बनाए रखने का सदा ही प्रयत्न करना चाहिए। निजी पत्र लिखते समय सदा यह ध्यान रखना चाहिए कि 'प्रापक' 'प्रेषक' के प्रत्यक्ष ही विद्यमान है। इस से व्यंग्यों, तथा उपहास आदि का उचित स्थान पर स्वयं ही प्रयोग होता जाएगा और शैली में स्वाभाविकता लाने में लेखक को पूर्ण सफलता मिलेगी।

२. **बड़े छोटों का ध्यान**:—एक परिवार में रहते हुए दादा दादी; माता पिता; मुन्ना मुन्नी; तथा विद्यालय में पढ़ते हुए गुरु और सहपाठी आदि के साथ जो हमारा संलाप होता है, उस में *बड़े छोटे* और *समान* वाले का महान अन्तर होता है। वही बड़े, छोटे और समान वाले का अन्तर पत्र में झलकना आवश्यक होता है।

(ख) व्यावहारिक पत्र:—वह होता है जो कोई प्रेषक किसी वस्तु का व्यवसाय करने वाले व्यक्ति के नाम से लिखे, अथवा

कोई व्यवसाय करने वाला व्यक्ति अपने व्यवसाय के सम्बन्ध में किसी को लिखे। ऐसे पत्रों में व्यवसाय-मात्र से सम्बन्ध रखने वाली बातें लिखी जाती हैं, शेष औपचारिक शब्दों का प्रयोग प्रचलन के अनुसार नियत ही होता है।

(ग) सरकारी-पत्र :—वे होते हैं जो अधिकारियों को, या अधिकारियों की ओर से आधीनस्थ व्यक्तियों के नाम लिखे जाएं। इनमें *औपचारिक शब्दों का बाहुल्य* होता हैं। व्यावहारिक पत्रों के अनुसार इनमें भी *काम की ही बातें* लिखी जाती हैं, क्योंकि ये दोनों प्रकार के पत्र उन व्यक्तियों के नाम लिखे होते हैं जिनका सम्बन्ध हमारे निज के सुख दुःख से नहीं वरन् हमारे निवेदित कार्यमात्र से होता है। दूसरे इनका काल बहुमूल्य होता है अतः इधर उधर की अप्रासंगिक बातों से वे अपना काल-यापन करना नहीं चाहते।

सूचना:—इन विभागों के अतिरिक्त सदाचरण, मान, प्रशंसा आदि पत्र भी होते हैं।

४ पत्र के भाग:—

(क) स्थान, तारीख या तिथि :—पत्र के दाहिने सिरे पर ऊपर पत्र-प्रेषक का स्थान, और उसके नीचे क्रमशः तिथि, मास और वर्ष आने चाहिएं; जैसे—

२० महादेव रोड,
नई दिल्ली।
१६ मार्च १६५०

(ख) सम्बोधन और प्रशस्ति :—पत्र-प्रापक का प्रेषक

के परिचय या सम्बन्ध के अनुसार जो नमस्ते, प्रणाम, स्वस्ति, शुभाशीः, जय हिन्द आदि कह कर अभिवादन किया जाता है उसे *'प्रशस्ति'* कहते हैं। पहिले पत्र के प्राप्तकर्ता को 'श्रीयुत' प्रिय पुत्र' आदि विशेषण जोड़ कर सम्बन्ध-प्रदर्शक 'पिता जी, आदि सम्बोधनों से सम्बोधित किया जाता है, पुनः सम्बोधन के ठीक आगे या एक पंक्ति नीचे से प्रशस्ति का प्रयोग करते हैं। सम्बोधन और प्रशस्ति क्रमशः पत्र के बाएं सिरे पर तिथि अथवा तारीख से एक पंक्ति नीचे कुछ स्थान छोड़कर लिखे जाते हैं। जैसे—

प्रिय पुत्र,

शुभाशीः।

अथवा

श्रीमान् पूज्य-पाद पिताजी ! सादर प्रणाम।

(ग) पत्र का विषयः—सामान्य अभिवादन या प्रशस्ति के उपरान्त हम अपनी बात या बातें लिखना प्रारम्भ कर देते हैं। वही पत्र का विषय कहाती है। विषय के भी समझाने में सुभीते की दृष्टि से तीन भाग किए जा सकते हैं—

(१) आरम्भ या आशयः—विषय आरम्भ करने से पूर्व हम पत्र लिखने के आशय आदि के सम्बन्ध में कुछ सुन्दर शब्द अथवा वाक्य लिखते हैं वही पत्र लिखने के अभिप्राय पर प्रकाश डालते हैं। उदाहरणार्थ निम्नलिखित वाक्य पढ़िए :—

(१) आपका कृपा-पत्र मिला, धन्यवाद। उत्तर में निवेदन है·····(२) कुशल पत्र मिला। जान कर बड़ा *आश्चर्य* हुआ कि ग्रीष्मावकाश में भी तुम घर नहीं आ रहे हो। (३) कुशल-पत्र मिला। यह जान कर *हर्ष* हुआ कि तुम परीक्षा में उत्तीर्ण

हो गए हो। (४) इस दारुण समाचार को लिखते शोक से हृदय विदीर्ण हुआ चाहता है कि तुम्हारे बड़े भाई महीराम का २० कार्तिक को ४ बजे प्रातः चायल में स्वर्गवास हो गया। (५) तीन चार पत्र डाले परन्तु उत्तर एक का भी न मिला। न जाने मुझ से कोई अक्षम्य अपराध हो गया है.....(*उपालम्भ*) (६) पत्र में विलम्ब का कारण मेरा घर पर न होना था। इस लिये विलम्ब के लिये विवश होता हुआ भी क्षमा-प्रार्थी हूँ।(७) पिछले दिनों इतना कार्यव्यस्त रहा कि उत्तर में विलम्ब हो ही गया। (८) आपके भ्राता नैनसिंह के दुःखद देहावसान का कुसमाचार सुन कर हृदय वेदना से विदीर्ण हुआ जाता है।

सूचना :—उक्त आरम्भ के वाक्यों के इटेलिक शब्दों से पाठक को विदित हो जायगा कि हर्ष, शोक, उपालम्भ, क्षमा-याचना से भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में भिन्न-भिन्न रूप से पत्र आरम्भ किए जाते हैं।

(२) *मध्य* :—इसमें मुख्य विषय पर लिखना होता है। विस्तार विषय के प्रकार पर निर्भर होता है।

(३) *अन्त* :—विषय के आरम्भ के समान विषय के अन्त में भी कुछ पत्र प्रापक से सम्बन्ध आदि, अथवा विषय के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकार के वाक्यों का प्रयोग किया जाता है। उदाहरणार्थ—(१) बच्चों को प्यार बड़ों को नमस्कार। (२) पिताजी के चरणों में मेरी नमस्काराञ्जलि अर्पण करें। सरकारी पत्रों में—(३) यदि सेवक को नियुक्ति का सुअवसर मिला तो अपने भगीरथ प्रयत्न से अपने अधिकारियों को सन्तुष्ट करता रहूँगा। मैं आपकी दीर्घायु और सम्पन्नता के लिये प्रार्थना करता रहूंगा, आदि।

(घ) **पत्र-समाप्ति या उपसंहार:**—पत्र की समाप्ति पर पत्र के दाएं किनारे पर प्राप्त करने वाले को पत्र का प्रेषक अपने सम्बन्ध अथवा नाम का परिचय देता है। जैसे—

(१) आपका अभिन्न हृदय,
सन्तराम।

(२) आपका आज्ञाकारी शिष्य,
रमेशचन्द।

सूचना :—अपने घनिष्ठ सम्बन्धियों के नाम लिखे पत्रों में अपने नाम के साथ बी० ए०, एम० ए०, रायबहादुर आदि उपाधियों का प्रयोग प्रशस्त नहीं समझा जाता। हाँ, अवस्था-विशेष के अनुसार यदि अधिकारी या अपरिचित व्यक्ति को पत्र लिखा जा रहा हो और उसको या तुम्हें तुम्हारी उपाधि के बोध से कुछ अभिप्राय है तो वहाँ उपाधि का प्रयोग किया जा सकता है।

प्रशस्ति शिष्टाचार आदि प्रदर्शक चित्रः—बड़ों को

प्रशस्ति	शिष्टाचार या अभिवादन	उपसंहार
धर्ममूर्ति आचार्य जी महाराज, पूज्य, परमपूज्य, पूजनीय, पूज्यपाद, परम मान्य, पूज्यतम, श्रद्धेय, श्रद्धास्पद, पूज्यपाद १०८ श्री स्वामी जी महाराज, श्रीयुत, प्रातः स्मरणीय मान्यवर, आदि ।	अभिवादन, नमस्ते, सादर नमस्कार, प्रणाम, साष्टांग दण्डवत्, चरणवन्दना, जयहिन्द आदि ।	आपका (की), भवदीय (या) आज्ञाकारी (रिणी), प्रीतिभाजन, विनीत (ता), कृपापात्र (त्री), कृपाकांक्षी (क्षिणी), सेवक (विका), चरणसेवक (विका) दास (सी), चरणकमल चञ्चरीक, शिष्य, शिष्या पुत्र, पुत्री भ्राता, बहिन आदि ।
पूज्या, परमपूज्या, श्रीमती, पूजनीया, आदरणीया, वन्द्या,	अभिवादन, नमस्ते, नमस्कार सादर प्रणाम, जयहिन्द, चरण वन्दना आदि ।	आपका (की) भवदीय (या) प्रिय सेवक (विका)

प्रातः स्मरणीया, पूजार्हा, पूज्यतमा श्रीमती, महामान्या, प्रेममयी, स्नेहमयी, दयामयी आदि		विनीत (ता), कृपापात्र (त्री), शिष्य (ष्या), पुत्र (त्री), पोता (ती), भांजा (जी), भाई (बहिन) आदि

बराबर वालों को

प्रिय मित्र (सखी), परमप्रिय (ये), मित्रवर, प्यारे मोहन, प्यारी शील, आदि	सप्रेम नमस्ते जयहिन्द	आपका (की), तुम्हारा (री), अभिन्न (न्ना), अनन्यहृदय (या), स्नेही (सखी) आदि।
प्राणनाथ, प्राणवल्लभ,	सप्रेम नमस्ते, नमस्कार	आपका—प्यारा, प्राणेश्वर वल्लभ आदि।
प्राणेश्वर, प्रियतम जीवनधन, आदि।	प्रणाम जयहिन्द आदि।	दासी, अभिन्नहृदया, प्यारी पत्नी, प्राणवल्लभा आदि।

छोटों को

आयुष्मान् (ष्मती) प्रियवर प्यारे (प्यारी देवी) (आयुष्मती देवी) वत्स (वत्से)	शुभाशीः, चिरंजीव, प्रसन्न रहो, फूलो फलो, सौभाग्यवान् (वती) बनो	तुम्हारा (री), शुभेच्छुक (का), शुभचिन्तक, हितेच्छुक (का), हितकांक्षी (क्षिणी), आदि ।

व्यावहारिक

प्रिय महाशय, महोदय, प्रिय महोदय, महाशय,	नमस्ते जय रामजी की जयहिन्द इत्यादि ।	भवदीय (या), आपका (की), कृपाकांक्षी, कृपाकांक्षिणी अनुग्रहाभिलाषी, अनुग्रहाभि- लाषिणी आदि ।

सरकारी पत्र

महाशय, मान्यवर, महोदय आदि ।	कुछ नहीं	कृपाकांक्षी (क्षिणी) अनुग्रहाभिलाषी (षिणी) आदि ।

५ पता:—प्रथम पंक्ति में साधारणतया सेवा में—दूसरी में पत्र-प्रापक या प्रेष्य का नाम व उपाधि। यदि दूसरी पंक्ति में नाम ही ठीक आगया हो तो उपाधि (यदि हो) तीसरी में लिखें।

उससे नीचे ग्राम या नगर का नाम, डाकखाना और जिला आदि लिखने चाहिएं। बड़े शहरों मे नगर का नाम ही पर्याप्त होता है। जैसे—

सेवा में—
श्री प्रोफेसर नन्दराम जी,
एम० ए०
सनातन धर्म कालिज,
अम्बाला।

सूचना:—लिफ़ाफ़े पर बाईं ओर रेखा खींचकर पत्र-लेखक अपना नाम व पता भी लिख सकता है; जैसे—

श्री सुरेशचन्द्रजी,
एम० एल० ए०,
१० माल रोड,
शिमला।

एस० एन० माथुर
जालन्धर

(१) (गुरु का शिष्य के नाम पत्र—स्वतन्त्र देश के छात्र का कर्तव्य)

शान्ति-निकेतन
२५-१-५०

प्रिय अखिलेश,

शुभाशीः। आज तुम्हारा पत्र मिला। पढ़ कर हर्ष हुआ। तुम्हारा 'स्वतन्त्र देश के छात्र का निश्चित कर्तव्य क्या होना चाहिए ?" प्रश्न सद्भावों का सूचक है। स्वतन्त्र देश के विद्यार्थी का प्रमुख कर्तव्य ज्ञान का अधिक से अधिक उपार्जन करना है। विद्यार्थी जिज्ञासु होता है,ज्ञान की वृष्टि से ही उसकी ज्ञान-पिपासा बुझनी चाहिए। सच्चा जिज्ञासु ज्ञानोपार्जन में रुचि रखता है न कि विलासिता में। स्वतन्त्र देशों के छात्र अपनी पढ़ाई पर मां बाप की गाढ़ी कमाई का पैसा नहीं लगाते। वे आत्म-निर्भर बन कर ज्ञान की खोज में लगे रहते हैं। स्वामी रामकृष्ण ने एक स्थान पर अपने भाषण में प्रतिपादन किया कि जब वे जहाज से जापान से अमेरिका जा रहे थे तो उनकी कुछ जापानी छात्रों से बातचीत हुई। पता चला वे छात्र विज्ञान की विभिन्न शाखाओं के उच्चतर ज्ञान को प्राप्त करने के उद्देश्य से अमेरिका जा रहे थे, परन्तु आश्चर्य की बात यह थी कि उनके पास घर से कोई पैसा न था। मार्ग में अमीरों के जूतों में पालिश करना, बिस्तर झाड़ना आदि कामों से वे मार्ग व्यय निकाल लेते थे। स्वामी जी के इसका कारण पूछने पर उन्हों ने बताया कि वे अपने देश का धन दूसरे देश को नहीं ले जाना चाहते और दूसरे देशों की नवीन विद्याओं को सीख कर अपने देश में प्रसारित करना अपना

मुख्य कर्तव्य समझते हैं। स्वतन्त्र भारत के छात्रों की मनोवृत्ति भी ऐसी ही होनी चाहिए। उन्हें पिछड़े तथा अशिक्षित भारत को फिर से विद्या और कलाओं का भण्डार बनाना है। भारत वर्ष में इतना पैसा नहीं जो विदेशों में व्यय कर छात्रों को कलाकौशल सिखा सके। भारत में ही रहकर भी विद्यार्थियों को विलासप्रिय बनकर विद्या-अध्ययन नहीं करना चाहिए वरन् तपस्वी बनकर। सारांश यह कि जब तक विद्यार्थी पूर्ण विद्वान बनने का प्रयत्न नहीं करेगा तब तक वह देश और जाति तथा निज परिवार का उद्धार नहीं कर सकेगा।

विद्या प्राप्ति के साथ ही साथ स्वतन्त्र देश के युवक को अपने शरीर के निर्माण की ओर भी विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क का वास होता है। स्वस्थ युवक ही देश की बहुमूल्य निधि हुआ करता है। रोगी युवक तो देश पर भारमात्र होते हैं। अन्य देशों में बौद्धिक शिक्षा के साथ ही शारीरिक शिक्षा पर भी जोर दिया जाता है। भारत के विद्यालयों में परीक्षा पास कराना ही उद्देश्य होता है शरीर गठन नहीं। शरीर और बुद्धि दोंनो का विकास ब्रह्मचर्य के पालन से होता है। इसलिए उपयुक्त आहार विहार आदि के साथ साथ ब्रह्मचर्य का पालन विद्यार्थी का परम कर्तव्य हो जाता है। भारत का गौरव ब्रह्मचर्य व्रत धारण करके विद्या अध्ययन करने वाले छात्र ही कर पाएंगे नाकि विषय-लम्पट छात्र।

ये दोनों कर्तव्य छात्र के अपने निर्माण के लिए आवश्यक हैं। परन्तु उसको देश की परिस्थितियों से भी अवगत रहना है। देश का भाग्य निर्माता वही है। उसको छात्र अवस्था में ही

अपने चहुं ओर दृष्टि डाल कर परिस्थिति को समझना और बदलना है। अन्य देशों में समाजसेवा की शिक्षा का अभ्यास इसी अवस्था से कराया जाता है। भारत का बहुत बड़ा आबादी का भाग ग्रामों में रहता है। ग्रामवासी अशिक्षित और पिछड़े हुए हैं। उनको आगे ले जाकर ही भावी नागरिक उन्नति कर सकेगा। इसलिए छात्र को अवकाश काल में ग्राम शिक्षण, सुधार और उद्धार के लिए निकल पड़ना चाहिए। यदि सभी छात्र ऐसा करने लग पड़े तो चुटकियों में ही भारत की अशिक्षितता तथा पिछड़ापन नौ दो ग्यारह हो जाए। सामाजिक कुप्रथाओं को हटाने और खानपान को सुधारने में भी शिक्षित छात्र महान् सहायक हो सकते हैं। अन्त में यही कहना पर्याप्त होगा कि जिस प्रकार हाथी के पाँव में सबके पाँव आजाते हैं ठीक इसी प्रकार अपने उत्तरदायित्व को समझने और कर्तव्य को ईमानदारी से निभाने के अभ्यास का काल यही विद्यार्थी अवस्था है। यदि दो बातों पर भारत में आचरण होने लगे, तो हमारी सारी समस्याएं स्वयं सुलझ जाती हैं। ये कुछ विचार हैं जिनके आधार पर आप कुछ छात्र-कर्तव्य की रूप रेखा खींच सकते हैं। मेरी सम्मति में इनसे ही छात्र का निजी और देश का कल्याण हो सकता है। आशा है तुम इन पर चलने का प्रयत्न करोगे और अपने साथियों को भी चलाओगे।

तुम्हारा हितचिन्तक,

श्रीनिवास शास्त्री

———

२. (पिता का पुत्र के नाम पत्र—पूर्ण शिक्षा क्या है)

२४ माल, शिमला।
२० जुलाई, १९३८

प्रिय प्रकाश,
शुभाशी:

बड़ी उत्सुकता से चिर-प्रतीक्षा के उपरान्त आज प्रातः आठ बजे की डाक से तुम्हारा पत्र मिल गया। यह जान कर प्रसन्नता हुई कि तुम्हें हिन्दू विश्वविद्यालय में एफ० एस० सी० में प्रविष्ट कर लिया गया है। तुम्हें इस सफलता से कितना हर्ष हो रहा है यह तो तुम्हारे पत्र की पंक्तियां ही दर्शा रही हैं। उन्नति-पथ में आगे बढ़ने से हर्ष की अनुभूति तो स्वाभाविक ही है। तुम्हारी निर्मल बुद्धि, प्रशस्त स्मरण-शक्ति और प्रयत्नशीलता ने तुम्हें, आज यह फल दिखाया कि तुमने दिल्ली की हायर सैकेण्डरी परीक्षा भी सम्मान के साथ पास की और वहां पर भी विश्वविद्यालय के इञ्जीनीरिङ्ग के लिए, लिये जाने वाले छात्रों में चुने गए हो। परन्तु बेटा, इस हर्ष के अवसर पर भी मेरे हृदय में एक दुःख की धुँधली सी रेखा चन्द्र को कालिख के समान नहीं छोड़ती। इन तुम्हारी सफलता के सुखद समाचारों को सुनकर भी मेरे मन में यही खटका लगा रहता है कि इस बौद्धिक विकास की नींव, कहीं स्वास्थ्य के भवन को गिरा कर तो नहीं डाली जा रही? उस अवस्था में यह उन्नति भी अवनति से कम दुःखदाई नहीं रह जाती। सच तो यह है कि एकाङ्गी विकास विकास ही नहीं कहा जा सकता। ऐसी शिक्षा भी अपूर्ण कहलाएगी। पूर्ण शिक्षा वह है जिसमें विद्यार्थी का पूर्ण विकास हो। पूर्ण विकास से शरीर, मस्तिष्क और आत्मा की

सामञ्जस्यपूर्ण उन्नति अभिप्रेत है । तुम्हारी मेडिकल रिपोर्ट सन्तोष-जनक नहीं । इस अवस्था में आयु के अनुसार जितना शरीर का वज़न जिस अनुपात से बढ़ना चाहिए था गत दो मासों से नही बढ़ पाया । प्रियवर, स्वस्थ शरीर के बिना ये सब सफलताएं ऐसे फीकी पड़ जाती हैं जैसे जड़कटी लता के पत्र पुष्प मुरझा जाते हैं । तुम कहोगे, 'तो क्या पढ़ाई ही छोड़ बैठें ?' नहीं, मैं कहता हूँ कदापि नहीं। वह भी एकाङ्गी विकास होगा। करो केवल इतना "Work while you work, play while you play" काम के समय मनोयोग से काम करो और खेल के समय दीवाने बनकर खेलो। शरीर स्वस्थ रहेगा तो मस्तिष्क की शक्तियां स्वतः विकसित होती चलेंगी, क्योंकि स्वस्थ मस्तिष्क की तो सम्भावना ही स्वस्थ शरीर में होती है "Souud mind in a sound body".

आत्मिक विकास से भी मैं ऐसा ही निश्चिन्त हूँ जैसा कि तुम्हारे बौद्धिक विकास से। क्योंकि तुम्हारे निजी चरित्र और संस्था के वातावरण पर मुझे पूरा भरोसा है । तथापि संकेत रूप से इतना अवश्य सचेत किया चाहता हूँ कि कुसंगत से बचते ही रहना । वह संस्था निस्सन्देह बहुत अच्छी है । वहां विद्यार्थी भी सच्चरित्र ही हुआ करते हैं, परन्तु सब सावधानियों के उपरान्त भी गुलाब पुष्प की जड़ में कीड़ा कहीं से स्थान पा ही लेता है। तब से फूल के फूलने के दिन समाप्त हो जाते हैं और मुरझाने का श्रीगणेश होता है। ठीक ऐसे ही जब उत्तम बालकों को भी व्यसनी साथी के संग की चाट लग जाती है तब वह यह भी नहीं भाँप पाता कि उसे कब चरित्र की सीमाओं से घसीट कर दुराचरण के अन्ध कूप में ला पटका। यह पतन सर्वथा अनजाने से होता

है। चरित्र नौका में तनिक सा दुर्व्यसन छेद हुआ कि वासना रूपी पानी ने धीरे २ सतत प्रवेश पाना प्रारम्भ किया। परिणाम तुम जानते ही हो कि क्या होता है? इस लिए ऐसे विषमय मित्र बनाने ही नहीं चाहिएं।

आशा है आगामी परीक्षा-परिचय की रिपोर्ट के साथ साथ तुम्हारे डाक्टर की रिपोर्ट भी अच्छी होगी। धार्मिक संस्थाओं में यथाकाल अवश्य जाया करो। पुस्तकालय से सदा ऐसी पुस्तकें पढ़ने को लेनी चाहिएं जिनसे ज्ञान का विकास हो या चरित्र बने। महापुरुषों की जीवनियां इसके लिए अत्युपयोगी सिद्ध होती हैं।

पत्र भेजने में उपेक्षा न किया करो। तुम्हारी माता जी तो पत्र में थोड़ी भी देरी होने पर नाना प्रकार की आशंकाएं कर बैठती हैं जो प्रेम में हुआ ही करती हैं। सुरेश तुम्हें बहुत याद करता रहता है। रमेश भी खूब पढ़ाई कर रहा है।

बच्चों का नमस्कार और माता का आशीर्वाद।

तुम्हारा शुभचिन्तक,
रामसहाय वर्मा।

३. पुत्र की ओर से—(पिता के पत्र का उत्तर)

२४, हिन्दू विश्वविद्यालय,
छात्रावास, बनारस।
२५ जुलाई १६३८

परम पूज्य पिता जी,
सादर नमस्ते।

आपका कृपापत्र प्राप्त हुआ। आपने जो अमूल्य शिक्षाएं दी हैं- वे मेरी परम आदरणीय निधि हैं। मैं आपको आश्वासन दिलाना चाहता हूँ कि मैं आपकी शिक्षाओं पर आचरण

करूंगा। अभी तक के अल्पकालिक निवास के आधार पर मैं कह सकता हूँ कि मुझे साथी तो अच्छे ही मिले हैं। कुछ उनमें खिलाड़ी भी हैं जो नियत काल पर घसीट कर भी मुझे हाकी खेलने ले जाते हैं। इसलिए स्वभावतः शारीरिक विकास का पलड़ा बौद्धिक विकास के पलड़े से हलका न रहेगा। प्रातः काल भी एक घण्टे भ्रमण करने गंगा के किनारे जाता हूँ। वहां व्यायाम स्नान आदि कर घर लौटता हूँ। प्रधानाध्यापक तथा अन्य अध्यापकों का मेरे साथ कृपा तथा सहानुभूति पूर्ण व्यवहार है। वे मुझे शिक्षाप्रद या ज्ञानपिपासा को तृप्त करने वाला ही साहित्य पढ़ने की अनुमति देते हैं। मैं भी उनसे निर्दिष्ट पुस्तक ही पुस्तकालय से निकलवा कर पढ़ता हूँ।

वज़न के न बढ़ने के सम्बन्ध में निवेदन है कि मुझे यहां प्रवेश पाने के लिए निस्सन्देह भागीरथप्रयत्न करना पड़ा। यदि ऐसा न करता तो चार सौ में से विज्ञान विभाग के लिए जो केवल पचास छात्र इस वर्ष बाहर से लेने थे उनमें न आ सकता। उसके तुरन्त उपरान्त हमारा शारीरिक निरीक्षण हुआ। मुझे क्षतिपूर्ति के लिए पर्याप्त समय न मिल सका। षाण्मासिक परीक्षोपरान्त होने वाले मैडिकल टैस्ट के परिणाम से आप निश्चय से सन्तुष्ट होंगे। सारांश यह है कि मैंने आपकी शिक्षाएं गांठ बांध ली हैं और सर्व प्रयत्न से शारीरिक, मानसिक और आत्मिक शक्तियों के सामञ्जस्यपूर्ण विकास के लिए सतत उद्योग करता रहूँगा।

पत्र प्रति सप्ताह नियमपूर्वक लिखता रहूँगा ताकि वात्सल्यमूर्ति माता जी के स्नेहार्द्र हृदय को कष्ट न होने पाए। सुरेश और उमेश की बहुत याद आती है। पार्सल से कुछ

खिलौने भेज रहा हूँ उन्हें दे दीजिए। सावित्री और रमेश के लिए 'वीर और वीरांगना' और "हमारे बालक और बालिकाएं" नामक पुस्तकें भेज रहा हूँ। पहुँचते ही सूचित कर दीजिए। पूज्या माता जी को नमस्कार भाई बहिनों को प्यार।

आपका प्रिय पुत्र,

वेद प्रकाश।

४, (विदेशस्थ मित्र के नाम पत्र—भारत में प्रौढ़-शिक्षा योजना के सम्बन्ध में)

डी० ए० वी० कालिज,

जालन्धर।

२५ नवम्बर, १९४९

प्रिय सन्तराम,

सप्रेम नमस्ते। हम सब कुशलपूर्वक हैं आपकी कुशलता के लिए प्रभु से प्रार्थी हैं। १५-११-४९ को आपका पत्र प्राप्त हुआ जिसमें आपने प्रौढ़-शिक्षा योजना के सम्बन्ध में कुछ जिज्ञासा प्रगट की थी।

भारत में स्वतन्त्रता भानु के उदय होते ही सरकार और विचारशील नेताओं को यहां की वास्तविकता दीख पड़ी। वस्तुतः अंग्रेज़ यहां से निकलने से पूर्व देश को पर्याप्त खोखला कर चुके थे। फलतः स्वतन्त्र भारत को विविध समस्याओं का सामना करना पड़ा। उन जटिल समस्याओं में से निरक्षता की भी एक पेचदार उलझन है जिसको न ही शीघ्र सुलझाया जा सकता है और न ही इसकी उपेक्षा ही की जा सकती है। भारत में अभी तक लगभग १२ प्रतिशत ही मनुष्य साक्षर बन पाए हैं। अशिक्षित जाति देश का अधिक कल्याण नहीं कर पाती।

इसलिए आज सरकार की ओर से प्रौढ़ या वयस्क शिक्षा की योजना को पर्याप्त तूल दिया जा रहा है। स्थान-स्थान पर प्रौढ़-शिक्षा केन्द्र खोले गए हैं जिनमें वयस्कों को निःशुल्क शिक्षा दी जाती है। सरकार इसके लिए यथोचित व्यय कर रही है। राष्ट्रीय सभा (कांग्रेस) तथा अन्यान्य आर्यसमाज आदि संस्थाओं का भी इसकी ओर ध्यान आकृष्ट हुआ है। ऐसे अनेक सप्ताह मनाए जा चुके हैं जिनमें शिक्षित व्यक्ति गांवों में जा जाकर अशिक्षित ग्रामीणों को साक्षर बनाने का प्रयत्न करते हैं। नगरों में तो स्थान-स्थान पर रात्रि-वयस्क-शिक्षणालय खुले हुए हैं जिनमें सभी व्यवसाय वाले अशिक्षित बन्धु आकर निःशुल्क शिक्षा ग्रहण करते हैं। इसलिए आशा की जा सकती है कि इस भागीरथ प्रयत्न से देश की अशिक्षितता की गुत्थी कुछ न कुछ तो सुलझ ही पाएगी।

परन्तु सन्त, यह सब कुछ होने पर भी मुझे सन्तोष नहीं। मुझे प्रौढ़-शिक्षा योजना में जो सबसे बड़ी त्रुटि दीखती है वह यह है कि इस साक्षरतामात्र के प्रचार से प्रौढ़ों या वयस्कों को अपने व्यवसाय में सहायता नहीं मिलती। अक्षर ज्ञान के साथ-साथ यदि उनको उनके व्यवसाय के सम्बन्ध में भी विशेषज्ञ कुछ ज्ञान कराएं तो उनके और देश के लिए इस शिक्षा का प्रचार और प्रसार विशेष हितकर सिद्ध हो सकता है। सुना है इङ्गलैण्ड में भी पहिले पर्याप्त निरक्षरता थी और एक सौ वर्ष के उपरान्त अब वहां शतप्रतिशत व्यक्ति शिक्षित हो गए हैं। इस सफलता का रहस्य क्या है? पत्रोत्तर में इस पर अवश्य प्रकाश डालें। शेष आपसे सुनने पर।

आपका अभिन्न हृदय,
सुरेशचन्द्र।

५. (विवाहिता सखी का अपनी विवाहासन्न सहेली को पत्र)

रामनगर, दिल्ली,
२० दिसम्बर, १९३६

प्यारी बहिन सन्तोष,

जय हिन्द।

आज ही आपकी प्यारी-प्यारी पत्रिका—तथा छोटी सी मुद्रित निमन्त्रण-पत्रिका भी हस्तगत हुई। मैं 'शुभ विवाह' के सुनहरी मोटे अक्षरों को पढ़ते ही प्रसन्नता के मारे आपे में न समाई। निमन्त्रण-पत्र के पढ़ने के उपरान्त विविध भाव भरे हृदय से आपकी प्रेमपत्रिका खोली। आपने पूछा था "गृहस्थ आश्रम है या अखाड़ा ?" मुझे खूब हंसी आई आपकी अद्भुत सूझ पर। आजकल हजारों में कोई एक गृहस्थ आश्रम है शेष अखाड़े। उन अखाड़ों के संचालक पति पत्नी होते हैं। वे परस्पर लड़ते रहते हैं। पड़ोसी वही चर्चा चलाते हैं। उनके बच्चे भी मां बाप के वाक्कलह को सुन कर उनके प्रति अनजाने से हृदय में अश्रद्धा के भाव भरते हैं। बहुत हुआ तो झगड़ालू बनने के संस्कार पाल लिए। इस प्रकार यह छूत का रोग आगे से आगे प्रसरित होता रहता है। पर मेरी प्यारी सखी, तुम अपना गृहस्थ लड़ाई झगड़ों का अखाड़ा न बनाना वरन् पवित्र 'शान्ति निकेतन' 'आश्रम' बनाना। तुम पूछोगी यह क्या तुम्हारे हाथ हैं ? मैं उत्तर दूंगी, 'हां'। ८०% घर का सुधार घरवाली के हाथ है। सच तो यह है कि घर-घर नहीं, घरवाली घर है। 'न गृहम् गृहमित्याहुर्गृहिणी गृहमुच्यते।' अच्छा, तो गृहस्थ को आश्रम

बनाने के कुछ सूत्र बता देने के पूर्व, यह बताया चाहती हूँ कि परिवार या गृहस्थ कहते किसे हैं ? एक संस्कृत कवि ने कहा है, "सानन्दं सदनं, सुताश्च सुधियः, कान्ता प्रियालापिनी" अर्थात् वह घर आनन्द भवन है जिसमें मधुरभाषिणी पत्नी और आज्ञाकारी पुत्र हैं। एक पश्चिमी विद्वान् ने भी लिखा है, "कुछ प्राणी एक ही ईंटों के घर में रहने, साथ खाने पीने अथवा उठने बैठने से परिवारी नहीं कहाते। प्रेमपूर्वक व्यवहार, मंगल कामना, सहानुभूति, माता-पिता का आशीर्वाद, पुत्र-स्नेह, संबंधी-प्रेम ही घर को परिवार बनाते हैं।" इन सब बातों का केन्द्र गृहिणी होती है, अतः यदि वह अपने घर को आश्रम या शान्ति-निकेतन बनाया चाहती है तो कुछ बातें हैं जिनसे वह इस उद्देश्य में सफल होती है। जिस घर में आजीवन रहना है उसे शान्ति-निकेतन बनाने की कामना है भी शुभ भावना।

मेरी प्यारी सन्तोष ! अपने घर में कलह के अंकुर न उगने देने के लिए सबसे पहिली बात पत्नी का (१) मधुर भाषिणी होना है। कहा गया है कि तलवार और कुल्हाड़े के घाव तो भर जाते हैं, परन्तु वाणी का घाव नहीं पुरता—वाक्क्षतं न प्ररोहति। इसलिए सखी, ऐसे घाव करके अपने सुखी जीवन को कलह का चिड़ियाघर बनाने की क्या आवश्यकता ?

घर को आश्रम बनाने का दूसरा सूत्र है, (२)'अनुकूल बनो।' इससे अभिप्राय है कि मनचाहे अनुकूल पति या पत्नी के चुनाव पर हमारा 'आदर्श गृहस्थ' इतना निर्भर नहीं जितना कि पति पत्नी का एक दूसरे के अनुकूल बनने पर। सूखी लकड़ी, तुमने झुकाई होगी। वह झुकती नहीं पर टूट जाती है। ऐसे ही जो पति पत्नी अपने स्वभाव को बदल कर एक दूसरे के अनुकूल

नहीं बनाते उनके परिवार सूखी लकड़ी के समान बीच में ही टूट जाते हैं। इङ्गलैण्ड के प्रधान मन्त्री डिजराइली ने अपनी से कहीं अधिक आयु वाली और कुरूपा पत्नी से विवाह किया। उनके बेमेल विवाह को देख लोग मन्त्री का उपहास करते। परन्तु मन्त्री नाट्यगृह में भी अपनी अनुकूल आचरण वाली पत्नी के साथ बड़े गर्व से नाचते। लोग हंसते तो वे गा उठते—"गाते और बजाते चलते जीवन पथ के पार।" तीस वर्षों के सुखद गृहस्थ के उपरान्त जब उनकी धर्मपत्नी का देहान्त हुआ तो वे उसके लिए बहुत रोये।

तीसरा 'आदर्श-गृहस्थ' बनाने का सूत्र है (३) 'आलोचना मत करो।' हम स्वभावतः छिद्रान्वेषिणी बनकर पति या पति के परिवारियों या सम्बन्धियों की कटु आलोचना करने लगती हैं; कलह का धुआं निकलता रहता है। कभी वह चिनगारी प्रचण्ड ज्वाला बनकर सुखद गृहस्थ को भस्मसात् करने का कारण बनती है। इसलिए गृहिणी को व्यंग्य उक्तियों से दूर ही रहना चाहिए।

चौथा सुन्दर गृहस्थ बनाने का मन्त्र है—"निस्स्वार्थ प्रेम करो।' प्रेम में बदला या अहसान जैसी कोई भी वस्तु नहीं आने देनी चाहिए प्रेम से ही पति को जीतो। यह विजय स्थायी और उभयपक्ष सुखद होती है—

"प्रीत जीत सी जीत नहीं धर्म भीति सी भीति।"

पांचवां मूलमन्त्र है 'अपने उत्तरदायित्व को समझना और अपना प्रत्येक कर्तव्य खुशी २ पूरा करना।' क्योंकि पत्नी के अनेक कर्तव्य होते हैं इसलिए उन पर यहां प्रकाश सम्भव नहीं। जब सखी नवीन घर में अंगूर लता के समान फूलने फलने लगेगी तब उनको स्वयं समझेगी। मेरी शुभकामनाएं सदा

तुम्हारे साथ हैं। शशि कुछ दिनों से ज्वरग्रस्त है इसलिए मैं विवाहोत्सव में शायद भाग न ले सकूँ परन्तु जब द्विरागमन के समय तुम नवोढ़ा वधू बनकर कुछ नए अनुभव लिए मैके आओगी, तब मैं तुम से मिलने, बिना बुलाए ही आ जाऊँगी। माता जी को मेरा नमस्कार कह दें।

तुम्हारी सखी,
विमला देवी

६. (माता का पुत्री के नाम पत्र—हिन्दू कोड बिल से हानियाँ व लाभ)

लखनऊ।
१०-१२-४८

आयुष्मती सावित्री,
शुभाशीः।

आज ही प्रातः ८ बजे तुम्हारा पत्र मिला। तुममे हर्ष प्रकट किया था कि भारत के प्रधान मन्त्री पं० जवाहरलाल नेहरू भी हिन्दू कोड बिल के दृढ़ पक्षपाती हैं। इस लिए इसके पास होने में तनिक भी सन्देह नहीं रह जाता। तुमने इस सम्बन्ध में मेरे विचार भी जानने की इच्छा प्रकट की है। मैं कोई विधान-विदुषी तो हूँ नहीं जिसने इसके सब पक्षों पर आलोचनात्मक दृष्टि से विचार किया हो। हाँ, एक सामान्य बुद्धि के नागरिक को 'उसके सम्बन्ध में जो कुछ होने जा रहा हो', उसका थोड़ा बहुत बोध और उसके हित या अहितकर परिणाम का भी अनुमान होना ही चाहिए। ऐसे विवादास्पद विषयों में मत भेद तो स्वाभाविक ही है। इस लिये यदि मेरा तुमसे भी इस

सम्बन्ध में मत भेद हो तो कोई नई बात नहीं। तुम लोग पले आधुनिकतम स्वतन्त्रता के युग में, और हमारे विकास का वातावरण था अपेक्षाकृत संकीर्ण। इस लिये हो सकता है मेरे विचार भी संकीर्ण हों।

अस्तु, सच तो यह है कि न ही कोई वस्तु अतिशय लाभदायक होती है न सर्वथा हानिकारक। जहाँ कुछ दोष होते हैं वहाँ उसमें कुछ अच्छाइयां भी उपलब्ध होती हैं। हिन्दू कोड बिल के भी उज्ज्वल और अन्धकारमय दोनों पार्श्व हैं। तुम पूछोगी यह तो सभी जानते हैं परन्तु अधिक इससे लाभ हैं या हानियाँ ? मैं कहूँगी लाभ और हानियाँ इसके उपयोग के ढंग और भावना पर आश्रित हैं। जिस उद्देश्य से यह विधान सभा के सामने रखा गया है वह तो शताब्दियों से पराश्रित तथा दास महिलासमाज को पुरुषसमाज की समकक्षा में लाना है। यह बात है भी न्याय संगत। आज तक नारी-समाज को स्वार्थी नर-समाज ने अपनी वासना की पूर्ति का साधनमात्र ही समझा। अन्य जड़ सम्पत्ति के समान उसे भी योग्य सामग्रीमात्र माना। उसके सदुपयोग या दुरुपयोग का पूर्ण अधिकार उसके स्वामी को प्राप्त था। समय था जब उसका पढ़ाना भी दोष माना गया था—"स्त्रीशूद्रौ नाधीयाताम्"(स्त्री और शूद्र न पढ़ें।) तुलसीदास के "ढोल गंवार शूद्र अरु नारी, ये सब ताड़न के अधिकारी" वाक्य ने तो पुरुष जाति को नारी जाति के साथ पाशविक अत्याचार करने के लिये और भी उभारा। विचारी अबला करती भी क्या ? एक ओर प्रकृति से अबला दूसरी ओर निस्सहाय ! पैत्रिक सम्पत्ति से उसे वञ्चित तो मनु महाराज ने ही किया था। अब उनके लिये न्यायालय ही कहाँ था जहाँ

उनकी सुनाई होती। "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः" पर तो आचरण बहुत पहिले ही छूट गया था। हिन्दू समाज में लड़की की उत्पत्ति, दहेज के भूत के कारण परिवार पर पड़ा आपत्ति का पहाड़ समझा जाता था। बहुधा पर्याप्त दहेज न दे सकने के कारण उसे बूढ़े, लूले, लंगड़े या अयोग्य पति के गले मढ़ कर मां बाप का पीछा छूट पाता था। यदि पतिदेव विवाह के कुछ ही दिवस के उपरान्त स्वर्ग सिधार गए तो पत्नी पुनर्विवाह न कर पाती थी। ऐसा करने से पिता और पति का कुल दोनों ही नरकभागी समझे जाते थे। हां पतिदेव पहिली पत्नी के रहते भी जितने और विवाह चाहे कर सकता था। इन सब विषमताओं और अन्यायों को दूर करने के लिये विधान सभा में विधि-मन्त्री अम्बेदकर ने यह बिल उपस्थित किया था।

हिन्दू-महिला जगत् की यह समानता और स्वतन्त्रता जो उसे इस बिल के विधान बन जाने से प्राप्त हो सकेगी तभी लाभ-दायक हो सकती है यदि वे इसका सदुपयोग करें। यदि बच्चे को युवक सैनिक के समान ही छुरा और तलवार, या पिस्तौल और बन्दूक दी जाय, और उनके उपयोग की पूरी २ स्वतन्त्रता भी दी जाय, तो औरों को हानि पहुंचाने के पूर्व वह अपना ही विनाश करेगा। ठीक इसी प्रकार हिन्दू महिला भी इस स्वतन्त्रता को पाकर यदि उसका दुरुपयोग कर बैठी तो लाभ के स्थान हानि की ही अधिक सम्भावना है। यदि स्वछन्दता की बलिवेदी पर सतीत्व का बलिदान किया गया तो महिला जगत् दीवालिया हो जाएगा।

पैतृक सम्पत्ति के अधिकार के साथ ही साथ भ्रातृ-भगिनी भाव सदा के लिये प्रस्थान कर जाएगा। एक दूसरे को सन्देह

और ईर्ष्या की दृष्टि से देखने लगेंगे न कि भाई बहिन की।

दोनों को परित्याग का अधिकार मिलने से पति ही अधिकतया पत्नी-त्याग करेगा क्योंकि सन्तानोत्पत्ति के उपरान्त ही तरुणी की रूपश्री मुरझाने लगती है। न्यायालयों में पति पत्नी के तलाक के मुकदमों की खूब ही भरमार रहा करेगी। 'आदर्श गृहस्थ' का तो पुराने इतिहासों या शास्त्रों में ही नाम मिलेगा। 'अर्धाङ्गिनी' और 'गृहिणी' की पावन पदवियों के स्थान 'उच्छृङ्खला' और 'स्वच्छन्दा' नाम से महिला विभूषित की जायगी। सन्तान की क्या दशा होगी यह तो कल्पनातीत ही है। राम, भीष्म, अभिमन्यु और दधीचि के स्थान टौमी (वर्णसंकर) उत्पन्न होंगे।

इस लिये बेटी, मैं तो पुराने विचारों की हूं। मेरे विचार में तो मर्यादा में रहने से ही सुन्दर सृष्टि की कल्पना कुछ समझ में आती है न कि उच्छृङ्खलता और उद्दण्डता प्राप्ति से। हाँ यदि विधान एकपत्नीव्रत और एकपतिव्रत रहने का बने तो परिवार का ढाँचा सुधर सकता है। अच्छा, अभी तो बिल स्थगति ही हो गया है इस लिये इस पर विशेष विचार तो फिर करेंगी। तब तक तुम भी अवकाश में यहीं आओगी।

रेखा रानी तुम्हें बहुत याद करती रहती है।

आपकी स्नेहमयी माता
विद्यावती विशारदा

———

९. (अपरिचित व्यक्ति को पत्र)

दींऊ घाट, सोलन
२-१२-५०

प्रिय महाशय,

नमस्ते !

मेरे मित्र उमाशङ्कर जी से जो आप के 'ईगलनेस्ट' कोठी के किरायेदार हैं, पता लगा है कि आप का विचार 'सोलन' में भी एक कोठी बनाने का है, परन्तु अभी तक कोठी के लिए समुचित स्थान प्राप्त नहीं हो सका। मुझे इस सम्बन्ध में प्रस्ताव करते सङ्कोच अवश्य है परन्तु यदि आप स्वीकार करें तो सोलन के पास ही आधे मील के अन्तर पर 'दींऊघाट' में मेरी 'राम-निकेत' नामक कोठी है जिसे मैं आर्थिक सङ्कट के कारण बेचना चाहता हूँ। यह स्थान स्वास्थ्य और जलवायु के विचार से सोलनभर में अत्युत्तम है। यदि आप को प्रस्ताव स्वीकृत हो तो जब आप कहें मैं आप को कोठी दिखाने के लिए तैयार हूँ। यथोचित मूल्य उसे देख कर ही निर्धारित किया जा सकेगा। इस सम्बन्ध में आप उदयशङ्कर जी से भी विशेष जानकारी प्राप्त कर सकते हैं क्योंकि वे मेरे भी घनिष्ठ मित्र हैं और आप के भी परिचित तथा विश्वासपात्र पड़ोसी हैं।

आशा है शीघ्र ही स्वीकृति या निषेध का उत्तर दे कर कृतार्थ करेंगे।

भवदीय,
कुन्दनसिंह

व्यावहारिक

८. (पुस्तक विक्रेता के नाम भूल सुधार के लिए पत्र)

२६ लोअर बाज़ार,
शिमला,
१२-१२-४६.

मैनेजर,
फ्रेंक ब्रादर्स,
दिल्ली।

प्रिय महाशय,

आपने जो पुस्तकों का बिल भेजा है उस में निबन्धमाला और भेरीनाद पर कमीशन कम काटा है। पिछले वर्ष इण्डियन बुक डिपो ने इन्हीं पर १२% कमीशन काटा था जब कि आप ने केवल ८% ही काटा है। कृपया इसे नये बिल में ठीक करके भेजिए, अन्यथा पार्सल लौटा दिया जाएगा। पार्सल अभी तक डाकखाने में ही अमानत पड़ा है।

उत्तर की प्रतीक्षा में—

आपका
रमेशचन्द्र वर्मा

(पुस्तकें मंगाने के लिए पत्र)

चौड़ा बाज़ार,
लुध्याना,
१-१-५०

सेवा में—
मैनेजर,
यङ्गमैन एण्ड कम्पनी,
प्रकाशक नई सड़क दिल्ली।

प्रिय महाशय,

निम्नलिखित पुस्तकों को उक्त पते पर पार्सल द्वारा उचित कमीशन काट कर यथा शीघ्र भेजने की कृपा करें:—

(१) प्रारम्भिक नागरिक शास्त्र (सजिल्द) १ प्रति

(२) हायर सैकेण्डरी इङ्गलिश १ प्रति

(३) सूचीपत्र ,,

सूचना—पुस्तकों की दशा अच्छी होनी चाहिए नहीं तो मुझे लौटाने के लिए बाधित होना पड़ेगा।

भवदीय

लक्ष्मीचन्द

६. (कपड़ा मंगवाने के लिए पत्र)

मैनेजर

गान्धी-खद्दर-भण्डार,

चांदनी चौक, दिल्ली।

कृपया निम्नलिखित कपड़ों की बिल्टी पत्र पहुँचते ही कर दीजिए। आप के रुपयों का बिल तुरन्त ही चुकता कर बिल्टी छुड़ा ली जाएगी:—

१—दो सौ टोपियां (गान्धी केप्स) बड़े साइज़ की।

२—पचास जोड़े धोतियों के (मर्दाना)

३— ,, ,, ,, (जनाना)

४—बीस थान खादी नं० ६६६६ जवाहर छाप

लक्कड़ बाज़ार
शिमला
२०-१-५०

आप का—
बस्तीराम
क्लाथ मर्चैण्ट

१०. (मिट्टी के तेल के परमिट के लिए स्थानीय अधिकारियों को पत्र)

सेवा में

श्री सिविल सप्लाई आफिसर,

नाहन।

प्रिय महाशय,

सेवा में सविनय निवेदन है कि लगभग तीन चार मास से गुरुकुल फागू में मिट्टी के तेल के बिना ब्रह्मचारियों की पढ़ाई को बड़ी भारी हानि हो रही है। गत दो मास तो बड़ी कठिनाई से पीछे के बचे खुचे तेल से लंघाए और अब हमारे पास एकबूंद भी तेल की शेष नहीं। सात कमरों में छात्र बैठ कर रात्रि को पढ़ते हैं। पाकशाला और पुस्तकालय का तेल का व्यय इस के अतिरिक्त है। इस लिए कृपया प्रति मास के लिए बीस बोतल तेल का परमिट कटवाने की आज्ञा दे कर अनुगृहीत करें।

आपका शुभाकांक्षी,

ति० १५-१-५०. ठाकुर सूरतसिंह सिरमौरिया,

प्रधान गुरुकुल फागू।

११. (पोस्टमास्टर के नाम पत्र मनीआर्डर लौटाने के लिए)

सदर बाज़ार,

फिरोजपुर छावनी

१८-१-५०

सेवा में,

पोस्टमास्टर,

गोल डाकखाना, दिल्ली।

श्रीमान् जी,

मेरे नामका एक पचास ५०)रुपये का मनीआर्डर आपके पास पहुँच चुका या पहुँचने वाला होगा। उस का भेजने वाला सोमप्रकाश गुड़गाँवा निवासी है। मुझे कार्यवश एक मास के लिए यहां आना पड़ा। अतः उसे मेरे ऊपर लिखे पते पर भेजने की कृपा करें। आभारी हूँगा।

भवदीय
वेदप्रकाश वर्मा।

पत्र

१२. बैंक में हिसाब खोलने के लिए

सेवा में--
प्रबन्धक महोदय,
इम्पीरियल बैंक,
नई देहली।

श्रीमान् जी,

मैं आपके बैंक में अपना हिसाब खोलना चाहता हूँ। उसके लिए आपके पास पंजाब नेशनल बैंक लाहौर का "५०८६" नम्बर चैक भेज रहा हूँ। साथ ही अपनी फोटो तथा हस्ताक्षर के नमूने भेज रहा हूँ। कृपया मेरा हिसाब अपने बैंक में चालू कर चैकबुक तथा पास बुक भेज दें।

नई देहली
१२-१२-४६

भवदीय
श्याम बिहारी

१३.(एक पोस्ट आफिस से दूसरे में हिसाब बदलवाने केलिए)

सेवा में--

श्रीयुत पोस्ट मास्टर जी,

गोल डाकखाना, नई देहली।

श्रीमान् जी,

मेरी बदली देहली से शिमला हो गई है। अतः मैं अपना बैंक का हिसाब आपके पोस्ट ऑफिस से यहाँ के पोस्ट ऑफिस में स्थानान्तरित करवाना चाहता हूँ। मेरी पास बुक का नम्बर १८१७०५ है। इस समय मेरे हिसाब में २८६२/८/- हैं।

अपने हस्ताक्षर के नमूने फोटो सहित भेज रहा हूँ। आशा है इस काम में शीघ्रता से कार्रवाई होगी।

भवदीय,

शिमला
१०-१-५०

वेद प्रकाश "चौहान"
१५ माल रोड, शिमला।

१४. (स्टेशन-मास्टर को किसी कर्मचारी द्वारा निकाले घी की शिकायत)

११ श्याम भवन,
नई देहली।
५-१-१९५०

सेवा में--

स्टेशन मास्टर,

देहली जंक्शन।

मान्यवर महोदय,

कल ४-१-५० को मैं ११ बजे की गाड़ी कालका मेल से देहली

आ रहा था। एक बड़ा ट्रंक और एक बड़ा कनस्टर घी का गाड़ी में भीड़ होने के कारण बुक करवा दिये। प्रातः ६॥ बजे जब गाड़ी देहली जंक्शन पर पहुँची और ब्रेक पर सामान लेने गया तो पता चला कि अभी सामान नहीं पहुँचा। मैं घर आ गया और ५ बजे की गाड़ी से सामान निकलवाने के लिए अपने लड़के उमेश को बिल्टी (रेलवे रसीद) देकर जंक्शन पर भेजा। सामान छुड़वा कर जब घर पहुँचा तो हमने घी के कनस्तर की डाट खोलकर देखा तो उसमें से घी निकला पाया। तुलवाने पर पता चला कि तीन सेर घी निकाला गया है। मेरे टिकट का नम्बर १८६० और रेलवे रसीद का नम्बर २८० एस० ता० ४-१-५० था। लड़के को पहिले कनस्तर पर लगी डाट का पता नहीं था इसलिए भूल से रसीद देकर सामान छुड़वा लिया। अब कानूनी कार्रवाई करने की स्थिति में तो नहीं रहा हूँ, परन्तु यदि रेलवे के भ्रष्टाचार को सुधारने की दृष्टि से आप इस मामले में छानबीन कर भ्रष्टाचारी को दण्ड देकर मेरी क्षति पूर्ति करने की कृपा कर सकें तो आभारी हूँगा।

उत्तर की प्रतीक्षा में—

आपका शुभेच्छुक,

लेखराज।

———

१५. (आधुनिक शैली का प्रार्थना-पत्र—कालिज में अध्यापक के स्थान के लिए)

सेवा में—

प्रिंसिपल महोदय,
हिन्दू कालिज,
देहली।

मान्यवर,

२५ मई, १९४९ के दैनिक 'हिन्दुस्तान-टाइम्ज़' के 'आवश्यकता-स्तम्भ, के देखने से विदित हुआ कि आपको अपने कालिज के लिए एक हिन्दी एम० ए० की आवश्यकता है। इस पद के लिए मैं प्रार्थी के रूप में अपने आपको उपस्थित किया चाहता हूँ। अपनी शिक्षा, अध्यापन-अनुभव तथा साहित्यिक अनुसंधान आदि का विवरण भी नीचे दे रहा हूँ:—

१. शिक्षा

(क) एम० ए० (हिन्दी) १९३८ में, इलाहाबाद विश्वविद्यालय से प्रथम श्रेणी में।

(ख) साहित्य-रत्न १९४८ में प्रथम श्रेणी में।

(ग) हिन्दी-प्रभाकर १९४६ में, पंजाब-विश्वविद्यालय से, प्रथम श्रेणी प्रथम।

(घ) एम० ए० (संस्कृत) १९४९ में, देहली यूनिवर्सिटी से प्रथम श्रेणी में।

(ङ) शास्त्री १९३१ में, पंजाब विश्वविद्यालय से, प्रथम श्रेणी में।

२. पाठन-अनुभव

(क) १६३६ से १६४३ तक हिन्दू-विश्वविद्यालय बनारस में हिन्दी-अध्यापक का कार्य किया।

(ख) १६४४ से १६४८ तक हिन्दू कालिज, अमृतसर में 'हिन्दी विभाग' का अध्यक्ष।

(ग) आजकल हंसराज कालिज देहली में हिन्दी-अध्यापक

३. साहित्यिक-अनुसन्धान

(क) 'रस-विमर्श' नामक २०० पृष्ठों की पुस्तक रसों पर १६४६ में प्रकाशित हुई।

(ख) 'अवधी की मूल प्रवृत्ति' नामक पुस्तक १६४७ में बनारस से प्रकशित हुई।

४. खेल

डी० ए० वी० कालिज लाहौर में १६३३-३४ में हाकी फर्स्ट इलेवन का खिलाड़ी रहा।

५. आयु

३६ वर्ष, २ मास।

६. स्वीकार्य वेतन

चार सौ मासिक।

यदि मुझे इस पद पर नियुक्ति का सु-अवसर प्राप्त हुआ तो मैं अपने सर्व प्रयत्न से इसके अनुरूप होने की सतत चेष्टा करता रहूँगा।

सदाचार पत्रों तथा प्रमाण-पत्रों की सम्पुष्ट कापियां साथ में भेज रहा हूँ !

देहली
२८-५-१९४९

भवदीय कृपाभिलाषी,
उमेशचन्द
हंसराज कालिज, देहली।

१६. (नौकरी से त्यागपत्र)

सेवा में—

आचार्य महोदय,
गुरुकुल कांगड़ी।

मान्यवर,

मैं आपकी संस्था में गत सात वर्षों से सप्तम तथा अष्टम कक्षाओं को भूगोल, गणित तथा अंग्रेज़ी विषय पढ़ा रहा हूँ। मेरे विद्यार्थियों के उक्त विषयों में प्रति वर्ष परीक्षा-परिणाम बहुत अच्छे रहते आए हैं। इतने पर भी मेरा वेतन केवल ७० रु० ही हो पाया है। इस महंगाई के काल में मेरा और मुझ पर आश्रितों का इस वेतन से उदरभरण-मात्र भी दूभर हो रहा है। बहुधा वेतन वृद्धि के लिए प्रार्थना-पत्र भेजे परन्तु परिणाम 'वही ढाक के तीन पात' हुआ। विवश होकर मुझे अन्यत्र आजीविका के लिए पूछताछ करनी पड़ी ! भाग्यवश अब मुझे राजकीय हाई स्कूल पटना में स्थान मिल गया है। वहां की कार्यभार संभालने की ता० १०-४-४९ है। अतः कृपया ५-४-४९ तक यहां से मुझे कार्य-मुक्त किया जाय ताकि मैं समय पर अपने नए स्थान पर पहुंच सकूँ।

कांगड़ी
हरिद्वार
५-३-४९

भवदीय,
बिहारीलाल, अध्यापक
गुरुकुल कांगड़ी।

१७. (फुटबाल खेलने का आवेदन-पत्र)

श्रीमान् प्रिंसिपल महोदय,
हिन्दू कालिज देहली।

मान्यवर,

हमारी फुटबाल टीम कल शाम को ताल कटोरा बाग में आपके कालिज की फुटबाल टीम के साथ फुटबाल मैच खेलना चाहती है। ग्राउण्ड की स्वीकृति प्राप्त करली है। आशा है आप हमारी प्रार्थना स्वीकार कर उत्तर से शीघ्र ही अनुगृहीत करेंगे।

देहली
२ मार्च, १९५०

भवदीय,
सुरेशचन्द्र केप्टन, फुटबाल टीम,
हंसराज कालिज,
नई देहली।

१८. (याचना-पत्र)

जलियांवाला बाग,
अमृतसर।
१० फर्वरी, १९४८

श्री रामदेव जी, एम० ए०
अमृतसर।

प्रिय महाशय,

गत आठ मासों से आपसे मेरी 'कृष्णभवन' कोठी का किराया नहीं मिला, जबकि एग्रीमैण्ट के अनुसार किराया प्रतिमास की दस तारीख तक चुकता होना चाहिए था। इस समय तक का किराया ४४० रुपये बनता है। कृपया देखते ही

पत्र के उक्त रकम भेज दें अन्यथा विवश हो न्यायालय की शरण लेनी पड़ेगी।

आपका,
सोमप्रकाश "अग्रवाल"

समाचार पत्र के लिए—

सम्पादक को खुले पत्र

१६. रेलगाड़ियों में चौथा दर्जा न खोला जाय।

मान्य सम्पादक जी!

आपके लोकप्रिय पत्र के द्वारा केन्द्रीय सरकार के रेलवे विभाग का ध्यान मैं उसकी उस विज्ञप्ति की ओर आकर्षित करना चाहता हूँ जिसमें कि उन्होंने एक चौथी क्लास खोलने की चर्चा चलाई है। ई० आई० आर० और ई० पी० आर० की लाइनों पर जो 'जनता' ट्रेन चल रही है उसमें नये माडल के जो डिब्बे सरकार ने लगाए हैं वह सचमुच बहुत अच्छे हैं। हम यह चाहते हैं कि यदि उन चौथे क्लास को चालू करने के बजाय यदि सरकार इसी क्लास की थोड़ी सुविधाएं और बढ़ा दे और इंटर के स्थान पर यही क्लास बने तो जनता को कुछ आजादी का स्वाद मिले।

हमने सुना है कि अमरीका और ब्रिटेन सारे यूरोप के देशों की ट्रेनों में केवल दो ही क्लास हैं और सोवियट रूस में सिर्फ एक ही क्लास है। क्या हमारी सरकार भी दो ही क्लासें नहीं रख सकती? गरीब लोगों को वर्तमान काल की तीसरी क्लासों के चलने से काफी स्थान मिल जाता था क्योंकि मध्यम श्रेणी के नोकरी पेशा दूसरे दर्जे के कमरे में यात्रा

करने लगे थे और अधिक सम्पन्न लोग स्थान रिजर्व करवा कर चलते थे। इस प्रकार तीसरी श्रेणी के यात्रियों को पर्याप्त डिब्बे मिल जाते थे। क्या हम यह आशा करें कि इस श्रेणी के बढ़ाने की बात सरकार स्थगित कर देगी और तीसरी श्रेणी को ही इतना सुविधा-सम्पन्न बना देगी कि नई श्रेणी आरम्भ करने की आवश्यकता ही न पड़े।

—आपका

लखनऊ (जंवल) वैद्य,

१३ नवम्बर, १९४९ (नवयुग से)

२०. कम किराया : अधिक बसें,

भारत की राजधानी में यातायात की असुविधा

प्रिय सम्पादक जी!

दूर रहने वालों को दिल्ली घूमने की इच्छा होना स्वाभाविक है और आजकल जबकि दिल्ली भारत का मस्तिष्क बनी हुई है, विशेष रूप से लोग उसे देखने आते हैं। मैं भी इस भावना से दिल्ली देखने आया परन्तु स्टेशन से उतरने पर जो सब से बड़ी समस्या सामने आई, वह थी यातायात की। मैं समझता था कि बम्बई और कलकत्ता की भांति यहां बसों और ट्रामों की सुविधा होगी। परन्तु भारत की राजधानी में वैसी सुविधा नहीं है—यह बहुत ही आश्चर्य-जनक बात है। स्टेशन पर उतरते ही तांगे और रिक्शे वाले घेर लेते हैं। परन्तु नये मनुष्य से वे इतने पैसे मांगते हैं कि जिन्हें देने में उसे कष्ट ही होता है।

मैंने स्टेशन से बस पकड़नी चाही। घंटों खड़ा रहने पर

जहां मैं जाना चाहता था, वहां के लिए बस नहीं मिली। इसके बाद मुझे कई स्थानों पर यह अनुभव हुआ कि यहां बस सर्विस उतनी सुविधा जनक नहीं जितनी कि होनी चाहिए। यात्रियों को काफी प्रतीक्षा करने पर भी बस में स्थान नहीं मिलता और मन बड़ा कुंठित होता है।

जब सरकार ने यहां की बस सर्विस को अपने हाथ में लिया है तब और भी अच्छा प्रबन्ध होना चाहिए। किराया भी यहां अधिक ही है। सरकार को कम किराये पर अधिक बसें चलाकर राजधानी की शान कायम रखनी चाहिए क्योंकि यहां देश विदेश के सभी लोग आते हैं और जब उन्हें यातायात की ऐसी छोटी असुविधाओं का सामना करना पड़ता होगा तो वे अवश्य यह सोचते होंगे कि यह भारत की राजधानी है या मामूली शहर। इस प्रभाव को लेकर जब वे अपने देश या स्थान में जाते होंगे तो वे भारत की राजधानी की शहरी यातायात की व्यवस्था की अवश्य हंसी उड़ाते होंगे। इस लिए कम किराये पर अधिक बसें चला कर नागरिकों को सुविधा प्रदान करने की व्यवस्था सरकार को करनी चाहिए और इस विषय में उन्हें बम्बई और कलकत्ता जैसे बड़े नगरों की व्यवस्था का अनुसरण करना चाहिए।

बम्बई
१३ नवम्बर १९४९ | —शान्ति लाल दुर्लभ
(नवयुग से)

सूचना :—उक्त दो वास्तविक सम्पादक के नाम के खुले पत्रों के पढ़ने से विदित हो गया होगा कि सम्पादक को सम्बोधित कर जो पत्र समाचार में प्रकाशनार्थ भेजे जाते हैं उनका—

(१) विषय—सार्वजनिक रुचि या हित का होना चाहिए।

(२) भाषा—शिष्ट, सरल और परिष्कृत होनी चाहिए।

(३) पत्र पर हस्ताक्षर अवश्य होना चाहिए परन्तु आपत्तिजनक पत्रों में यदि पत्रलेखक का नाम न देना चाहे तो वह काल्पनिक नाम आदि से काम चला सकता है, परन्तु सम्पादक के पास उसका यथार्थ नाम पहुँचाना आवश्यक होता है ताकि आपत्ति उठने पर वह उत्तरदायी बन सके।

निमन्त्रण-पत्र

२१. (पुत्री के विवाह पर)

ओ३म्

श्रीमान्_____जी

मेरी सुपुत्री

चिरायु कृष्णाकुमारी प्रभाकर

का शुभ विवाह

अम्बाला निवासी श्री लाला मेहरचन्दजी ठेकेदार के सुपुत्र

श्री रमेशचन्द एम० ए०

के साथ

२० जनवरी १९५० तदनुसार ८ माघ २००६ को होना निश्चित हुआ है। आपसे प्रार्थना है कि इस शुभ अवसर पर सपरिवार पधार कर अनुगृहीत करें।

* कार्य-क्रम

प्रीति भोज :—	१६-१-५० मध्याह्नोत्तर ३ बजे
पाणिग्रहण-संस्कार :—	२१-१-५० सायंकाल ७ बजे
बदार :—	२१-१-५०
विदा :—	२२-१-५० प्रातःकाल ६ बजे
शाम भवन (दिल्ली)	दर्शनाभिलाषी
४ जनवरी, १६५०	रामगोपाल चौहान

२२. (पुत्र के विवाह पर निमन्त्रण-पत्र)

श्रीमान् ..... जी

सेवा में निवेदन है कि मेरे पुत्र चिरायु सोमकीर्ति एम० ए०, एल० एल० बी० का शुभ विवाह मेरठ निवासी श्री श्यामचन्द्रजी की सुपुत्री चिरञ्जीव पुष्प-लता साहित्यरत्न के साथ ११ मई, सन् १६४६ को निश्चित हुआ है। अतः आप से सविनय प्रार्थना है कि इस शुभ अवसर पर पधार कर अनुगृहीत करें।

शुभ दर्श प्रतीक्षक है, कृपया, निज दर्श सुधा बरासाइये जू,
कर स्वीकृत नम्र निमन्त्रण को, हिय सेवक हर्ष बढ़ाइये जू।
कर दीन कुटीर सुशोभन को, पद कंज इत परसाइये जू,
करने सब भान्ति कृतार्थ हमें, सकुटुम्ब कृपा कर आइये जू॥

२० महादेव रोड (नई देहली) | दर्शनाभिलाषी
१ मई, १६४६ | सुरेशचन्द्र

---

*कार्य-क्रम कई छपवाते हैं कई नहीं, अतः यह इच्छा पर निर्भर है।

२३. (जलपान का निमन्त्रण-पत्र)

श्रीमान् श्रुतकीर्ति जी,

क्या आप ८ जून की शाम को ६ बजे मेरे कुटीर पर मेरे साथ जलपान का निमन्त्रण स्वीकार करेंगे ? अपनी मित्र-मण्डली के साथ आपको उपस्थित पाकर मुझे अपार हर्ष होगा।

शान्ति कुटीर,
सोलन।
६ जून, १६४८

दर्शनाभिलाषी,
अजय कुमार

२४. (विधेयात्मक उत्तर)

माननीय कुमारजी,

आपके निमन्त्रण के लिये बहुशः धन्यवाद। मैं ८ जून की शाम को ६ बजे अवश्यमेव जलपान में सम्मिलित होकर आनन्द उपलब्ध करूंगा।

२ धर्मपुर
७ जून, १६४८

आपका आज्ञाकारी
श्रुतकीर्ति

२५. (निषेधात्मक उत्तर)

प्रिय कुमार जी,

आपके निमन्त्रण-पत्र के लिये हार्दिक धन्यवाद। खेद के साथ लिखना पड़ता है कि मैं आपके जलपान में सम्मिलित न हो सकने के कारण आनन्द लाभ न कर पाऊंगा। कारण यह है कि उस दिन मुझे गुरुकुल फागू में महर्षि-पुस्तकालय के उद्घाटन-उत्सव में सम्मिलित होना है। उद्घाटन संस्कार मेरे द्वारा ही सम्पन्न होना है। ऐसी परिस्थिति में मैं आपकी आज्ञा

का पालन न कर सकने के लिये अपनी अनुपस्थिति के निमित्त क्षमा प्रार्थना करूंगा।

२ धर्मपुर
७ जून १९४८

आपका आज्ञाकारी
श्रुतकीर्ति

२६. (बरफ के कारखाने को देखने की आज्ञा के लिये प्रार्थना)

बट्लर हायर सैकेण्डरी स्कूल,
नई देहली।
१०, मई, १९४०

श्रीमान् मैनेजर महोदय,
आइस फैक्टरी, सब्जीमण्डी, दिल्ली।

प्रिय महाशय,

हमारे विज्ञान के कुछ विद्यार्थी १२-५-४० को ११ बजे आपकी आइस फैक्टरी देखना चाहते हैं। उत्तर में आज्ञा देकर अनुगृहीत करें।

भवदीय,
प्रिंसिपल

२७. (उत्तर)

आइस फैक्टरी
सब्जी मण्डी, दिल्ली
११-५-४०

प्रिंसिपल महोदय,
बट्लर हायर सैकेण्डरी स्कूल,
नई देहली।

प्रिय महाशय,

१२-५-४० को ११ बजे आपके विज्ञान की छात्रमण्डली को हम सहर्ष आइस फैक्टरी दिखा सकेंगे।

भवदीय,
मैनेजर।

२८. शोक प्रस्ताव

डी० ए० वी० कालिज जालन्धर के अध्यापकों तथा विद्यार्थियों की यह सम्मिलित सभा पण्डित धर्मराज जी एम० ए० की असामयिक मृत्यु पर हार्दिक शोक प्रगट करती है और परमात्मा से प्रार्थना करती है कि वह दिवंगत आत्मा को शान्ति तथा उनके निधन से सन्तप्त उनके परिवारियों और सम्बन्धियों को इस दारुण शोक को सहने की शक्ति और धैर्य प्रदान करे।

जालन्धर
२८ नवम्बर, १९४९

२९. (समाचार-पत्र लगवाने के लिए पत्र)

नाहन
१२-२-५०

सम्पादक महोदय,
"दैनिक अर्जुन"
देहली

श्रीमान् जी,

नमस्ते।

मैं आपके विख्यात पत्र 'दैनिक अर्जुन' का एक वर्ष के लिए ग्राहक बनना चाहती हूँ। कृपया मेरा नाम ग्राहकों की सूची में

का पालन न कर सकने के लिये अपनी अनुपस्थिति के निमित्त क्षमा प्रार्थना करूंगा।

२ धर्मपुर
७ जून १९४८

आपका आज्ञाकारी
श्रुतकीर्ति

२६. (बरफ के कारखाने को देखने की आज्ञा के लिये प्रार्थना)

बट्लर हायर सैकेण्डरी स्कूल,
नई देहली।
१०, मई, १९४०

श्रीमान् मैनेजर महोदय,
आइस फैक्टरी, सब्जीमण्डी, दिल्ली।

प्रिय महाशय,

हमारे विज्ञान के कुछ विद्यार्थी १२-५-४० को ११ बजे आपकी आइस फैक्टरी देखना चाहते हैं। उत्तर में आज्ञा देकर अनुगृहीत करें।

भवदीय,
प्रिंसिपल

२७. (उत्तर)

आइस फैक्टरी
सब्जी मण्डी, दिल्ली
११-५-४०

प्रिंसिपल महोदय,
बट्लर हायर सैकेण्डरी स्कूल,
नई देहली।

लिख लें। पहिले पत्र की बी० पी० पहुँचते ही वर्ष भर का चन्दा मनीआर्डर द्वारा भेज दिया जाएगा।

भवदीय शुभचिन्तिका,
सावित्री देवी
मनोहर कुटी, नाहन।

३०. (शुल्क-क्षमा करवाने के लिए प्रधानाध्यापक को प्रार्थना-पत्र)

सेवा में—

प्रिंसिपल महोदय,
डी० ए० वी० हायर सैकेण्डरी स्कूल,
नई देहली

श्रीमान् जी,

सेवा में सविनय निवेदन है कि मैं पहिले आपके वेयर्ड रोड वाले मिडिल स्कूल में पांचवी से आठवीं तक पढ़ता रहा हूँ। अब अच्छे अंकों से आठवीं कक्षा को उत्तीर्ण कर यहाँ पर नवीं में प्रविष्ट हुआ हूँ। खेलों, आर्यकुमार सभा तथा स्कूल की साहित्य-सभा में मेरा सदा सक्रिय हाथ रहा है। परन्तु दुर्भाग्यवश मेरे घर की आर्थिक स्थिति ऐसी नहीं कि मैं अपनी कक्षा में शुल्क दे सकूं। मेरे पिताजी पी० डब्लू० डी० में दफ़्तरी हैं। उनकी वैतनिक आय महंगाई, आदि सहायताओं सहित ६५ रुपये मासिक है। हम सात भाई बहिनें हैं जिनमें से कमाने योग्य कोई भी नहीं। सब में बड़ा मैं ही हूँ। अतः यदि आप कृपाकर मेरी शुल्क-क्षमा की प्रार्थना स्वीकार करें तो आभारी हूँगा और अपनी पढ़ाई चालू रख सकूंगा।

अपने प्रधानाध्यापक से उपलब्ध आचरण-पत्र साथ भेज रहा हूँ।

आपका कृपाभिलाषी
मनमोहन
नवम कक्षा ('अ' विभाग)

देहली
१६-३-५०

३१. अभिनन्दन पत्र

श्रद्धेय पण्डित विद्याव्रत जी शास्त्री की सेवा में

श्रद्धेय पण्डित जी,

गत आठ वर्षों के सहवास के उपरान्त आज आप हम से पृथक् हो रहे हैं। इस बिछोड़े के अवसर पर स्वभावतः हमारे हृदय व्यथा से भारी हैं। परन्तु यह जानकर कि आप देश-सेवा के पावन-उद्देश्य से प्रेरित होकर यह स्थान त्याग रहे हैं, हम और अधिक ठहराने के लिए अनुनय विनय नहीं किया चाहते। हम जानते हैं हमारा आग्रह आपके सहृदय हृदय को गहरी ठेस पहुंचाएगा परन्तु अपने दृढ़ संकल्प से आपको पराङ्मुख न कर पाएगा।

गुरुवर, आपके गुण हमें कभी भूल नहीं सकेंगे। आपकी पाठन-कुशलता की धाक आपके प्रत्येक शिष्य के हृदय पर अङ्कित है। गहन से गहन भी विषय को जिस निपुणता से आप हस्तामलकवत् स्पष्ट और सुबोध करा देते हैं यह शक्ति हमें किसी विरले ही अध्यापक में मिली है! इसके अतिरिक्त जिज्ञासु छात्रों के लिए आपका द्वार सदा खुला रहा है। इसमें न आपने अपनी सुविधा का ध्यान रखा न अपने स्वास्थ्य का ही। विद्यारत्न को आपने बड़ी ही उदारता से और निःशुल्क

ही सधन, निर्धन तथा आबालवृद्ध नरनारियों में लुटाया। 'प्रौढ़-शिक्षा' प्रणाली को सफल बनाने में आपका महान् भाग रहा है। आपके समय समय पर दिए गए भाषणों से सर्व-साधारण नगर की जनता को महान् लाभ हुआ है। वस्तुतः आप हम सबके लिए एक उज्ज्वलतम ज्ञानदीपक थे जिसकी ज्ञान-लपट से प्रकाश ले लेकर सबने हृदय-मन्दिर प्रकाशित किया। इसके लिए हम सब छात्र व नागरिक आपके सदा आभारी रहेंगे।

आपके जीवन में सौजन्य, विनय और विवेक का ऐसा सुन्दर संमिश्रण हुआ है कि उसकी सामञ्जस्यपूर्ण आभा के सामने इन्द्र धनुष की शोभा भी फीकी पड़ जाती है। आपके व्यक्तित्व और विमल चरित्र का कुछ ऐसा चुम्बक का सा आकर्षण है कि जो भी आपके निकट सम्पर्क में आता है वह सदा के लिए आपका ही बन जाता है। यही कारण है कि आप छात्रों, नागरिकों तथा सभी सामाजिक क्षेत्रों में कार्य कर्ताओं में सर्वप्रिय बने रहे।

आप जा रहे हैं यह हमारा दुर्भाग्य समझिए; परन्तु धन्य हैं वे लोग जिनको आपके सुखद सम्पर्क में आने का सु-अवसर प्राप्त होगा। हमारी मनोकामना यही है कि हम उससे कभी भी वञ्चित न रहें परन्तु सदा सभी की कामनाएं पूरी नहीं हुआ करतीं। आज हमें आपको शरीर से विदा करना पड़ रहा है, पर हमारे हृदय और हार्दिक सहानुभूति सदा आपके साथ हैं। आप जिस देशभक्ति की भावना से जा रहे हैं हम चाहते हैं वह दिन प्रतिदिन बढ़ती और फूलती फलती ही रहे। जिस प्रकार आपके उगाए ज्ञान तरु का हम यहां आस्वादन

करते रहे, इसी प्रकार छात्र-अवस्था के उपरान्त जब हम वृहत् जीवन क्षेत्र में अवतीर्ण होंगे तब भी हमारा पथ प्रदर्शन आप ही कराएंगे। इसलिए गुरुवर, वहां पुनः आपके सम्पर्क की आशा से हम इस वर्तमान के विछोह दुःख को सह्य बनाने का प्रयास करेंगे। हमारी संस्था और हम आपके प्रेम, सहानुभूति और कृपा के पात्र बने रहें यही हमारी कामना है।

अन्त में सहस्रशः शुभ सद्भावनाओं के साथ हम आप से पुनः अपने दर्शनों से इस संस्था को अलंकृत और हमें अनुगृहीत करने की विनम्र प्रार्थना करते हैं।

हम हैं—
आपके वियोग दुःख से दुःखी,
सर्वछात्र,
डी० ए० वी० हा० सै० स्कूल,
नई देहली।

---

३२. (सदाचार-पत्र)

मुझे यह लिखते हुए प्रसन्नता होती है कि विनोदकुमार जिसने कि हमारे स्कूल से मैट्रिक परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की है, बहुत ही होनहार, सदाचारी और कर्तव्यनिष्ठ विद्यार्थी है। पढ़ाई के अतिरिक्त स्कूल के खेलों और अन्यान्य साहित्यिक और सामाजिक कार्यों में भी विनोदकुमार का प्रमुख हाथ हुआ करता था। स्कूल की "हिन्दू" पत्रिका के हिन्दी विभाग का यह २ वर्ष तक सहायक सम्पादक रहा है। मुझे पूर्ण आशा है कि

यह अपने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पूर्ण सफल रहेगा।

जगदीश मित्र
प्रधानाध्यापक
हिन्दू हाई स्कूल
सोनीपत।

३३. (किसी से ऋण लेकर उसकी रसीद)

आज २३ फर्वरी, १६५० वृहस्पतिवार ला० भानुमल सुपुत्र करोड़ीमल राजगढ़ निवासी से ६००) छैः सौ रुपये जिसके आधे ३००) तीन सौ होते हैं १) एक रुपया प्रतिशत मासिक के हिसाब से ऋण रूप में लिए। व्याज प्रतिवर्ष अदा करता रहूँगा और तीसरे वर्ष किश्तों या एक समय ही उक्त निधि अदा कर दूंगा। रुपये नकद प्राप्त किए और रसीद लिख दी ताकि सनद रहे।

हस्ताक्षर साक्षी	हस्ताक्षर प्राप्त कर्ता
(१) शिवराम	रामभज
सुपुत्र	सुपुत्र
मोतीराम	धनीराम (राजगढ़)
(२) ठाकुर बस्तीराम	

३४. (किसी वस्तु के बेचने की रसीद)

आज एक साईकल हरकुलीज नं० ५६२४ रंग काला, साईज दरम्याना, दशा साधारण, खेमसिंह कोहली सुपुत्र ओमप्रकाश कोहली 'खेड़ागढ़ी' निवासी को १५०) डेढ़ सौ रुपयों में जिसके आधे ७५) पचहत्तर रुपये होते हैं, बेच दिया है। उक्त रुपयों की

रकम नकद प्राप्त कर रसीद लिख दी है, ताकि सनद रहे और समय पर काम आए।

हस्ताक्षर साक्षी	हस्ताक्षर
रामचन्द्र वर्मा	रामनाथ
सुपुत्र	अध्यापक खेड़ागढ़ी स्कूल
सोमेश्वरचन्द	ता० ३-३-५०

३५. (किसी उत्तरदायित्वपूर्ण पद की शपथ लेना)

प्रथम राष्ट्रपति श्री राजेन्द्र प्रसाद द्वारा २६ जनवरी ५० को राष्ट्रपति पद को ग्रहण करने पर ली गई शपथ:—

"मैं राजेन्द्र प्रसाद सत्यनिष्ठा से प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं श्रद्धापूर्वक भारत के राष्ट्रपति पद का कार्य पालन (अथवा राष्ट्रपति के कृत्यों का निर्वहन) करूंगा तथा अपनी पूरी योग्यता से संविधान और विधि का परिरक्षण, संरक्षण और प्रतिरक्षण करूंगा और में भारत की जनता और कल्याण में निरत रहूँगा।"

---

३६. (घोषणा निकालना)

गणराज्य की घोषणा

(गवर्नर जनरल श्री चक्रवर्ती-राजगोपालचार्य द्वारा राजभवन के दर्बार हाल में पढ़ी गई ऐतिहासिक घोषणा :—

"चूंकि भारत की जनता ने, भारत को सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य बनाने का दृढ़ निश्चय करके अपनी संविधान सभा में, २६ नवम्बर १९४९ को, भारत का संविधान स्वीकृत किया, बनाया और अपनाया, और चूंकि,

उक्त संविधान में यह घोषित किया गया है कि इंडिया अर्थात् भारत एक राज्य-संघ होगा, जिसमें वे क्षेत्र होंगे, जो अब तक गवर्नरों के प्रान्त, देशी रियासतें और चीफ़ कमिश्नर के प्रान्त कहलाते थे, और चूंकि २६ जनवरी १९५० का यह दिन उक्त बिधान के आरम्भ के लिए निश्चित किया जा चुका है,

इस लिए, अब घोषणा की जाती है कि आज, २६ जनवरी १९५० से इस प्रकार संघबद्ध इण्डिया अर्थात् भारत एक सम्पूर्ण-प्रभुत्व-सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य होगा, और संघ तथा उसके घटक अर्थात् राज्य, उक्त संविधान की व्यवस्थाओं के अनुसार शासन और प्रबन्ध सम्बन्धी समस्त अधिकारों और कर्तव्यों का पालन करेंगे।"

बधाई सन्देश

३७. भारत अध्यक्ष डा० राजेन्द्र प्रसाद को

"भारत के इतिहास के इस स्मरणीय दिवस पर मैं भारतीय जनता को अपनी शुभ कामना भेजता हूँ।

भारत के साथ हमारी परम्परागत सहानुभूति होने के नाते अमरीकी जनता इस अवसर पर अपनी शुभ कामनाएं भेजने के लिए अत्यन्त प्रसन्न है।"

—ट्रूमैन

३८. "मैं भारत और उसके नए अध्यक्ष को अपनी अतीव हार्दिक शुभ कामनाएं समर्पित करता हूँ और मुझे निश्चय है कि इस प्रकार मैं सारी ब्रिटिश जनता और उसकी सरकार की भावनाएं व्यक्त कर रहा हूँ।"

ब्रिटिश हाई कमिश्नर

तृतीय खंड

१. कहानी-लेखन
२. सार-लेखन
३. विस्तार-लेखन
४. अंग्रेज़ी हिन्दी-अनुवाद

कहानी-लेखन

(Story Writing)

मनुष्य जाति की सदा कहानी साहित्य से रुचि रही है। वैदिक काल से लेकर हमारा कहानी साहित्य विकसित होता आ रहा है। हिन्दी में अंग्रेजी शासनकाल से स्वतन्त्र रूप से कहानियां या गल्प लिखे जाने लगे। पहिले घटना प्रधान कहानियां चलीं, फिर चरित्र-प्रधान और आजकल मनोवैज्ञानिक कहानियों का आदर है। परन्तु यहां हमें इन भेदों से विशेष सम्बन्ध नहीं। यहां तो कहानी या गल्प को प्रारम्भ करने के इच्छुकों का पथप्रदर्शन मात्र संभव हो सकता है। परीक्षक भी स्कूल या कालिज के छात्रों से कुछ मोटी-मोटी सुरखियों के आधार पर कहानी लिखने को कहते हैं। प्रेमचन्द के समान उपन्यास या गल्पकार होना तो विद्यार्थी की अपनी रुचि, अभ्यास और प्रतिभा पर आश्रित है।

अस्तु, छोटी-छोटी कहानी या गल्प लिखना 'रचना' सीखने के इच्छुक बालक बालिकाओं के लिए एक सरल और उत्तम उपाय है। इसका कारण यह है कि अन्य रचना के अंगों की अपेक्षा इसका लिखना सुगम और रुचिकर है।

कहानी या गल्प के प्रारम्भकर्त्ता को पहिले शीर्षकों या सुरखियों की सहायता से कहानी लिखनी चाहिए। अभ्यास होने पर किसी विषय पर भी कहानी गढ़ी जा सकती है। यह ध्यान रखना चाहिए कि कुछ कहानियां तो ऐतिहासिक होती हैं और कुछ काल्पनिक। सुरखियों पर कहानी-लेखन के अभ्यास

के समान ही ऐतिहासिक कहानियों का लिखना भी अपेक्षाकृत सरल है। इसलिए इन दो पर पहिले छात्रों को अभ्यास करना चाहिए। उसके उपरान्त स्वतन्त्र कहानी गढ़ने की ओर पदार्पण करना चाहिए।

सब प्रकार की कहानियों का साधारण उद्देश्य मनोरञ्जन है। इसलिए कहानी लिखते समय रुचिकर घटना, भाषा, भाव आदि साधनों से कहानी रुचिकर बनानी चाहिए।

मनोरंजकता के अतिरिक्त प्रत्येक कहानी का कोई उद्देश्य-विशेष होता है, उसे 'शिक्षा' कहते हैं। जिस कहानी से किसी भी प्रकार की शिक्षा या अनुभव नहीं मिलता वह स्थायी मूल्य की कहानी नहीं होती। इसलिए कहानी के अभ्यासी को कहानी लिखने से पूर्व मन में इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वह कहानी में क्या बतलाना या सिखाना चाहता है। वही उस कहानी का उद्देश्य, आदर्श या शिक्षा होगी।

कहानी या गल्प लिखने का प्रकार

(क) आदर्श :—सर्व प्रथम कहानी लेखक को कहानी या गल्प के आदर्श या शिक्षा को सामने रखना चाहिए। क्योंकि फिर उसी के अनुसार ही सारी कहानी गढ़नी है।

(ख) कथानक या ढाँचा:—'आदर्शों' के उपरान्त गल्प की घटनाओं का ढांचा बनाना चाहिए। घटनाएं गल्पभवन के निर्माण की सामग्री हैं। कहानी के प्रारम्भ से पूर्व ही कहानी की सामग्री की जाँच पड़ताल कर घटनाओं को समुचित क्रम देना चाहिए। ढाँचा पहिले ही सोच लेने से लेखक को यह लाभ होता है कि वह विषयान्तर नहीं होगा। ढाँचे की पूर्व निर्धारित रूप रेखाएं उसे इधर उधर भटकने से बचाएंगी। घटनाचक्र

का हृदयग्राही होना बहुत आवश्यक है। इसलिए कथानक की लड़ी में उन्हीं घटनाओं को स्थान मिलना चाहिए जो रुचिकर हों।

(ग) प्रवाहः—कहानी धाराप्रवाह से प्रसरित होनी चाहिए। उसमें कहीं दुरूहता अथवा क्लिष्ट-कल्पना की शिलाएं बाधक नहीं बनने देनी चाहिएं। जिस प्रकार स्वादिष्ट भोजन के सारे स्वाद को दांतों के मध्य में आया हुआ एक छोटा सा कंकर फीका बना देता है, इसी प्रकार घटनाओं के तारतम्य या प्रवाह की बाधा भी कहानी के सारे रस को फीका बना देती है।

(घ) सुशृंखलताः—कहानी लिखते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि भिन्न २ घटनाएं परस्पर सम्बन्धित भी हैं या कहीं विशृङ्खलित तो नहीं हो गईं ? जिस प्रकार शृङ्खला के मध्य से एक गांठ के छूट या टूट जाने से सारी शृङ्खला विशृङ्खलित हो जाती है ऐसे ही कहानी की घटनाओं को क्रमबद्ध न रखने या किसी घटना के छूटने से कहानी भी टूट जाती है। उसका सारा सौन्दर्य ही मारा जाता है। शीर्षकों के आधार पर कहानी का अभ्यास करते समय भी इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि रिक्त स्थानों में घटना-पूर्ति सुसम्बद्ध भी हुई या नहीं। जिस प्रकार भैंस के सींग गाय और गाय के सींग भैंस के सिर पर खप नहीं सकते इसी प्रकार अनुपयुक्त स्थान पर रखी हुई कोई घटना भी शोभा नहीं पाती।

(ङ) शीर्षक :—कहानी के ढांचे के उपरान्त उसके लिये उपयुक्ततम 'शीर्षक' सोच लेना चाहिये। शीर्षक आकर्षक और सारी कहानी का प्रकाशक होना चाहिये।

कहानी के भाग

प्रारम्भ :—(१) प्रारम्भ कहानी का द्वार है। जिस प्रकार उत्सवों के अवसरों पर हम लोगों की दृष्टि को आकर्षित करने के लिये लता, पत्र, पुष्प आदि से द्वार प्रदेश को सजा लेते हैं तथा रात्रि को विद्युत प्रकाश से चकमक चमकीला कर देते हैं ठीक इसी प्रकार गल्प का प्रारम्भ भी जितना आकर्षक हो सके बनाना चाहिये।

पाठक के हृदय को पकड़ने के लिये कौतूहल की सृष्टि करनी चाहिये। यहाँ कहानी का उद्देश्य भी बीजरूप से प्रदर्शित किया जाता है। इससे उसमें पाठक की रुचि बढ़ती है और सारे भेद को जानने की चाह पैदा होती है। वह आगे बढ़े बिना पीछे नहीं मुड़ सकता।

(२) *मध्य* :—मध्यावस्था में जो कुतूहल या आकर्षण उत्पन्न किया गया था, उसे अक्षुण्ण रखना आवश्यक होता है। इसके लिये कुतूहलपूर्ण-घटनाओं का प्रयोग किया जाता है। अन्तिम परिणाम जानने के लिये पाठक चाहे छटपटाता फिरे परन्तु वह गुप्तनिधि रहस्य ही बनी रहनी चाहिये, नहीं तो पाठक की उत्सुकता और कौतूहल की ज्वाला बुझ जायगी और बहुत कुछ सम्भव है कि पाठक प्राप्य वस्तु (परिणाम) को पाकर आगे की कहानी का पढ़ना ही छोड़ बैठे।

(३) *परिणाम*:—परिणाम कहानी की समाप्ति पर अतर्कित रूप से उद्भूत होना चाहिये। ताकि पाठक भौंचक्का सा रह जाय। परन्तु अतर्कित होने पर भी परिणाम घटनाओं के अनुरूप ही होना चाहिये ताकि वह स्वाभाविक दीखे। परिणाम घटना रूपी लता का फल है, जैसे अंगूर की लता पर करेला नहीं खप सकता

इसी प्रकार भिन्न प्रकार के घटना चक्र के उपरान्त भिन्न प्रकार का परिणाम भी अस्वाभाविक और भद्दा लगेगा। संक्षेप से यही कहा जा सकता है कि कहानी की समाप्ति प्रभावोत्पादक रीति से की जानी चाहिये।

निम्नलिखित सुक्तियों के आधार पर सुसम्बद्ध कहानी लिखो :—

१. अभ्यास

एक धनाढ्य व्यापारी घर को लौट रहा था—उसे मार्ग में धन के लोभ से मार दिया—उसका स्वामीभक्त कुत्ता घर—वह न खाता है न पीता—व्यापारी के पुत्र को तालाब पर ले जाता है—खोज प्रारम्भ की गई—मुर्दा प्राप्त—कुत्ते ने एक व्यक्ति को काटा—रहस्य खुला।

एक दिन एक धनाढ्य व्यापारी बहुत सी विक्रेय सामग्री को दूसरे नगर में बेच कर घर लौट रहा था और साथ था एक स्वामीभक्त कुत्ता। मार्ग में एक डाकू ने उस व्यापारी पर आक्रमण किया और उसे यमपुरी पहुंचाया। व्यापारी के पास जो भी धन राशि थी वह उसने ले ली और चल दिया। कुत्ता घर लौटा। उसे खाने को रोटी दी गई परन्तु वह न खाता न पानी पीता। यह देखकर व्यापारी के पुत्र को चिन्ता हुई। वह इसका कारण जानना चाहता था। कुत्ता बार बार उसके पास आता और फिर बाहर चला जाता। वह व्यापारी के लड़के को बाहर ले जाना चाहता था। उसके तीन चार बार ऐसा करने पर आखिर व्यापारी का पुत्र उसके साथ बाहर चल ही दिया। कुत्ता आगे आगे चलता गया। व्यापारी का पुत्र भी उसका पीछा करता रहा। अन्ततोगत्वा वे उसी तालाब पर पहुँचे

जहाँ व्यापारी मारा गया था। खोज की गई। खोज के परिणाम स्वरूप झाड़ियों में छुपाया हुआ मुर्दा मिल गया। बहुत से लोग इकट्ठे हुए। उनमें व्यापारी का हत्यारा भी था। कुत्ते ने उसे सहसा पहिचान लिया और टांग से काट खाया। उसे पकड़ लिया गया और तालाशी से उसके घर से चोरी का सारा सामान निकला।

अभ्यास २

एक निर्धन व्यक्ति के पास बड़ा सुन्दर कुत्ता था—एक धनाढ्य का बच्चा उसके लेने को अड़ा....धन का प्रलोभन—निर्धन का निषेध—कुत्ता बलात् ले जाया गया—निर्धन की पिटाई हुई—दण्ड।

एक निर्धन के पास एक बहुत ही सुन्दर कुत्ता था। वह उससे बहुत प्रेम करता था और साथ ही उसे कई चालें सिखाया करता। कुत्ता उन्हें शीघ्र ही ग्रहण कर लेता। एक दिन एक धनवान् के पुत्र ने उस कुत्ते को देख लिया और उसे खरीद लेने का हठ करने लगा। परन्तु निर्धन उस प्यारे कुत्ते को बेचने का विचार भी नहीं सह सकता था। धनवान् के लड़के ने कीमत को दुगना तिगना कर दिया परन्तु निर्धन ने कोई भी मूल्य स्वीकार न किया।

फिर एक दिन कुत्ता चुराया गया। बिचारे निर्धन को गुण्डों ने मारा पिटा। लहू लुहान हुआ हुआ निर्धन किसी प्रकार अपनी कुटिया में पहुँचा और परमात्मा से प्रार्थना करने लगा। परमात्मा नेउसकी प्रार्थना स्वीकार की।

एक दिन जब धनवान का पुत्र मोटर में सैर कर रहा था, तो

मोटर दुर्घघना से घायल हो गया। उसके सिर में कुछ चोटें आईं और टाँग तो कटवानी ही पड़ी। तीन मास तक वह हस्पताल में ही पड़ा रहा। एक दिन किसी घर को आग लगाते हुए वे गुण्डे भी पुलीस ने पकड़ लिए जिनको कि निर्धन को पीटने के लिए धनाढ्य ने रुपये देकर मंगवाया था। कुत्ता सदा बंधा रहने से उदास रहने लगा और जो चालें व खेल वह जानता उन्हें भी नहीं दिखाता।

धनाढ्य के पुत्र ने अपनी भूल अनुभव की। उसने निर्धन को बुलाया। उससे क्षमा याचना की और विपुल धनराशि के साथ कुत्ता लौटा दिया। स्वामी और सेवक एक दूसरे को मिलकर बहुत प्रसन्न हुए।

(क) नीचे दी हुई घटनाओं तथा लोकोक्तियों के आधार पर कहानियाँ लिखो—

१. एक छात्र ने देर तक निराश रहकर आत्महत्या कर ली!

२. आग से बालक को बचाते हुए एक युवक ने अद्भुत साहस दिखाया।

३. नदी में बहते हुए यात्री को बचाने में एक युवक ने अपने प्राण दे दिये।

(ख) १. शिवा जी की वीरता।

२. अभिमन्यु वध।

३. प्रताप और शक्तिसिंह का मिलाप।

४. भीष्म की शर-शय्या।

५. भीष्मार्जुन युद्ध।

(ग) १. कारज धीरे होत है काहे होत अधीर।
२. करत करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान।
३. आम के आम गुठलियों के दाम।
४. सेवा से मेवा।
५. पहिला सुख नीरोगी काया।
६. दूध का दूध पानी का पानी।
७. आज करन्ता आज कर बहुरि करेगा कब।
८ कर्म प्रधान विश्व रचि राखा।

(घ) निम्नलिखित शीर्षकों के आधार पर कहानी लिखो :—

१. चोरों ने व्यापारी की रुई चुराई—पता न लगा—व्यापारी ने भोज करवाया—सब लोग उपस्थित—भोजन वेला—सब खाने में व्यस्त—व्यापारी सहसा चिल्लाया—चोर की दाढ़ी में तिनका—चोर पकड़ा गया।

२. एक राजा युद्ध में परास्त—शत्रुओं द्वारा पीछा—भाग कर गुफा में छुपना—गुफा के छत में जाकर—एक मकड़ी का बार बार गिरना और चढ़ना—राजा का उत्साह बढ़ा—सफलता

३. भवन बन रहा है—मजदूर हसपताल में—मृत्यु—वारिसों का अभियोग—जज का निर्णय—मालिक बरी।

४. लड़का कुए पर रो रहा था—अंगूठी कूए में—चोर का कारण पूछना— में प्रविष्ट हुआ—बाहर आया—न कपड़े न लड़का।

५. टोपियों का सौदागर—वह सो गया—वृक्ष पर बन्दर—सौदागर उठा—टोपियाँ बन्दरों के सिर—अपनी टोपी भूमि पर पटकी—सब टोपियाँ सन्दूक में डाली और चलता बना।

———

कबूतर का विवाह

लगभग नव्वे वर्ष हो गए।

.....के महाराज कट्ठी घोड़े पर सवार महल की दिशा में आ रहे थे। पगड़ी की रत्नजटित कलगी लहरा रही थी, घोड़ा आंधी के साथ होड़ लगाने पर उतारू जान पड़ता था, परन्तु राजा उस को कसे हुए चले जा रहे थे। स्त्रियां गोखों से राजा के दर्शन करने के लिए इकट्ठी हो रही थीं।

'महाराजाधिराज! एक विनती मेरी सुन ली जाय!' एक अभ्यर्थी सामने आ खड़ा हुआ—हाथ जोड़े, सिर नवाए, कमर झुकाए। फटा अङ्गरखा, फटी धोती, फटा मुड़ासा।

घोड़ा उकताहट में कोलाहल-सा करने लगा। राजा उसे मुश्किल से खड़ा कर पाये।

'क्या विनती है? कहो जल्दी!' राजा ने झल्ला कर कहा।

अभ्यर्थी गिड़गिड़ा कर बोला, 'कुंवारी कन्या घर में सयानी हो गई है, सहायता मिल जाय, दीनबन्धु!'

'दीवान के सामने विनती को पेश करो। हटो मार्ग में से। कहां तक इस तरह की विनतियों को सुनता फिरूं।' राजा मार्ग काट कर घोड़े को नचाते हुए से निकल गए। स्त्रियां दर्शन अच्छी तरह न कर पाईं।

× × ×

अंग्रेजी राज्य अपने चरचराटे पर था। राजाओं की चैन से गुजर रही थी। न पड़ोस का डर, न दूर का भय। पीठ पर अंग्रेजी पल्टनों की रक्षा का हाथ। खजाना मजे में। दीवान, नौकर-चाकर शासन की देख-भाल के लिए। राजा की सेना संख्या अंग्रेजी संधि के कारण बहुत कम कर दी गई थी। परन्तु

कबूतरों की गिनती पर किसी का नियन्त्रण या इजारा न था। राजा ने इतने कबूतर पाल रक्खे थे कि उन की गिनती शायद ही कोई जानता हो। कबूतरों के लालन-पालन, सम्भाल और रक्षण के लिए नौकरों की एक छोटी-सी सेना नियुक्त थी। इन सब के लिए सरकारी बजट पर जिम्मेदारी थी ही। राजा को कबूतरों पर बड़ा स्नेह था, मन के सारे चाव, अर्थात् गायिकाओं इत्यादि से जितने बचते थे, उतने कबूतरों पर बरसाया करते थे। कबूतर और कबूतरी की एक सुन्दर जोड़ी पर वह खास तौर पर लट्टू रहा करते थे।

राजा ने एक दिन ज्योतिषी को बुलाया।

'विवाह का मुहूर्त्त शोधो !' राजा ने आदेश दिया।

ज्योतिषी की बगल में पञ्चाङ्ग कांप गया।

हाथ जोड़ कर ज्योतिषी ने प्रश्न किया, 'किसका, सरकार ?'

'कबूतरों की इस जोड़ी का।' राजा ने उत्तर दिया।

'इनका जन्म कब हुआ था !' ज्योतिषी ने उत्साह के साथ पूछा।

कबूतरों की जन्म-घड़ी का वही-खाता न रक्खे जाने के कारण राजा को खिन्नता हुई। आगे से यथावत् पूरा चिट्ठा रखने का निश्चय किया। परन्तु वर्तमान की समस्या कैसे हल की जाय, यह परेशानी दुःख देने को हुई। राजा सूझ-बूझ वाले थे।

बोले, 'नष्ट जन्मपत्री का पुनरुद्धार कैसे करते हो ? काहे के ज्योतिषी हो तुम ? अनुमान लगाओ और बताओ इन की जन्म-कुण्डली। विवाह जल्दी रचा जाना है। देखते नहीं हो, दोनों सयाने हो गए हैं !'

ज्योतिषी मूर्ख नहीं था ।

बोला, 'सरकार ने ठीक आदेश किया, आधी घड़ी में जन्मपत्री बनाए देता हूँ और विवाह का मुहूर्त्त शोधे देता हूँ।'

ज्योतिषी ने अपनी बात निभाई । जन्मपत्री बन गई और ब्याह का मुहूर्त्त निकाल लिया गया।

राजा ने कबूतरों की उस जोड़ी को आनन्ददायक समाचार सुनाया, 'तुम्हारा ब्याह होने वाला है।'

हर्षध्वनि की उन्होंने—'गुटर गूं ! गुटर गूं !!'

राजा ने प्रसन्नता प्रकट की, 'बरात बनेगी, नृत्य-गान होगा, ठाठ के साथ दावत और फिर भांवर ! समझे !'

उस जोड़ी ने मिल कर और अलग-अलग हर्ष को प्रतिध्वनित किया—'गुटर गूं ! गुटर गूं !!'

× × ×

धूमधाम के साथ बरात सजाई गई—बजट में काफी गुञ्जाइश थी। आतिशबाजी, वेश्याएं, खेलकूद, आमोद प्रमोद—सब का शान के साथ आयोजन। राजा के विनोद का ठिकाना न था। दीवान, दरबारी, नौकर-चाकर सब आनन्द की बाढ़ में। ब्याह के उपलक्ष में गायिकायों, नर्तकियों, भांडों को भरपूर इनाम-इकरामों का वितरण हुआ।

उस अभ्यर्थी ने भी कुछ प्राप्त करने के उपाय किए, परन्तु वह बुद्धि से शून्य था—न गा सकता था, न नाच सकता था, न अच्छे कपड़े पहन सकता था। सो वह कुछ न पा सका।

प्रारम्भिक राह-रस्मों के बाद बरात को भोजन कराया गया। राजा दोनों पक्षों की साध रहे थे। अच्छे अच्छे गाने और नाच हुए। पखावजियों ने गायन और नृत्य की सङ्गति में

अपने जौहर दिखलाये। कबूतर दूल्हा भोजन के समय सोने के पिंजड़े में बन्द था! नृत्य-गान के समय वह पिंजड़े के बाहर निकाल लिया गया और राजा की बगल में बिठला दिया गया। गीत की तान, पैर की रुन-झुन, पखावज की तिकड-धिकट, सारङ्गी की मधुर रूं-रूं और मञ्जीरे की खनखन के बीच राजा को कबूतर दूल्हा के पङ्खों की फड़फड़ और 'गुटर गूं' भली लग रही थी।

भांवर की घड़ी आ गई।

वेदिका तैयार हुई। लम्बी चोटी और लम्बे तिलक वाले पुरोहित विवाह मण्डप में आ बैठे। जहां देखो, वहां रङ्ग-बिरङ्गापना और फूल।

वेदिका की अग्नि प्रज्वलित की गई। समिधाएं और सुगन्धित द्रव्य उस में पड़ने लगे। साथ ही पुरोहितों के कण्ठों से मन्त्रोच्चार होने लगा।

राजा की बगल में कबूतर दुलहिन और कबूतर दूल्हा ला कर बिठला दिये गये थे। राजा के निकट और कोई नहीं बैठा था। बैठ भी कैसे सकता था? विनोद और उत्सुकता में डूबे हुए दर्शक भांवर की प्रतीक्षा कर रहे थे। राजा मसनद और तकिया के सहारे बैठे-बैठे प्रभुता और प्रमोद-भरी आँखों, सजे हुए मण्डप और मण्डप के नीचे रङ्ग-बिरंगेपन में, डूबते उतरा रहे थे।

यकायक जोर की आवाजें एक साथ हुईं—दूल्हे को बिलाव ने पकड़ लिया!'

'छुड़ाओ! मारो!!"

परन्तु बिलाव दूल्हे को अपने जबड़ों में भर कर ऐसा नौ-दो

ग्यारह हुआ कि न उस का पता लगा और न दूल्हा कबूतर का।

दुलहिन कबूतरी अने साथी को अचानक तिरोहित हुआ। देख कर पङ्ख फड़फड़ा रही थी। उस की गुटरगूं बन्द हो गई थी।

(साप्ताहिक अर्जुन से)

---

२. संक्षेप या सार लेखन

१. परिभाषा :—

किसी भी लिखित या उच्चारित सामग्री में से पाठकों के समय को बचाने के उद्देश्य से तत्त्व-मात्र ग्रहण करके उसे तार्किक (logical) क्रम से अपने शब्दों में उपस्थित करने को सार लेखन कहते हैं।

२. अच्छे सार-लेखक की विशेषताएं :—

(१) आशु-निर्णय-शक्ति (quick power of judgment)

(२) अच्छे शब्दों का (भण्डार a Stock of good Vocabulary)

३. संक्षेप से लिखने का अभ्यास।

४. भाषा की धारा-वाहिता (Flow of language)

५. बार बार का अभ्यास।

३. सार-लेखन का उद्देश्य :—यह होता है कि सार-लेखक पाठक के सामने किसी भाषण, लेख या पत्र आदि का ऐसी कुशलता से सार निकाल के रखे कि वह कम से कम काल में बिना किसी आवश्यक या विशेष बात (Point) को छोड़े और अनावश्यक बात को जोड़े वर्णित विषय की जानकारी

हस्तामलकवत् स्पष्टतया करा देता है। सत्सार के गुण निम्न-लिखित होते हैं :—

(क) आवश्यक बातों का ग्रहण या अनावश्यक का परिहार।

(ख) उन आवश्यक बातों का यथा सम्भव संक्षिप्त, स्पष्ट और तार्किक क्रम से अपने शब्दों में प्रकाशन।

४. (क) **सार-लेखन से पूर्व** :—(१) सर्व-प्रथम मुख्य विषय का पता लगाना होता है। बहुधा यह अभ्यास के शीर्षक के रूप में दिया होता है। उस अवस्था में उसे अन्यत्र खोजने की आवश्यकता नहीं रह जाती।

(२) विषय का पता चलने पर सपाटे के साथ अभ्यास को पढ़ कर, अथवा उसके अति विस्तृत होने की अवस्था में उसके विशेष परिच्छेदों (Paras) के पढ़ने मात्र से जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिए।

(३) अभ्यास की कुछ कुछ जानकारी होने के उपरान्त उसका पुनः मनोयोग के साथ अध्ययन करना चाहिए। अब के अध्ययन में इस बात पर विशेष जागरूक दृष्टि रखनी चाहिए कि मुख्य विषय के सम्बन्ध में कौन-कौन सी विशेष उल्लेखनीय बातें कही गई हैं।

(४) एक बार फिर 'अभ्यास' को पढ़ कर पूर्वतः अङ्कित बातों को तार्किक रूप से क्रमबद्ध करना चाहिए। ऐसा करने से आवश्यक बातें छूटने नहीं पाएंगी।

(ख) रफ-सार-लेखन :—(१) उक्त अभ्यास के अध्ययन, मनन और विचारों की कतर छांट के उपरान्त क्रमबद्ध मुख्य २ बातों की रफ समरी बनानी चाहिये। संक्षेप की ओर अभी विशेष ध्यान की आवश्यकता नहीं।

(२) अब रफ-सार प्रारम्भ कर देना चाहिये। जो अनावश्यक बातें आघुसी हों उन्हें निकाल देना चाहिए। यथासम्भव भाषा परिष्कृत और विचार शृङ्खलित होने चाहिएं।

३. अब अपने लिखित रफसार में जो वर्णानुपूर्वी(Spelling) आदि की भूलें रह गई हों उन्हें सुधारना चाहिए।

(४) उसके पश्चात् उपयुक्ततम शीर्षक जोड़ कर पूर्व क्रिया समाप्त हो जाती है और 'रफ-सार' को केवल उतारना ही शेष रह जाता है।

५. सार-लेखन के सामान्य सिद्धान्त :—

(१) कतर छांट :—(Selection) का अभिप्राय है मुख्य वर्णित विषय के सम्बन्ध में कही गई आवश्यक बातों को अनावश्यक विस्तार में से निकाल छोड़ना। अभ्यास के भली भाँति हृदयङ्गम करने पर यह कार्य कठिन नहीं दीखता। आवश्यक बातों के स्पष्टीकरण के निमित्त मौलिक अभ्यास में दिए गए दृष्टान्तों, अलंकारों या उदाहरणों को 'सार' में स्थान देने की आवश्यकता नहीं होती।

(२) (Perspective) मुख्य और गौण बातों में अन्तर स्पष्ट झलकना चाहिए। मुख्य बातों से सम्बद्ध गौण बातें उसी के साथ प्रदर्शित की जानी चाहिएं।

(३) क्रम और परिष्कार :—'सार' में विचारों का तार्किक क्रम से रखना अत्यावश्यक होता है। विचार स्पष्ट और शृङ्खलित रूप से अन्तिम निश्चित परिणाम की ओर अग्रसर होने चाहिएं। इसी में सार-लेखक की कुशलता है।

(४) संक्षेप :—सार का आवश्यक अंग है. परन्तु सार

निकालने का यह अभिप्राय कदापि नहीं होता कि अनावश्यक बातों के साथ आवश्यक भी निकाल दी जाय।

(५) *स्पष्टता* :—सार-लेखन में अस्पष्टता आ जाने से लेखक की अभ्यास के मौलिक भाग को भली भांति हृदयङ्गम करने में असमर्थता समझी जाएगी। इस लिये विचार स्पष्ट, सरल और शुद्ध भाषा में ही प्रकट किए जाने उचित हैं।

(६) *मेल* :—'सार लेखन' पढ़ने में पूर्ण स्वतन्त्र गद्य-भाग सा लगना चाहिए, मानो कोई धारावाहिक कहानी कह रहा हो! सारी मुख्य बातों को यथावत् संतुलित स्थान मिलना चाहिये। बहुधा परीक्षार्थी पहिली बातों में अधिक विस्तार और अन्त में अति संक्षेप करते हैं। इससे वह असंतुलित हो जाता है।

६. सार का सामान्य परिणाम :—जितना पूछा गया हो, अथवा लगभग एक तिहाई।

७. नियम :—(१) 'सार' के अभ्यास का ऐसा शीर्षक चुनना चाहिये जो सारे मौलिक अंश का हृदय या निष्कर्ष कहा जा सके।

(२) प्रारम्भ :—प्रथम वाक्य या परिच्छेद से ही 'सार' के मुख्य विषय का पता लग जाना चाहिये।

(३) विचारों को क्रमशः संख्यांकित कर देना चाहिये ताकि उनको तार्किक और शृङ्खलित रूप से रखा जा सके।

(४) शिष्टाचार या प्रशंसा आदि के लिये प्रयुक्त शब्द-जाल, अवान्तर कहानियों, उदाहरणों, दृष्टान्तों और पुनरुक्तियों का परित्याग करना उचित है।

(५) 'सार' भूतकाल और अन्य (प्रथम) पुरुष में ही लिखना चाहिये।

(६) सार संक्षिप्त, क्रम-बद्ध, सरल और धारावाहिक हो।

(७) इसमें यथासम्भव अपने शब्दों का प्रयोग होना चाहिये।

(८) अपनी टीका टिप्पणी वा सूचना आदि नहीं जोड़नी चाहिये।

(९) लिखते समय—(क) अच्छे चुने हुए शब्दों का प्रयोग करो।

(ख) प्रमुख विचारानुसार अपने सार को अनुच्छेदों (Paras) में बांटो।

(ग) ठीक ठीक स्थान पर विराम चिन्हों का प्रयोग करो और वर्णानुपूर्वी (Spelling) में भूलें न करो।

(घ) सुपाठ्य अक्षरों में लिखो।

(ङ) अन्य (प्रथम) पुरुष का प्रयोग करो।

(च) प्रश्न और विस्मयादि बोधक शब्दों का सरल भाषा में अनुवाद करो।

(१०) आवश्यक बातों को नोट कर लो या रेखाङ्कित।

(११) 'सार' का परिमाण मौलिक भागान्तर्गत मुख्य व गौण बातों; परीक्षार्थी के अभ्यास और परीक्षक के लिखित आदेशों आदि पर निर्भर है।

(१२) 'सार' के पूरे करने पर उसकी पुनरावृत्ति आवश्यक है ताकि रही सही अशुद्धियां या भूलें दूर हों।

अभ्यास

"(१) ईश्वर की सृष्टि विचित्रताओं से भरी है। जितना ही इसे देखते जाइये, इसका अन्वेषण करते जाइए, इसकी छानबीन

करते जाइए, उतनी ही नई शृङ्खलाएं विचित्रता की मिलती जायेंगी। कहाँ एक छोटा सा बीज और कहाँ उससे उत्पन्न एक विशाल वृक्ष! कहाँ बिन्दुमात्र पदार्थ और कहाँ उससे उत्पन्न मनुष्य! दोनों में कितना अंतर और फिर दोनों में कितना घनिष्ट सम्बंध! जरा सोचिए तो सही, एक छोटे से बीज के गर्भ में क्या २ भरा हुआ है। उस नाममात्र के पदार्थ में एक बड़े से बड़े वृक्ष को उत्पन्न करने की शक्ति है जो समय पाकर पत्र, पुष्प, फल से सम्पन्न हो वैसे ही अगणित बीज उत्पन्न करने में समर्थ होता है जैसे बीज से स्वयं उसकी उत्पत्ति हुई थी। कैसे बिंदुमात्र पदार्थ से मनुष्य का शरीर बनता है? कैसे क्रम क्रम से नवजात बालक के अंग पुष्ट हो जाते हैं, उसमें नई शक्ति आती है, उसके मस्तिष्क का विकास होता जाता है, भावनाएं उत्पन्न होती जाती हैं और समय पाकर वह उस शक्ति से सम्पन्न हो जाता है जिससे वह अपनी सी ही सृष्टि की वृद्धि करता जाय। फिर२ एक ही प्रणाली से उत्पन्न अनेक प्राणियों की भिन्नता कैसी आश्चर्यजनक है। कोई बलवान् है तो कोई विचारवान्, कई न्यायशील है तो कोई अत्याचारी, कोई दयामय है तो कोई क्रूरातिक्रूर, कोई सदाचारी है, तो कोई दुराचारी, कोई संस्कार की माया में लिप्त तो कोई परलोक-चिन्ता में रत। पर क्या इन विशेषताओं के बीच कोई सामान्य३ धर्म भी है या नहीं? विचार करके देखिये, सब विचित्र आश्चर्यजनक और कौतूहल वर्द्धक होने पर भी किसी शासक द्वारा निर्वाचित नियमावली से बद्ध है। सब अपने नियमानुसार उत्पन्न होते, बढ़ते, पुष्ट होते और अन्त में उस अवस्था को प्राप्त हो जाते हैं जिसे मृत्यु कहते हैं, पर यहीं उनका समाप्ति नहीं है, यही उनका अन्त नहीं है।

वे सृष्टि के कार्य साधन में निरन्तर तत्पर हैं, मर कर४ भी वे सृष्टि निर्माण में योग देते हैं।"

—महामना पं० मदनमोहन मालवीय

प्रथम अध्ययनः—उक्त अभ्यास के प्रथम बार के सामान्य अध्ययन से ही हमें विदित हुआ कि इसमें सृष्टि की विचित्रता और विविधता का प्रतिपादन किया गया है।

द्वितीय अवधानपूर्ण अध्ययनः—से हम इसके तार्किक विश्लेषण तक पहुँचते हैं। इस अभ्यास के अन्तर्गत विचारों को हम दो भागों में बांट सकते हैं—(१) पूर्वार्ध और (२) उत्तरार्ध।

पूर्वार्ध में ईश्वर की सृष्टि की विचित्रता और उत्तरार्ध में विभिन्नता और विचित्रता होने पर भी एकसूत्रता और एक नियमबद्धता दर्शाई गई है। इसके उपरान्त हम उन मुख्य बातों या विचारों का पता करते हैं जो उक्त दो बातों के सम्बन्ध में कहे गए हैं। इसके लिए हम मुख्य २ तथा नए विचारों पर प्रकाश डालने वाले वाक्यों या वाक्यांशों को इटैलिक कर देते हैं, ताकि इस अध्ययन के फलस्वरूप विदित किए विचारों पर सहसा दृष्टिपात हो सके। इसीलिए उक्त अभ्यास में प्रधान विचारों को इटैलिक किया गया है।

तृतीय अध्ययनः—में प्रमुख विचारों को १-२-३-४ इस प्रकार संख्यांकित किया गया है ताकि सार लिखते समय कोई प्रमुख विचार छूटने न पाए।

उक्त अध्ययनों के परिणाम-स्वरूप 'सार' के लिए हमें

उक्त सन्दर्भ में निम्नलिखित चार बातें ही विशेष रूप से वर्णित मिलती हैं :—

पूर्वार्ध
- (१) ईश्वर की सृष्टि विचित्र और विभिन्न है। इस विचार का विस्तार:—(क) आश्चर्य-जनक जड़ तथा चेतन जगत् का विकासक्रम।
- (ख) अद्भुत मस्तिष्क और उसकी शक्तियों का विकास।
- (२) एक ही प्रणाली से उत्पन्न प्राणी भी भिन्न आकार प्रकार वाले।

उत्तरार्ध
- (३) भेद होने पर भी विकास, ह्रास और नाश के सामान्य नियम में सब बंधे हैं।
- (४) नाश के पीछे फिर जन्म धार कर सृष्टि को चलाने में सहयोग देते हैं।

शीर्षक:—उक्त विचार-तालिका को दृष्टि में रखकर इस अभ्यास के अनेक शीर्षक हो सकते हैं

(१) 'सृष्टि-विचित्रता'

(२) 'सृष्टि-विभिन्नता'

(३) 'विभिन्न सृष्टि की एकसूत्रता,

(४) सृष्टि की विचित्रता, विभिन्नता और एक सूत्रता।

उक्त शीर्षकों में से प्रथम दो लाघवगुण के कारण तो उपादेय अवश्य हैं परन्तु इनमें एकांगी दोष हैं। प्रथम शीर्षक पूर्वार्धमात्र और द्वितीय उत्तरार्धमात्र के विचारों का प्रतिनिधित्व करता है। तीसरा और चौथा शीर्षक सारे अभ्यास का हृदय कहला सकता है क्योंकि यह सारे सन्दर्भ का निष्कर्ष है। अतः इनमें से कोई भी शीर्षक चुना जा सकता है।

'सृष्टि की विचित्रता, विभिन्नता और एक सूत्रता'

प्रभु की इस विचित्र, विभिन्न और फिर भी एकसूत्रता में बंधी सृष्टि को देखकर आश्चर्य ही होता है। इसके जड़ और चेतन जगत् का विकास बड़ा ही कौतूहलपूर्ण है।

एक छोटे से बीज का खाद, जल, धूप आदि साधनों द्वारा उसी प्रकार के असंख्य बीज उपजाने वाले वृक्ष में, और वीर्य की नन्ही सी बून्द का मनुष्य आदि के रूप में तथा शरीर में मस्तिष्क और उसकी विविध शक्तियों का विकास बड़ा ही अद्भुत और आश्चर्यजनक होता है। इस सृष्टि में विभिन्नता इतनी अधिक है कि सजातीय प्राणी भी गुणों में समान नहीं होते और फिर भी उत्पत्ति, विकास, ह्रास और नाश के नियमों में सब समान रूप से बंधे हैं। मृत्यु के उपरान्त भी सृष्टि-प्रवाह के संचालन में सहयोग देने के लिए प्राणी फिर जन्मते हैं।

अभ्यास २

"भाषा के विकास का विवेचन करने से पूर्व यह बताना आवश्यक है कि भाषा है क्या? *'भाषा' शब्द के कई अर्थ हैं।* किसी देश विशेष की भाषा, उदाहरणार्थ चीनी, फारसी, अंग्रेजी आदि। किसी प्रान्त की भाषा उदाहरणार्थ, बिहारी, बंगला, अवधी, ब्रज, राजस्थानी, मराठी, गुजराती आदि। किसी स्थान विशेष की भाषा, उदाहरणार्थ, नागरिक, ग्रामीण, भाषाएं आदि। किसी सम्प्रदाय विशेष की भाषा, जैसे कथक्कड़ी, मधुक्कड़ी, पण्डिताऊ, साहित्यिक आदि। किसी जाति विशेष की भाषा, जैसे गूजरों की भाषा, जाटों की भाषा, कायस्थों की मुन्शियाना जुबान आदि। किसी व्यवसाय विशेष की भाषा, उदाहरणार्थ,

सुनारों, सराफों, तथा अन्य दुकानदारों की भाषाएं। गुप्त अथवा सांकेतिक भाषाएं, तथा ठगों चोरों, स्काउटों आदि की भाषाएं, सी० आई० डी० की भाषा, सांकेतिक भाषा, तार की भाषा आदि; भाषा का कोई विशेष रूप, जैसे साहित्यिक भाषा, सर्वसाधारण की भाषा, परिमार्जित भाषा, गठी हुई भाषा आदि, किसी विषय विशेष की भाषा, तथा रेखागणित की भाषा, मनुष्य मात्र की भाषा इत्यादि। यहां भाषा से हमारा आशय *उसके साधारण अर्थ अर्थात् मनुष्य मात्र की भाषा से है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह सदा अपने मन की बात दूसरों पर प्रगट करने और दूसरों के मन की बात जानने की चेष्टा करता है। वह साधन जिसके द्वारा मनुष्य किसी वस्तु के विषय में मुख से परस्पर बातचीत अथवा भावप्रकाशन करते हैं, भाषा कहलाती है।* जब हमारा किसी बाह्य वस्तु से सम्पर्क होता है, तो एक लहर-सी उत्पन्न होती है जो त्वचा, चक्षु, कर्ण, जिह्वा, नासिका, आदि बाह्य इन्द्रियों द्वारा मस्तिष्क में पहुँचती हैं और हमें एक नवीन प्रकार का अनुभव होता है जिसे हम ध्वनि-संकेतों अथवा शब्दों द्वारा मुख से प्रगट करना चाहते हैं। *ये ध्वनि-संकेत या शब्द ही भाषा और इनके उच्चारण की क्रिया भाषण है।* परन्तु भाषा का पद ग्रहण करने के लिए इनका यों ही पशु-पक्षियों की भांति बोल लेना भर ही पर्याप्त नहीं है, अपितु *इनका सार्थक तथा सप्रयोजन होना भी नितांत आवश्यक है।* अतः भाषा के अन्तर्गत केवल मानव समाज की भाषा ही आसकती है, पशु पक्षियों की भाषा नहीं। *भाषा मनुष्यों को ईश्वर की देन विशेष है।* परन्तु इसके यह अर्थ नहीं है कि भाषा *प्राकृतिक है और उस पर मानव जाति का जन्म सिद्ध अधिकार है।* यदि ऐसा होता तो मानव

समाज से पृथक् रहने वाला जंगली मनुष्य भी प्राकृतिक भाषा सीख जाता, समस्त संसार के प्राणी एक ही भाषा बोलते और बच्चा भिन्न वातावरण अथवा समाज में परिपोषित होने पर भी अन्य भाषा न सीख पाता। परन्तु ऐसा नहीं है। राबिन्सन क्रूसो का 'फ्राइडे' प्रारम्भ में कोई भाषा नहीं बोलता था। संसार में चीनी, जर्मनी आदि अनेक भाषाएं बोली जाती हैं और एक भारतीय शिशु अंग्रेज धाय द्वारा परिपोषित होने पर अंग्रेजी सीखता है, हिन्दी नहीं। हम किसी भी देश या जाति की भाषा अपने पूर्वजों के अनुकरण मात्र से ही सीखते हैं। इस प्रकार *भाषा प्राकृतिक नहीं है* अपितु *मनुष्य की स्वयं अपने प्रयत्न द्वारा अर्जन की हुई वस्तु है*। भाषण के अतिरिक्त भाषा का कोई भी अङ्ग प्राकृतिक नहीं है।"

प्रश्न—उक्त सन्दर्भ का शीर्षक देकर अपने शब्दों में 'सार' लिखो।

भाषा की विशेषताएं

भाषा शब्द के बहुत से अर्थ हैं। भिन्न २ देश, प्रान्त, व्यवसाय, जाति तथा विषय विशेष की भाषाओं के लिए इस शब्द का प्रयोग किया जाता है। परन्तु इस लेख में लेखक ने भाषा का प्रयोग अत्यन्त साधारण अर्थ—'मनुष्य-मात्र की भाषा' में किया है। मनुष्य सामाजिक प्राणी है। वह अपने मन के भावों या विचारों को प्रगट करने के लिए भाषा का प्रयोग करता है। भाषा विचारों और मनोभावों का बाह्यस्वरूपमात्र है। वह किसी न किसी वस्तु के विषय में-चाहे वह भौतिक हो अथवा मानसिक—विचार प्रगट करती है। भाषा प्रकृतिप्रदत्त सम्पत्ति नहीं, वरन् मनुष्य की अपनी उपार्जन की हुई निधि है

जिसे वह अनुकरण द्वारा सीखता है। इसलिए भाषा के लिए समाज का होना अत्यावश्यक है। क्योंकि मानव समाज भाषा का परस्पर विचार-विनिमय अथवा बातचीत के लिए प्रयोग करता है, इसलिए इसका सार्थक होना अनिवार्य है।

३ अभ्यास

"विनय विद्या का आभूषण है। बिना विनय के विद्या शोभा नहीं देती। श्रीमद्भगवद्गीता में ब्राह्मण के विशेषण 'विद्याविनयसम्पन्ने' कहा है। जिस विद्या के साथ विनय नहीं है उस से कोई लाभ नहीं उठा सकता। विनय केवल विद्या को ही नहीं वरन् धन और बल दोनों को ही शोभा देता है। भृगु जी ने विष्णु भगवान के वक्षःस्थल पर लात मारी तब भगवान् पूछने लगे कि महाराज आप के पैर में चोट तो नहीं आई? विनय का क्या ही उत्तम आदर्श है? विनय केवल शिष्टाचार के ही लिए आवश्यक नहीं है, वरन् इस से आत्मा की शुद्धि होती है। विनयशील मनुष्य अभिमान के दोष से बचा रहता है। नम्रभाव दूसरे में प्रेमभाव उत्पन्न करता है और अपने में अपूर्व शान्ति अनुभव कराता है। धन, बल और विद्या के होते हुए भी जो विनय करता है उस को कोई कायर नहीं कह सकता। भयवश विनय आत्मा को गिराती है, किन्तु प्रेम और निरभिमानिता का विनय आत्मा का उत्थान करती है। विनय का अभाव एक प्रकार का खोखलापन प्रकट करता है। जिन लोगों में कोई श्लाघनीय गुण नहीं होता वे अपनी ऐंठ तथा डांट फटकार से लोगों पर प्रभाव जमाते हैं, किन्तु गुणवानों को इस की आवश्यकता नहीं, उन का प्रभाव स्वतः सिद्ध है। यदि विनयशील मनुष्य का समाज में प्रभाव थोड़ा हो तो

विनयशील मनुष्य का दोष नहीं । यह समाज का ही दोष है और इस के अतिरिक्त प्रेम का प्रभाव चाहे थोड़ा हो, दबाव के प्रभाव की अपेक्षा, चिरस्थायी होता है । यद्यपि थोड़ी देर के लिए मान भी लिया जाय कि विनय सब स्थानों में काम नहीं देता (जैसे शत्रु के सन्मुख), तथापि हम को यह कहना पड़ेगा कि विनयशील पुरुष को ऐसे कम अवसर आते हैं । इस के अतिरिक्त जीवन में अधिकांश ऐसे अवसर आते हैं, जिन में विनय से सगौरव कार्यसाधन हो सकता है । खेद तो इस बात का है कि हम लोग मित्र और गुरुजनों के साथ भी विनय का व्यवहार नहीं करते । विनय के साथ निरभिमानिता, मनुष्य जाति का आदर, सहनशीलता इत्यादि अनेक सद्गुण लगे हुए हैं । इस के अभ्यास में इन सब गुणों का अभ्यास हो जाता है ।"

(गुलाबराय एम०ए०)

४ अभ्यास

"इस संविधान में किसी विशेष आर्थिक व्यवस्था का उल्लेख नहीं किया गया है । संविधान में न तो देश को समाजवादी बनाया है और न साम्यवादी । पूञ्जीवादी व्यवस्था भी संविधान में नहीं की गई है । इस संविधान के प्रति की गई समाजवादियों की आलोचना का मूल आधार यही है कि कार्यरूप में इस के द्वारा पूञ्जीवाद का पृष्ठपोषण होता रहेगा । उन का कहना है कि कांग्रेस ने सदा ही कुटीर उद्योगों, खादी और आम जनता का नाम लेते २ भी पूञ्जीपतियों को बल प्रदान किया है । इस प्रकार की आलोचना केवल सहानुभूति की कमी के कारण ही है । विधान में इस प्रकार की पूर्ण

गुञ्जाइश रखी गई है कि जनता की इच्छाओं के अनुकूल देश किसी भी आर्थिक व्यवस्था को अपना सके। यदि अधिकांश जनमत देश में समाजवादी या साम्यवादी अर्थ व्यवस्था चाहता है तो उस जनमत का प्रतिनिधित्व करने वाली सरकार इसी संविधान के ढांचे में रह कर देश में वैसी ही आर्थिक व्यवस्था ला सकती है। वह किसी भी उद्योग का राष्ट्रीयकरण कर सकती है। युक्तप्रान्त में जिस ढङ्ग से ज़मींदारी को उन्मूलन किया जा रहा है वैसे ही अन्य राज्यों में भी सरकार और भूमि जोतने वालों के बीच मध्यवर्त्तियों को हटाया जा सकता है और यदि आम जनता चाहे तो यहाँ भी रूस के ढङ्ग की सामूहिक कृषि की व्यवस्था की जा सकती है। यह एक दुर्भाग्य की बात है कि प्रत्येक देश में किसान के असन्तोष का लाभ उठा कर लोग क्रान्ति किया करते हैं और फिर क्रान्ति के सफल हो जाने पर किसान की वैयक्तिक स्वतन्त्रता छीन कर उसे सामूहिक कृषिशाला में मज़दूर बनने के लिए भेज दिया जाता है। भारत का किसान वैयक्तिक स्वतन्त्रता का सब से बड़ा पक्षपाती है। जिस गति से युक्तप्रान्त में ज़मींदारी उन्मूलन का कार्य चल रहा है, यदि उसी गति से अन्य स्थानों में से भी ज़मींदारियां हटा दी गई तो फिर किसान का असन्तोष तो दूर हो जाएगा और भारत में साम्यवादी अथवा तानाशाही क्रान्ति सफल नहीं हो सकेगी।"

(नवयुग से)

५ अभ्यास

"संस्कृत शिक्षा का प्रबन्ध करने का उद्योग भी हमारे गम्भीर विचार की वस्तु है। भारत की भाषाओं में १५वां और

अन्तिम स्थान संस्कृत को देकर हमने अपनी बुद्धि का दिवाला निकाल दिया है। परिगणना ही करनी थी तो भारत की और संसार भर की प्रथम भाषा संस्कृत को पहला स्थान तो गिनती में देना था। इतने से ही संस्कृत के प्रति कर्तव्य की इतिश्री नहीं हो जाती। संस्कृत के देशव्यापी प्रचार के लिए स्वतन्त्र भारत की सरकार को रचनात्मक कार्यक्रम देश के सामने रखना चाहिये। भारत के प्रान्तों को मिलाने का काम तो हिन्दी से हो जायगा, पर भारत से बाहर सीलोन, स्याम नेपाल आदि समीपवर्ती देशों के साथ सम्बन्ध स्थापन करने के लिए संस्कृत की सहायता लेनी होगी। इन प्रान्तवर्ती देशों में संस्कृत के विशेष प्रचार के लिए एक संस्कृत विश्व-विद्यालय दिल्ली में बनाया जाय जिसका व्यय भारत सरकार वहन करे और स्कूलों में अपर प्राइमरी के बाद से डिग्री परीक्षा तक संस्कृत एक आवश्यक भाषा के रूप में अनिवार्य विषय पाठ्यक्रम में रक्खा जाय। इतना तो सरकार को करना ही चाहिए। प्रत्येक स्नातक के लिए संस्कृतज्ञ होना अनिवार्य हो। संस्कृत में हज़ारों वर्षों से नया साहित्य नहीं बन रहा है। इसके लिए सरकारी व्यय से एक विभाग खोला जावे जो आधुनिक विज्ञान आदि की पुस्तकों का अनुवाद संस्कृत में करके उसके भण्डार को परिपूर्ण करदे। भारत को स्वराज्य और स्वतन्त्रता मिलने पर भी भारत की आद्य और दैवी भाषा संस्कृत यदि उपेक्षित दशा में ही पड़ी रही तो यह हमारे लिए घोर लज्जा की ही बात होगी। विदेशी सरकार के समय में भी संस्कृत का उचित आदर हुआ और उसके छिपे हुए गुणों का बखान हुआ। पर अब तो इस देवभाषा को आदृत और गौरवपूर्ण स्थान मिलना ही चाहिए।"

(इतिहास पत्रिका से)

३. विस्तार (Expansion)

'विस्तार' 'संक्षेप' का विरोधी शब्द है। 'संक्षेप' में अलंकारों, दृष्टान्तों, उदाहरणों आदि के विस्तार का परिहार कर केवल मुख्य विचारों को ही सुशृङ्खलित रूप से अपने शब्दों में पाठक के सम्मुख उपस्थित किया जाता है। परन्तु विस्तार में सारगर्भित कोई वाक्यांश, वाक्य या उक्ति विस्तार-पूर्वक स्पष्टीकरण के लिए दी जाती है। 'संक्षेप' या 'सार' के विरुद्ध इसमें दिए हुए संक्षिप्त भाव के विशदीकरण के लिए युक्तियों, प्रमाणों, उदाहरणों दृष्टान्तों तथा अन्यान्य अलंकार आदि उपायों का प्रयोग किया जाता है। दूसरे शब्दों में हम यों कह सकते हैं कि जिस प्रकार 'सार' या 'संक्षेप' में मुख्य बातों के चारों ओर स्पष्टीकरण या विशदीकरण के लिए प्रयोग की हुई बातों के पर्दों को निकाल निकाल कर हम मुख्य विचारों का अस्थि-पंजर ही बचा छोड़ते हैं, ठीक इसके विपरीत विस्तार में उस नग्न मुख्य विचार रूपी पंजर को मांसल बनाने के लिए उन पर्दों को पुनः उस नग्न-विचार पंजर को ओढ़ाते चलते हैं।

विस्तार का कितना परिमाण होना चाहिए इसका कोई निश्चित नियम नहीं, तथापि साधारणतया यह कहा जा सकता है कि विस्तार न तो 'सार' के समान संक्षिप्त ही होता है और न प्रस्ताव के समान विस्तृत। वरन इन दोनों के मध्य का परिमाण विस्तार का परिमाण समझना चाहिए। विस्तार का परिमाण असंगत कथा कहानियों या असंगत बातों से पूरा नहीं किया जाता वरन् मुख्य विचार को विशद करने के लिए दृढ़ युक्तियां, ठोस विचार, संयत और परिष्कृत भाषा तथा उन्नत शैली का

प्रयोग किया जाता है। उदाहरण और दृष्टान्तों की ओर तो संकेत मात्र ही पर्याप्त होता है। शेष सारा कलेवर गम्भीर तथा प्रासंगिक विचारों से ही पूरा किया जाना चाहिए। धारा-प्रवाहिता 'विस्तार' में विशेष आदरणीय होती है। 'धारा-प्रवाह' के लिए विचारों का क्रमबद्ध और शृङ्खलित होना अनिवार्य है।

विस्तार के सम्बन्ध में कुछ ध्यान देने योग्य बातें—

(क) लिखने से पूर्व विस्तार के लिए नियत किए गए अभ्यास की प्रवृत्ति और भाव भली भान्ति समझ लेने चाहिएं, अन्यथा विषयान्तर होने की बड़ी सम्भावना बनी रहती है। जिस प्रकार चौराहे का पथभ्रष्ट व्यक्ति जितना ही आगे बढ़ता है उतना ही अपने प्राप्य-स्थान से दूर छूटता जाता है, ठीक ऐसे ही प्रारम्भ से विपरीत समझा हुआ विस्तार-लेखक कहीं का कहीं जा पहुँचता है। इसलिए विस्तार के विषय का ठीक तात्पर्य समझ कर ही लिखने में प्रवृत्त होना चाहिए।

(ख) विचार क्रमशः विकसित होने चाहिएं ताकि उनकी शृङ्खला टूटने न पाए।

(ग) भाव के स्पष्टीकरण और विशदीकरण के लिए प्रमाणों, युक्तियों, उदाहरणों, अलंकारों तथा दृष्टान्तों आदि का सहारा लेना चाहिए।

(घ) विस्तार का प्रारम्भ और अन्त विशेष आकर्षक होना चाहिए।

(ङ) विस्तार की समाप्ति पर अपूर्णता नहीं झलकनी चाहिए अर्थात् विचार-धारा क्रमशः उठती हुई समाप्ति पर अपने मुख्य विस्तार्य भाव को सर्वथा संस्थापित करने में समर्थ दीखनी

चाहिए। सारे कथन का अन्तिम परिणाम वही मुख्य भाव निकलना चाहिए जो विस्तार के अभ्यास वाले शब्दों में निहित है।

(च) लिखने के उपरान्त विस्तार की पुनरावृत्ति करनी चाहिए, ताकि रही सही भूलें दूर की जा सकें।

अभ्यास

जहां चाह तहां राह

'जहां चाह तहां राह' यह एक बड़ा ही सुन्दर सिद्धान्त और नियम है। सचमुच जो किसी वस्तु की दृढ़ कामना या संकल्प करता है, उसको बीहड़ कण्टकाकीर्ण वन में भी पथ मिल ही जाता है और वह अपने लक्ष्यस्थल पर पहुंचे बिना नहीं रह सकता। इस छोटी सी उक्ति में आशा और उत्साह का महान् सन्देश निहित है। इच्छा और दृढ़ संकल्प के बिना उद्योग की भट्टी सुलग ही नहीं पाती। उद्योग के बिना 'सफलता' प्राप्ति आकाश में पुष्प खिलने के समान असम्भव है। हम में से अनेकों व्यक्ति प्रतिभा और बुद्धि के धनी हैं परन्तु बिना उद्योग किए सफल नहीं हो पाते। इसलिए सफलता के लिए दृढ़ संकल्प और इच्छा शक्ति के साथ परिश्रम और उद्योग का गठबन्धन अवश्य होना चाहिए। उद्योग-विहीन चाह सफलता की राह नहीं सुलझा सकती। 'चाहो पर करो' यही सफलता का मूल मन्त्र है। जिस प्रकार उद्योग विहीन चाह की जड़ें जग में गड़ने ही नहीं पाती, इसी प्रकार संकल्प रहित उद्योग में से भी उत्साह की चिनगियां नहीं निकलतीं। अन्ततोगत्वा वह उत्साह और संकल्प विहोन उद्योग ठण्डा पड़ जाता है।

निःसन्देह सफलता का बीज चाह में निहित है। इस चाह के बिना संसार अस्तव्यस्त हो सकता है। चाह से प्रेरित प्राणी अपनी अपनी धुन में लीन दृष्टिगोचर होते हैं। विद्यार्थी दिन रात परिश्रम करता चलता है—क्यों ? क्योंकि वह परीक्षा में सफलता चाहता है। एक सैनिक प्राणों की बाजी लगाकर घातक शत्रु द्वारा प्रयोग किए शस्त्रों का भय न करता हुआ शत्रुदल में प्रवेश करता है। किस लिए ? युद्ध में विजय-प्राप्ति की इच्छा से। फसल प्राप्ति की इच्छा का अंकुर किसान को इतना बेचैन बना देता है कि वह जेठ की धूप, पोह की ठण्डक और सावन भादों की वर्षा की झड़ी की चिन्ता न करता हुआ सदा खेत में काम करता हुआ दृष्टिगोचर होता है। तार, टेलीफोन, वायुयान और अन्यान्य आधुनिकतम वैज्ञानिक आविष्कार इच्छा के ही परिणाम हैं। और पीछे चलिए तो महाभारत में इच्छाशक्ति का चमत्कार और भी स्पष्टतया दृष्टिगोचर होगा। एकलव्य की उग्र इच्छा थी कि अस्त्रशिक्षा में निपुण हो जाय। गुरुवर द्रोणाचार्य के चरणों में पहुँचा। शस्त्रास्त्र सिखाने के लिए नम्र निवेदन किया, परन्तु प्रार्थना स्वीकार न हुई। क्या वह अपना संकल्प छोड़कर बैठ गया ? नहीं, वह दृढ़ संकल्प हृदय में जमाकर वन में गया। वहां स्वयं अस्त्रों का अभ्यास किया। गुरु के बिना अनेक असफलताओं ने निरुत्साह करना चाहा परन्तु दृढ़ संकल्प का इञ्जन 'पुनः करो उद्योग' की ओर धकेलता रहा। अन्त में मिला क्या ? पूर्ण सफलता ! वह सफलता जिससे द्रोण और अर्जुन भी ईर्ष्या करने लगे। इसी प्रकार डेमोस्थनीज़ चाहता था कि अच्छा वक्ता बने। परन्तु धीमी आवाज़ और भद्दे संकेतों से कोई कल्पना भी नहीं कर पाता था कि वह सतत

अभ्यास से इतना प्रभावशाली सुवक्ता बनेगा जैसा कि वह बना। यही रहस्य हिटलर तथा मुसोलिनी के सुवक्ता होने का है।

दृढ़ संकल्प वाला व्यक्ति कभी विघ्नबाधाओं से नहीं घबराता जितनी ही अधिक आपदाएं आकर उसके मार्ग को रोका चाहती हैं, उतना ही अधिक वह उत्साहित और स्फूर्ति सम्पन्न बनता है। विचारी आपदाएं निराश हो मार्ग दे देती हैं। आस्ट्रिया पर विजय प्राप्ति के इच्छुक नैपोलियन ने सेना को प्रस्थान करने का आदेश दिया। आगे ऐल्पस का ऊंचा हिमाच्छन्न पहाड़ अड़ गया। इञ्जनीयर ने जवाब दिया कि इधर से मार्ग कठिन है। नैपोलियन ने कहा—'केवल कठिन ही, असम्भव तो नहीं ?' "असम्भव तो नहीं" "तो क्यों न नैपोलियन ही कठिन को सुगम बनाए ?" सेना ने प्रस्थान किया। पर्याप्त क्षति के उपरान्त विजयश्री साहसी योद्धा को मिलनी ही थी। इस चाह और उद्योग ने एक साधारण से व्यक्ति शिवाजी को राजा बना दिया।

चाह अच्छी होनी चाहिए। बुरी चाह से हानि के अतिरिक्त कोई लाभ नहीं। दूसरे चाह अपनी योग्यता के अनुसार होनी चाहिए।

संसार में जितने भी अच्छे काम हुए हैं वे सभी दृढ़प्रतिज्ञ महापुरुषों की चाह के फल हैं। हममें से कई हीन-स्मृति, क्षीण-शरीर या धनहीनता आदि के कारण उन्नति के शिखर तक भले ही न पहुंच सकें, परन्तु किसी स्तर तक तो अवश्य ही पहुँच रहेंगे। जो पूर्ण असफल रहते हैं वे इच्छा शक्ति के दीवालिए समझने चाहिएं। इसलिए सफलता की कुञ्जी चाह है। जहां चाह है वहां राह निकले बिना रह नहीं सकती।

"Where there is a will there is a way" जहां चाह तहां राह।

अभ्यास

१. अब पछताये होत क्या जब चिड़िया चुग गई खेत।
२. अपनी करनी पार उतरनी।
३. कहने से करना भला।
४. कारज धीरे होत है, काहे होत अधीर।
५. बून्द बून्द से घट भरे।
६. जिसकी लाठी उसकी भैंस।
७. मनुष्य परिस्थियों का दास है।
८. वीरभोग्या वसुन्धरा।
९. महापुरुषों के जीवन ही उस देश का इतिहास हैं।
१०. आवश्यकता आविष्कार की जननी है।
११. नीम हकीम खतरे जान।
१२. अच्छी पुस्तकें ही सच्चे मित्र हैं।
१३. राज्य मांगा नहीं, लिया जाता है।
१४. कला कला के लिए।
१५. चरित्र सभी उन्नतियों की नींव है।

---

४. अनुवाद-लेखन

आवश्यकता :—कहा जाता है कि विश्वभर के सत्साहित्य का अंग्रेजो भाषा में अनुवाद हो चुका है। उदाहरणार्थ संस्कृत के वैदिक साहित्य से लेकर विशाखदत्त रचित मुद्राराक्षस तक के अनुवाद अंग्रेजो में सुलभ हैं। इस प्रकार से

अंग्रेजी भाषा का भण्डार सत्साहित्य से भरपूर है। इसके अतिरिक्त अंग्रेजी विश्वभाषा है। विश्वभर के व्यापक प्रभाव वाले सुविख्यात पुरुषों की कृतियां अंग्रेजी में ही उपलब्ध होती हैं। इसलिए यदि हम हिन्दी भाषा को भी सामयिक विविध साहित्य से भरना चाहते हैं तो अंग्रेजी से हिन्दी में अनुवाद करने का अभ्यास अवश्य बढ़ाना चाहिए। शताब्दियों से भारत अंग्रेजी शासन में रहा। इस काल के न्यायालयों, विश्वविद्यालयों, म्युनिसिपल्टियों तथा यातायात आदि सभी विभागों में अंग्रेजी में ही काम होता रहा। यदि हम हिन्दी को राष्ट्रभाषा घोषित करते हैं तो उसमें राष्ट्र के आवश्यक महकमों का रिकार्ड अवश्य होना चाहिए। इसलिए अंग्रेजी से सफलता पूर्वक हिन्दी में अनुवाद करने का अभ्यास मातृभाषा की सेवा करना है। सफल अनुवादक को निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना चाहिए :—

(१) **अभ्यास :**—अनुवाद के लिए अभ्यास की बड़ी आवश्यकता है। प्रतिदिन कुछ न कुछ अंग्रेजी से हिन्दी में अनूदित करते ही रहना चाहिए।

(२) **पर्यायवाची शब्द :**—अंग्रेजी के समाचार-पत्र, या किसी विषय पर कोई पुस्तक पढ़ते हुए उसके विशेष २ शब्दों को नोट कर लेना चाहिए और उसके हिन्दी पर्यायवाची शब्द सोच या पूछ कर लिख लेने चाहिए। कुछ ही काल में व्यवहार में आने वाले सभी अंग्रेजी शब्दों के पर्यायवाची हिन्दी शब्दों को हम जान जाएंगे और अनुवाद करते हुए कोई कठिनाई न पड़ेगी। पारिभाषिक शब्दों का अंग्रेजी हिन्दी कोष अवश्य अपने पास रखना चाहिए।

(३) **बन्धन और उसका भंग** :—अनुवाद में अनुवादक को अनुवाद्य अंश के भावों और विचारों को बदलने का तनिक भी अधिकार नहीं। अनुवाद्य और अनुवाद के भाव (Sense) में अन्तर का अभिप्राय अनुवादक की असफलता है। परन्तु क्योंकि दोनों अनुवाद्य और अनुवाद की भाषाओं के व्याकरण भिन्न भिन्न होते हैं, इसलिए निम्नलिखित बातों में अन्तर अनिवार्य होता है :—

(क) *क्रम* :—कर्ता, कर्म और क्रिया आदि का क्रम प्रायः हिन्दी और अंग्रेजी का भिन्न भिन्न होता है, अतः उसमें अन्तर अनिवार्य है। जैसे 'He१ runs२ fast३' का यदि उसी क्रम से हिन्दी में अनुवाद किया जाय तो—'वह दौड़ता है जल्दी' होगा जो सर्वथा भद्दा दीखता है। इसलिए इसका शुद्ध अनुवाद 'वह१ जल्दी२ दौड़ता३ है' होगा।

(ख) *वचन और लिङ्ग* :—अंग्रेजी भाषा में जहाँ प्रतिष्ठित और सामान्य सब के लिए एक वचन या बहुवचन का प्रयोग बिना किसी भेद भाव के किया जाएगा, वहां हिन्दी में हम छोटे बड़े, या प्रतिष्ठित और अप्रतिष्ठित का ध्यान रखकर एक या बहुवचन का प्रयोग करेंगे। जैसे My Father is coming के is का हम बहुवचन में अनुवाद करेंगे क्योंकि पिताजी हमारे लिए आदरणीय हैं—'मेरे पिता जी आरहे हैं।' इसी प्रकार हिन्दी में विशेषण और क्रिया आदि का लिङ्ग संज्ञा और कर्ता के अनुसार होगा :—

He is a good boy—वह एक अच्छा लड़का है।
She is a good girl—वह एक अच्छी लड़की है।
He goes—वह जाता है।

She goes—वह जाती है।

(ग) *लोकोक्तियां व वाग्धारा (मुहावरे)* :—लोकोक्तियों और वाग्धारा का शब्दानुवाद करना बड़ी भूल है। इसलिए उसी भाव की प्रकाशक हिन्दी की लोकोक्ति व वाग्धारा द्वारा उसका अनुवाद करना उचित है! जैसे—

Rainy day को 'वर्षा का दिन' न कहकर 'आपत्काल' कहेंगे। A figure among cyphers का शुद्ध अनुवाद 'अन्धों में काना राजा' होगा।

(घ) *लम्बे या छोटे वाक्य* :—अनुवादक को छोटे वाक्यों को एक ही बड़े संयुक्त या मिश्रित वाक्य में अथवा बड़े वाक्य का कई सरल वाक्यों में अनुवाद करने का अधिकार प्राप्त है। इसलिए जिसमें भी वह अधिक सफलता प्राप्ति की आशा रखे, वही करे।

४. अनुवाद में न अपनी ओर से कुछ जोड़े न अनुवाद्य में से कुछ छोड़े।

५. दोनों भाषाओं की प्रकृति को दृष्टि में रखकर ही अनुवाद करे।

६. जबतक अनुवाद्य अंश भली भाँति पढ़कर हृदयङ्गम न हो जाय तब तक लिखने बैठना भूल है।

७. सफल अनुवाद से एक मौलिक रचना का सा आभास मिलना चाहिए।

८. प्रथम बार रफ करके फिर उसे संशोधित करके सुलेख में लिखना चाहिए।

Exercise 1
"THE HOPE OF THE PEASANT

But, at long last, there came a glimmering of hope for him (the peasant) a whisper of better times and lighter burdens. A little man came who looked straight in his eyes, and deep down into his shrunken heart and sensed his long agony. And there was magic in that look, and a fire in his touch, and in his voice there was understanding and a yearing and abounding love and faithfulness unto death. And when the peasant and the worker and all those who were down trodden saw him and heard him, their dead hearts woke to life and thrilled and a strange hope rose in them and they prepared to march out of their valley of suffering."

कृषक की आशा

परन्तु चिरकाल के उपरान्त उस (कृषक) के हृदय में एक धुंधली सी आशाकिरण, और कानों में भावी शुभ समय और हलके भार की गुनगुनाहट पड़ी। एक सुतनुकाय व्यक्ति आया जिसने सीधा इसकी अन्दर धंसी हुई आँखों और संकीर्ण हृदय के अन्तस्तल में दृष्टिपात करके उसकी चिरवेदना का पता लगाया। उसकी दृष्टि में जादू, स्पर्श में प्रबल उत्साह, स्वर में प्रबोध और उत्कण्ठा, तथा प्रचुर प्रेम और आमरण सत्यसन्धता

थी। जब किसान, श्रमजीवी तथा अन्यान्य पद-दलित व्यक्तियों ने इन्हें देखा और सुना, उनके मृतप्राय हृदय सजीव हो उठे तथा उनमें उत्तेजना और अद्भुत आशा सजग हो गई और वे हर्ष से "महात्मा गान्धी की जय" घोष करते हुए अपनी कष्ट-घाटी से बाहर प्रस्थान करने के लिये प्रस्तुत हो गए।

अभ्यास २

"I tell you what's man's supreme vocation,
Before me was no world, 'tis my creation.
'T was I who raised the sun from out the sea
The moon began her changeful course with me."
(Goethe)

"मैं तुम्हें बताता हूँ कि मनुष्य का परम व्यवसाय क्या है, मुझ से पूर्व कोई जगत नहीं था। यह मेरी सृष्टि है। वह मैं ही था जिसने सूर्य को समुद्र से निकाल कर प्रकट किया, और चन्द्र ने अपनी परिवर्तनशील गति मेरे ही साथ प्रारम्भ की।"

"Honour and disgrace from no condition rise,
Act well your part, there all the honour lies."

"मान और अपमान की उत्पत्ति किसी दशाविशेष से नहीं होती, अपना कर्तव्य भली भान्ति निवाहो, इसी में सारा सम्मान निहित है।"

Exercise 3

Once there were three artists who competed for a prize. One of them painted a wreath of flowers so beautifully that a bee came and settled on the picture, thinking that the

flowers were real. The second painted a basket of apples so well that an ox tried to seize some of them. The third painted a curtain and when the three pictures were placed before the judge, he tried to raise the curtain thinking that the picture was adjudged to be the best, as it had deceived a man, whilst the others had deceived only an animal and an insect.

Exercise 4

In Kashi there lived a Brahman named Bhargava. Though pressed by his father he did not acquire knowledge in his youth, Afterwards he felt sorry and went to the bank of the Ganges to perform penance in order to acquire knowledge. Indra went near him in the disguise of a Brahman and began to throw sand into river. Bhargava asked him the meaning of what he was doing. Indra replied, 'I am building a bridge.' Bhargava said, 'Oh, you cannot succeed in your object in this way.' Indra replied, 'If I cannot build a bridge by throwing sand into the river, how can you expect to acquire knowledge by performing penance? Thus addressed, Bhargava ceased from austerities?

Exercise 5
A NOBLE WORKMAN

A workman was once asked by his master. What he did with his wages. "Half I spend, a fourth I lend and with a fourth I pay old debts," was the reply. His master was puzzled with the reply and aksed him to explain. "Well," was the answer, "half I spend on the bare necessaries of life, with a fourth I pay for the education of my children and teach them a good trade, so that when I am old they may repay me, and help me when I can no longer work. The fourth part with which I pay old debts, I give to my old parents who did so much for me and to whom I owe everything.

Exercise 6
THE WISE FOOL

There was a certain nobleman who kept a fool to whom he one day gave a staff and ordered him to keep it till he should meet with one who was a greater fool than himself. Not many years after the nobleman fell sick and was at the point of death. The fool came to him. His lordship said to him, "I must shortly leave you." "And whither are you

going?" said the fool. "Into another world," replied his lordship. "And when will you come again? Within a month?" "No" "Within a year?"—"No" "When then?" "Never" "Never!" said the fool, "and what provision hast thou made for thy entertainment there?" "None at all." "No!" said the fool, "none at all! Here, then take my staff, for with all my folly, I am not guilty of any such folly as this."

Exercise 7

DO NOT BE ALWAYS LOOKING BACK

Some of our people are always looking back to the past, always glorifying it and always seeking inspiration from it. If the past inspires to great deeds, by all means let us be inspired by it. But it does not seem me to be healthy for any person or for any nation to be always looking back. As some one has said, 'if man was meant to go back or always to look back he would have had eyes at the back of his head.' Let us know our past by all means and admire in it whatever is worthy of admiration but our eyes must always look in front and our steps must always go ahead.

Exercise 8

Discipline is very essential in every walk of life. Discipline is the soul of military life. Without discipline an army is no better than a crowd. It is the first thing needed for maintaining the harmony and concord in a family. It is equally necessary in maintaining peace and harmonious relations in a society or in a nation. Without discipline men are no better than brutes. If there is no discipline in God's creation, chaotic conditions will prevail and this universe would come to topsy turvydom in no time.

'Learn to obey if you wish to command' thus goes the proverb, there is much truth in this proverb. 'Child is father of the man,' so says Wordsworth. Childhood is the part of a man's life when it can easily be moulded. If a student forms disciplined habits in his school career, it will have a good effect upon his future life. May a career have been marred for want of discipline learnt at early stage.

(Delhi, Higher Secondary Examination 1948)

There are boys, however, on whom the education and independence of today are having a deeper effect. The intellectual qualities

and sympathies of such boys, being largely developed, welcome the freedom that they enjoy. This they do, not from the standpoint of amusement or pleasure, but from the prospect it opens up to them of a wider and deeper life, in which their mental powers may probably he more impatient of old fashioned opinions and restraints than were those of a former generation.

(D. H. S. E. 1949)

Exercise 9

Although King Charming did not know the way to Magilla's Castle, he had only to tell his frogs to take him there and he arrived in a very short time ; for these wonderful creatures knew the whole map of the world, and could go straight to any place that they were told of.

The castle was lit up so brightly with hundreds of lamps, that King Charming would have found out his mistake at once, if the princess Amabel had not covered her face with a thick veil. Having asked to see her god-mother alone, Amabel told the fairy how she had managed to deceive King Charming, and begged her, at the same time, to help her to make her peace with him. (D. H. S. E. 1950)

Exercise 10

The highest place is not the least dangerous. A French general was once conducting his army through a very difficult pass in a range of high mountains. He exhorted his soldiers to bear patiently the fatigue of the march. "It is easy to talk," muttered one of the soldiers near him to his companions; "you are mounted on a fire-horse, but we poor wretches, have to tramp on foot." The general overheard the remark, and insisted on the discontent soldier taking his place, but scarcely had he mounted when a shot from the mountain side struck and killed him. "You see," said the general calling to his troops, "that the highest place is not the least dangerous." After this he remounted his horse and continued the march.

Exercise 11

After many months, one day, the King was holding his court. Narada Muni was seated by his side. A courtier announced, "Princess Savitri has come and is presently coming to see Your Majesty." Every body's face lit up with joy on hearing the news. As she entered the court room, King Aswapati rose to receive her. Savitri bent her head forward and with

folded hands saluted her father and the Muni. They gave their blessings in return and offered her a seat by their side.

(B. A. Panjab University 1950).

चतुर्थ खंड
(भाषण-शक्ति का विकास)

१. वाद-विवाद
२. वक्तृता

वाद-विवाद

आवश्यकता :—प्रजातन्त्रात्मक राज्य प्रणाली के अनुसार संचालित गणतन्त्र राज्यों की सब प्रकार की परिषदों तथा संस्थाओं में किसी भी बात का निर्णय या प्रस्ताव का पास होना बहुसंख्यक सदस्यों के अपनी ओर आकर्षित करने पर निर्भर है। इस लिये प्रत्येक को मनवाने या प्रस्ताव पास करवाने के लिये बहुपक्ष बनाना पड़ता है। इसके लिये प्रत्येक दल विवादास्पद विषय पर ऐसे ढंग से प्रकाश डालता है कि दूसरे पक्ष के विचारों का खंडन और अपनों का मंडन हो। इस खंडन मंडन की प्रक्रिया के द्वारा किसी निर्णय तक पहुँचना या बहुमत से अपना निर्णय तर्क वितर्क द्वारा मनवाना ही वाद-विवाद है। जीवन के सभी उच्च क्षेत्रों में इस वाद-विवाद कला में निपुण होने की आवश्यकता है। इस लिये पहिले से ही इसमें निपुणता प्राप्त कराने के लिये अच्छे विद्यालयों में वाद-विवाद प्रतियोगिता या भाषण प्रतियोगिता के अभ्यास के लिये परिषदों या डिबेटिंग क्लबें बनी होती हैं। वाद-विवाद के कुछ नियम-विशेष होते हैं जिनका पालन करना आवश्यक होता है।

१. प्रस्ताव :—वाद-विवाद का विषय प्रस्ताव के रूप में उपस्थित किया जाता है। उदाहरणार्थ यदि 'हिन्दू कोड बिल' पर बाद-विवाद होना है तो उसको निम्नलिखित रूप से रक्खा जाएगा :—

"इस सभा की सम्मति में 'हिन्दू कोड बिल' हिन्दू-संस्कृति, सभ्यता और सम्मिलित-परिवार प्रथा के मूल में एक कुठाराघात है जो पास होने पर इन को तहस नहस किये बिना नहीं रहेगा। इस लिये किसी भी अवस्था में इसका पास होना हिन्दू जाति के हित में नहीं हो सकता।"

प्रस्तावक :—इसका काम प्रस्ताव रखना है। वह इसे सभा के सामने पढ़ कर सुनाता है और युक्तियों द्वारा इसकी पुष्टि करता है। प्रस्तावक के लिये यह आवश्यक नहीं कि विरोधी दल की युक्तियों की पूर्व कल्पना कर उनका खण्डन करता चले। उसे अपनी साधक युक्तियों तक ही सीमित रहना चाहिये। अन्त में वाद-विवाद की समाप्ति पर वह विपक्षी की विरोध में दी गई सारी युक्तियों का खण्डन कर वाद-विवाद को समाप्त करता है।

विपक्षी :—का काम प्रस्तावक की प्रस्ताव के पक्ष की युक्तियों को काट कर अपने पक्ष की स्थापना करना है। परन्तु वाद-विवाद के भाषणों में उच्चकोटि की वक्तृता की अपेक्षा संक्षेप और तर्क की अधिक आवश्यकता होती है। केवल उत्तेजना से काम नहीं चलता।

४. पोषक या समर्थक :—दो प्रकार के होते हैं कुछ प्रस्ताव के पक्ष का समर्थन करते हैं और दूसरे विपक्ष का। दोनों पक्षों के समर्थकों को बारी बारी बोलना पड़ता है और यह ध्यान रखना होता है कि पहले वक्ताओं द्वारा दी गई युक्तियों की पुनरावृत्ति न होने पाए।

५. मत प्रदान :—सब पक्ष और विपक्ष के वक्ताओं के

बोल चुकने के उपरान्त सभापति 'मत' लेते हैं। प्रस्ताव के यदि सब पक्ष में मत देते हैं तो वह सर्वसमिति से पास समझा जाता है, यदि आधे से अधिक पक्ष में और कम संख्या विरोध में हो तो बहुमत से पास किया जाता है,परन्तु यदि अधिक संख्या विरोध में हो तो प्रस्ताव गिर जाता है।

६. **सभापति** :—का काम बड़ा मुख्य और उत्तरदायित्व-पूर्ण होता है। उसके सभापति का आसन ग्रहण करने पर ही वाद-विवाद प्रारम्भ होता है। वही 'विषय' और पक्ष व विपक्ष में बोलने वालों का श्रोताओं को परिचय देता है। वह निष्पक्ष जज के सामान मत गणना करके प्रस्ताव पास होने या नहीं पास होने की घोषणा करता है। अपने पक्ष से इधर उधर भटकने वाले या व्यक्तिगत आक्षेप करने वाले वक्ताओं को वही रोकता-टोकता है तथा सभा में वही अनुशासन का उत्तरदायी होता है। सारांश यह कि वाद-विवाद का संचालन सभापति को ही करना होता है।

७. **मन्त्री** :—वाद-विवाद आदि की क्लब या सभा के मन्त्री को भी सभा के आयोजन के लिये बहुत कुछ करना पड़ता है। सबसे पूर्व वह वक्ताओं का प्रबन्ध करता है और निम्न प्रकार से वाद-विवाद का नोटिस या सूचना निकालता है।

सूचना

१. ता०.....मास.....को.....समय....स्थान में '.....' विषय पर छात्रों की वादविवाद प्रतियोगिता का आयोजन किया गया है जिसके सभापति श्री.....जी होंगे। वाद विवाद में निम्नलिखित वक्ता भाग लेंगे :—

पक्ष में	विपक्ष में
१.....प्रस्तावक	१.....विपक्षी
२.....	२.....
३.....	३.....
४.....	४.....
५.....	५.....

सब विद्यार्थियों से प्रार्थना है कि वे उपस्थित होकर लाभ उठाएं आदि।

.....

तिथि-- मन्त्री

२. 'सभापति' का नाम भी उस पद के लिए उस समय मंत्री को ही प्रस्तुत करता पड़ता है जिसका कोई अन्य व्यक्ति समर्थन करता है।

३. सभासमाप्ति पर सभापति या उपस्थित व्यक्तियों का धन्यवाद भी मंत्री ही करता है।

४. उसे सारी कार्रवाई 'कार्रवाई के रजिस्टर' में लिखनी होती है और प्रधान के हस्ताक्षर करवाने पड़ते हैं।

वाद-विवाद-प्रतियोगिता के वक्ताओं को कुछ सुझाव :—

१. प्रस्तावक और विरोधी पक्ष के अगुआ को छोड़कर शेष वक्ताओं को लगभग ५-१० मिनट तक का समय मिलता है। इसलिए प्रत्येक अनुमोदक को लम्बी २ भूमिका में समययापन न करके सीधे विषय पर उतरना चाहिए और केवल नई बातें ही प्रस्ताव की पुष्टि में रखनी चाहिए। पुनरावृत्ति त्याज्य होती है।

अपनी युक्तियों को तार्किक क्रम से रखना चाहिए। अव्यविस्थत युक्तियां स्थायी प्रभाव नहीं डाल सकतीं।

३. हास्य या व्यंग्य :—वाद विवाद में हास्य या व्यंग्य का विजय प्राप्ति में महान् हाथ रहता है। यदि शिष्टता का परित्याग न कर वक्ता जनता को प्रतिवादी की बातों पर हंसाने में समर्थ हो जाता है तो उसकी विजय निश्चित सी हो जाती है। व्यंग्योक्तियां भी जनताका मनोरंजन करती हैं और प्रतिवादी की युक्तियां उसके सामने विस्मृतप्राय सी हो जाती हैं।

४. औपसंहारिक वेग :—अपनी वक्तृता का उपसंहार करते हुए प्रमुख बात पर जोर देना चाहिए ताकि वह स्थायी अन्तिम प्रभाव डाल सके। पहिले की युक्तियां विस्मृत हो सकती है परन्तु अन्तिम दृढ़ तथा नई युक्ति सदा स्मरण रहती हैं।

५. प्रतिवादी के साथ व्यवहार :—प्रतिवादी पर कभी भी व्यक्तिगत आक्षेप नहीं करना चाहिए। उसको आदर व प्रेम सूचक 'मेरे सुयोग्य वक्ता, मित्र, या साथी' आदि शब्दों द्वारा व्यवहृत करना चाहिए।

६. संकेत :—वक्ता को न ही तो स्टेज पर मूर्तिवत् स्तब्ध ही रहकर वक्तृता देनी चाहिए और न ही इतने अधिक संकेत ही करने चाहिएं कि भद्दे दीखने लगे। प्रत्युत जहाँ जहाँ वेग देने या भावों को स्पष्ट करने के लिए अंगुली, सिर हिलाने, भौएं चढ़ाने, मेज ठोकने आदि की आवश्यकता जान पड़े वहां इनका यथावत् प्रयोग करना ही चाहिए। मुखाकार से भी भावप्रकाशन में सहायता मिलती है। बोलते समय प्रारम्भ में सभापति तथा श्रोतागण को अवश्य सम्बोधित करना चाहिए। मुख व दृष्टि एक ही तरफ नहीं रहनी चाहिए वरन् सारे श्रोताओं की ओर क्रमशः देखते रहना चाहिए। प्रधान की तरफ पीठ नहीं

रहनी चाहिए।

७. तार्किक युक्तियों के संगृहीत करने का उपाय :—

पक्ष और विपक्ष में बोलने वाले दोनों प्रकार के वक्ताओं को अपने पक्ष की युक्तियां जुटाते समय परपक्ष की युक्तियों पर भी विचार कर लेना चाहिए। इसलिए पक्ष विपक्ष वालों को

क्रमशः १ पक्ष २ विपक्ष

१ विपक्ष २ पक्ष

का ढांचा बनाकर युक्ति प्रत्युक्तियों पर विचार करना चाहिए ताकि वहां अकस्मात् ही कोई ऐसी प्रत्युक्ति न आन पड़े जिसमें निरुत्तर होना पड़े।

अभ्यास

१. इस सभा की सम्मति में भारत के प्रत्येक भाग पर 'मद्यनिषेध' कानून लागू कर देना चाहिए।

पक्ष	विपक्ष
१. अब भारत स्वतन्त्र है। स्वतन्त्र देश की सरकार को वहां की जाति के सुधार लिए प्रत्येक प्रयत्न करना चाहिए। मद्य एक ऐसा रोग है जिसने सामान्यता सभी प्रान्तों और विशेषतया बड़े बड़े प्रान्तों के बड़े नगरों तथा पंजाब के जाटों और अन्य छोटी बड़ी जातियों में घर कर रखा है।	१. भारतवर्ष अब स्वतन्त्र देश है। स्वतन्त्र देश के नागरिकों को व्यक्तिगत स्वतन्त्रता मिलनी ही चाहिए। जब पराधीनता की अवस्था में भी मद्य का अधिकार प्राप्त था तब स्वतन्त्र देश में तो वह छिनना ही नहीं चाहिए। प्रसन्नता प्राप्ति और शोक भुलाने के लिए ही इसको पीते हैं। जिन जाटों आदि में

इसका प्रचार है वे हृष्ट पुष्ट पाए जाते हैं। इसके निषेध से देश में से खुशी ही जाती रहेगी।

२. मद्य की मादकता से प्राप्त खुशी खुशी नहीं वरन् खुशी का आभासमात्र है। हां अपने आपको भुलाने की यह अमोघ औषधि है, परन्तु उस आत्म-भुलावे के काल में मद्यपायी की जो गलियों और नालियों में गिर या पिट कर दशा होती है वह बाद में स्मरण आ आकर मन को जलाती रहती है। लोगों में अपमान होता है। क्षणिक शोक को भुलाने के लिए जो इसका सेवन करते हैं, वे तो बदले में स्थायी शोक और पश्चात्ताप के शिकार बनते हैं। स्वास्थ्य और आयु की जड़ तो मद्य फूल के कीड़े के समान काट देता है। अनेक घर इसकी चाट से दीवालिए होते देखे गए। धनाढ्य घरों से

२. मद्य सेवन से यदि आह्लाद न मिलता होता तो लोग इसके आदी ही क्यों बनते? यदि मद्य सेवन से कुछ गृहस्थ दीवालिए हो जाते हैं तो मद्य-निषेध के कानून को लागू कर कुछ प्रान्तों की सरकारें और केन्द्रीय सरकार दीवालिया हो जाएगी। मद्य की कर आदि की आय कई करोड़ है। मदिरालयों के ठेकेदारों, मजदूरों तथा मदिरा के कारखानों में कार्य करने वाले श्रमजीवियों की बहुत बड़ी संख्या की आजीविका इसी पर निर्भर है। इसका प्रयोग अधिकतया धनी मानी ही करते हैं इसलिए साधारण व्यक्तियों के घर इससे दीवालिया नहीं हो सकते। अपवाद तो सभी के सम्भव हैं।

संपन्नता सहसा नौ दो ग्यारह हो गई। घर में कलह और क्लेश उत्पन्न हो गए। जो मदिरापायी स्वस्थ दृष्टिगोचर होते हैं, उनके स्वास्थ्य का कारण मद्य नहीं वरन् उत्तम जलवायु है। रोहतक के मद्य न पीने वाले जाटों से उनकी तुलना कर लीजिए तो अधिक स्वस्थ मद्य से दूर रहने वाले ही मिलेंगे।

अंग्रेज़ आदि सम्पन्न पश्चिम देश की जातियां इसका नियमित रूप से सेवन करती हैं। इसलिए वे इससे स्वास्थ्य प्रसन्नता और दीर्घायु तीनों का लाभ करते हैं।

३. निस्सन्देह कुछ बम्बई आदि प्रान्तीय सरकारों की बड़ी भारी आय मद्य द्वारा प्राप्त करों से होती है। परन्तु देखना तो यह है कि क्या सरकार की आय को बढ़ाने के लिए जाति के स्वास्थ्य, सम्पन्नता और चरित्रनिर्माण का ध्यान न रखा जाय? धनवान ही मद्य-सेवन करते हैं यह ठीक नहीं। धोबी, भंगी आदि निम्नतम कोटि के व्यक्तियों में इसका इतना प्रचार है कि कुछ पूछो ही मत। सारी खून

३. निस्सन्देह भारत के निम्न श्रेणी के लोग भी इसके आदी हो कर धन और शक्ति का नाश करते हैं, परन्तु इसका कारण 'मद्य' नहीं वरन् उसका 'अति' प्रयोग। अति तो सभी कामों में हानिकारक हुआ करती है। परन्तु यदि अपनी नेक कमाई से खरीद कर वे कभी पी भी लें तो हमें ईर्ष्या नहीं करनी चाहिए क्योंकि जीवन में भोगों का अधिकार तो सभी का तुल्य है। यदि उन्हें इससे वञ्चित

की कमाई मद्य की घूंटों पर ही अपव्यय होती है। बच्चे बीबी बेसुध ही अर्धनग्न और हीन-पुष्ट रह जाते हैं। शिक्षा-दीक्षा का तो प्रश्न ही नहीं उठता। इन जातियों में मद्यसेवन में सीमा भी नहीं रहती। सारी रात अड़ोस-पड़ोस वाले अण्ट-शण्ट शराबी के गाली-गलौज तथा मारपिटाई से तंग आ जाते हैं। रिश्वत-खोर तथा मदिरा-व्यसनी पुलिस वाले भी जब अपनी ड्यूटी पर इसका पान करके जाते हैं तो क्या आशा हो सकती है कि वे अपने कर्तव्य का पालन सुचारु रूप से कर पाएंगे? इसलिए यह व्यसन सम्पन्नों को विपन्न और मध्य श्रेणी और निम्न श्रेणी के व्यक्तियों को आर्थिक दृष्टि से मिट्टी में मिलाने वाला सिद्ध हुआ है।

४. कोई भी वस्तु मूल्य बढ़ाने से बन्द नहीं हो जाती। युद्धकाल में भ्रष्टाचारियों ने करना ही है तो इसका मूल्य इतना बढ़ा दिया जाय कि निम्नकोटि के लोग खरीद ही न सकें। धनाढ्य ही खरीदा करें। सरकार की भी आय होती रहेगी और निम्नश्रेणी के लोग भी इसका अतिप्रयोग न कर सकेंगे। रहा चरित्र का प्रश्न। चरित्र के नियम तो समाज बनाता है परमात्मा नहीं। यदि मदिरा को निषिद्ध न माना जाय तो इसका पान करने वाला भी घृणा से नहीं देखा जायगा।

४. मद्य-सेवन के साथ सारी बुराइयां आ जाती हैं यह तो असंगत सी बात है।

चीनी जितनी महंगी बेची उतनी ही अधिक लोगों ने खरीदी। यही दशा शेष वस्तुओं को है। करों से मदिरा के महंगे हो जाने पर भी निम्नश्रेणी के लोगों ने घी, दूध, तथा शाग भाजी त्याग दिए या कम कर दिए पर यह व्यसन न त्यागा। दूसरे सदा से ही हमारे बुद्धिमान पूर्व-पुरखाओं ने इसका धार्मिक दृष्टि से घोर विरोध किया है। मदिरापायी का चरित्र ऊंचा हो इसकी आशा ही नहीं की जा सकती। मद्य के व्यसन के साथ ही अन्यान्य दुराचार आते हैं। इसलिए सरकार को चाहिए कि 'मद्यनिषेध' कानून बिना किसी भेदभाव के सारे देश पर लागू कर दे।

इस प्रकार तो दूध के साथ भी सारी बुराइयां आ जाती हैं क्योंकि दूध पीने से बल बढ़ता है बल से डाकू डाके डालता है। इसलिए दूध भी निषिद्ध हो जाना चाहिए। रहा आर्यों के सदा से मद्य-निषेध करने का प्रश्न सो सोम-पान मद्य-पान ही के समान था। इसलिए सरकार को ऐसा कोई नियम नहीं बनाना चाहिए जिससे व्यर्थ ही व्यक्तिगत अधिकार छिन जाय।

वाद विवाद की भाषा-शैली तथा प्रतिवादी के व्यवहार व व्यंग्योक्ति आदि समझने के लिए धारा सभा में हिन्दू कोड बिल पर हुए सदस्यों के भाषणों के आंशिक उद्धरण देखिए:—

"मैं चाहता हूँ मेरे भाषण को गम्भीर रूप में लिया जाय। भारत की जनता में एक राष्ट्र के नाते हास्यवृत्ति की कमी है,

तथा वह हास्य में निहित गम्भीर उद्देश्य को समझने में असमर्थ है। मैं बता देना चाहता हूँ कि मैं इस बिल का हार्दिक समर्थन करता हूँ तथा मेरा यह समर्थन सुदृढ़ कारणों और भारतीय महिलाओं की परम्परा तथा चरित्र के आधार पर है। देश के इतिहास में हिन्दू महिलाओं ने एक महान भाग लिया है। जब भारत पर आक्रमण के बाद आक्रमण हुए तब हिन्दू महिलाओं ने दृढ़ होकर अपने परिवारों को सम्भाला, तथा अपने धर्म, परम्परा और संस्कृति को उन्नत रखा। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने भारतीय महिलाओं को ताली के रूप में प्राप्त इस शक्ति की सराहना की। परन्तु मुझे खेद है कि बंगाल से एक सदस्य महोदय ने बंगाल की विधवाओं की दशा जाने बगैर इस बिल का प्रबल बिरोध किया है। मेरा विश्वास है कि यदि महिलाओं को वह सब कुछ मिल जाता है, जो वह चाहती हैं तो अपने पतियों के प्रति उनकी भक्ति में कोई कमी नहीं आएगी। मेरी पत्नी को आधुनिक माना जा सकता है, तथा वह सार्वजनिक जीवन में पूर्ण भाग लेती है। परन्तु वह घर में उतनी ही अच्छी पत्नी है जितनी कि कोई भी पुराने ढंग की महिला हो सकती है।

मैं उस जाति का सदस्य हूं जिसमें कोई संयुक्त परिवार नहीं होता, तथा जिसमें महिलाओं को शिक्षा दी जाती है, तथा उन्हें आधुनिक माना जा सकता है। परन्तु अपने घरों से उनके मोह में कोई कमी नहीं होती। यह कहा गया है कि यदि यदि महिलाओं को उत्तराधिकार दे दिया जाय तो भाई बहिनों के बीच स्नेह कम हो जायगा। मैं नहीं समझता कि हमारी बहिनों का स्नेह इतना ओछा हो सकता है। जब सिन्धियों को हाल में सिन्ध से निष्क्रमण करना पड़ा

तब इस चीज का प्रमाण हमें मिला। हिन्दू धर्म का गौरव यह रहा है कि वह परिवर्तिन स्थिति के अनुकूल सदा बदलता रहा है। यदि भारत में विदेशी शासन न होता तो इस समय भी हमारा यह धर्म बदलता हुआ होता। मेरा विश्वास है कि इस बिल को किसी न किसी रूप में समिति के सम्मुख रखा जाय। इस में तब कोई शिकायत नहीं रहेगी। इससे हिन्दू पारिवारिक जीवन अस्त व्यस्त नहीं होगा। भारतीय महिलाएं अपने गृहस्थ तथा राष्ट्र के प्रति भक्त रहेंगी।"

—आचार्य कृपलानी

"मैं बिल का पूर्ण समर्थक हूँ और मैं चाहता हूँ कि ऐसे कार्य में देरी नहीं होनी चाहिये। यह बिल विधान का ही स्वरूप है। बिल में ऐसी कोई बात नहीं, जिससे पतिपत्नी धार्मिक विवाह के आदर्शों का पालन न करें। यह अच्छा होगा तलाक सादा व कम खर्चीला हो। उत्तराधिकारों के बारे में मेरा विचार है कि इस देश में १ प्रतिशत व्यक्ति ही ऐसा होगा जो विरासत में कुछ छोड़ता हो। मुझे उस दिन की लालसा है, जब कि सम्पत्ति नाम की वस्तु ही लोगों के दिमाग से हट जाएगी।"

प्रो० के० टी० शाह।

"इस बिल से पारिवारिक जावन में प्रेम व सहानुभूति समाप्त हो जाएगी तथा स्त्रियों की बाल हत्या होने लगेगी व बच्चों की शिक्षा खत्म हो जायगी। अब तक हिन्दू कानून व रीति-रिवाज सिक्खों पर लागू होता रहा है, मैं चाहता हूँ कि यह लागू होता रहे—यह कोड नहीं। गाँव वाले रीति-रिवाज समझ सकते हैं, इस बिल को नहीं। परन्तु कुछ वर्षों से हमारे यहाँ ऐसी प्रथा

चल पड़ी है, जिसके अनुसार वरवधू 'ग्रन्थ साहब' के सामने शपथ ग्रहण करते हैं तथा चार चक्कर लगाते हैं, उन्हें विवाहित घोषित कर दिया जाता है। सपिंड शादियों का विचार ऐसी शादियों में नहीं किया जाता है। १६०६ में स्वीकृत हुए बिल के अनुसार यह लागू कर दिया गया है। सरदार लोग इस बिल को सहन नहीं कर सकेंगे।

पंजाब में गोद लेने के कोई नियम व धर्म में कोई सम्बन्ध नहीं है। आयु के सम्बन्ध में भी कोई पाबन्दी नहीं है। एक नवयुवक एक वृद्ध व्यक्ति को सपरिवार गोद ले सकता है। लड़का उसकी मदद करता है और मृत्यु के पश्चात् सम्पत्ति का हकदार बन जाता है।"

सरदार हुक्मसिंह (पूर्वी पंजाब

"यह बिल में जल्दी व पूरे दिल से नहीं बनाया गया है। हाँ, मैं पुत्री के अधिकार से सम्बन्धित सिद्धान्त का स्वागत करता है। हम ब्रिटिश काल की अदालतों की इस देन, कि स्त्रियों को विशेष प्रकार की सम्पत्ति का अधिकार नहीं जा सकता, तिरस्कार करेंगे और ऐसा नहीं होने देंगे। यह मौलिक कानून के बिलकुल विरुद्ध है।

परन्तु साथ ही मैं दावा करता हूँ कि बिल पूरा नहीं है, कटा फटा है, इससे स्त्रियों को कम लाभ पहुँचेगा, परन्तु हिन्दू समाज को अधिकतम हानि पहुँचेगी (करतल ध्वनि)। बिल का यह नियम भी है कि स्त्रियों के लिये उत्तराधिकार या दायभाग का अधिकार कृषि भूमि पर लागू नहीं होगा, जब कि हिन्दुओं की ६० प्रतिशत सम्पत्ति में से भी अधिक भाग नहीं ले सकेंगी, जो घरों या मकानों आदि में आती है। अतएव बिल स्त्रियों को

लाभ पहुँचाए बिना हिन्दू पारिवारिक जीवन में काफी रद्दोबदल कर देगा।

देशमुख कानून में ही संशोधन करके स्त्रियों के लाभार्थ कानून बनाया जा सकता है। वह अपने पति की सम्पत्ति की भागीदार बन जायगी और उसे पूर्ण अधिकार प्राप्त होंगे। 'एक बार एक विवाह' सिद्धान्त का उन्होंने काफी समर्थन किया और कहा कि मैं इसका स्वागत करता हूँ।

"उड़ीसा में यदि एक मनुष्य एक ही स्त्री रखे तो शेष का क्या हो ? (जोरों की हंसी) 'लक्ष्मीनारायण साहू' "

तलाक से सम्बन्धित नियम पास करना एक बड़ी भारी भूल होगी। इससे धार्मिक विवाह-प्रथा का एकदम अन्त हो जाता है। जहां तक सिविल विवाह का सम्बन्ध है यह कानून ज्यों का त्यों रखा जा सकता है। धार्मिक विवाह के सम्बन्ध में इसे लागू करना बिल्कुल बेवकूफी है। विवाह तथा तलाक सम्बन्धी अध्याय को बिल्कुल बदलना पड़ेगा।"

बक्शी टेकचन्द

अभ्यास

निम्नलिखित विषयों को प्रस्ताव के रूप से उपस्थित करो तथा उस पर पक्ष व विपक्ष की युक्तियां व प्रत्युक्तियां दो :—

(१) फाँसी का दण्ड (रहना चाहिए या नहीं ?)
(२) अविवाहितों पर कर (लगना चाहिए या नहीं ?)
(३) आत्मघात का अधिकार (होना चाहिए या नहीं ?)
(४) प्रजातन्त्र शासन प्रणाली
(५) साम्यवाद

(६) एकाधिपत्य शासन (Dictatorship)
(७) अनिवार्य सैनिक शिक्षा।
(८) प्राचीन व अर्वाचीन संस्कृति।
(९) स्त्रियों का मताधिकार।
(१०) अहिंसा।
(११) धर्म-प्रचार का अधिकार रहना चाहिए या नहीं।
(१२) निःशुल्क शिक्षा।
(१३) विचार स्वातन्त्र्य।
(१४) अन्तर्राष्ट्रीयता अच्छी है या राष्ट्रीयता।
(१५) शस्त्रीकरण या निःशस्त्रीकरण।
(१६) विश्व का एक न्यायालय।

वक्तृता

भाषण-शक्ति :—एक महान वरदान है। हिटलर, मुसोलिनी, चर्चिल, लाला लाजपत राय, सी० आर० दास, महामना मालवीय आदियों की ख्याति भाषण शक्ति पर ही अधिकतया निर्भर है।

तैयारी :—वक्ता को पहिले ही विषय पर भली भान्ति विचार कर लेना चाहिए। किन बातों पर अधिक जोर देना है, किन को संक्षिप्त रूप से कहना है तथा किन बातों को प्रमाणों द्वारा पुष्ट तथा दृष्टान्तों व उदाहरणों से स्पष्ट करना है इत्यादि बातें पहिले ही सोच लेने की हैं। मुख्य बातों या शीर्षकों का तार्किक क्रमबद्ध ढांचा भी पहिले ही विचार लेना चाहिए। अपने विषय से सम्बन्धित पुस्तकें या पत्र पत्रिका आदि यदि

सुप्राप्य हों तो अवश्य पढ़ने, व उन विषयों से सम्बन्धित बातों को नोट कर लेना चाहिए। सारांश यह है कि जितनी ही अधिक तैयारी होगी उतनी ही अच्छी वक्तृता होगी।

भाषणक्रिया :—(१) में न ही भद्दे संकेतों की अधिकता प्रशस्त मानी जाती और न ही मूर्तिवत् स्तब्धता।

(२) ध्वनि भी इतनी होनी चाहिए कि सबको सुनाई दे। परन्तु चिल्ला चिल्ला कर या मेज ठोक ठोक कर भाषण देना प्रभाव को गिरा देता है। शब्दों को इतना पृथक् पृथक् करके तथा स्पष्ट रूप से कहना चाहिए कि अक्षर अक्षर श्रोता लोग सुन व समझ सकें। जहां प्रसंगानुसार वेग की आवश्यकता हो वहां ध्वनि ऊंची और जहां करुणा आदि का प्रसंग हो वहां धीमी कर देनी चाहिए। भावानुसार मुखविकार व ध्वनि का उतार चढ़ाव स्वाभाविक और प्रभावोत्पादक सिद्ध होता है।

(३) सभी प्रकार के पुरुष, स्त्री व बाल श्रोताओं को सम्बोधित करना चाहिए तथा सभी की ओर बीच २ में मुख व दृष्टि करके भाषण देना चाहिए।

(४) भाषण में श्रोताओं की समझ बूझ व पहुंच के अनुसार भाषा और विचारों का स्तर रखना चाहिए। पाण्डित्य प्रदर्शन सदा चिढ़ाने वाला सिद्ध होता है।

(५) पुनरावृत्ति त्याज्य है।

(६) *परिमाण* :—वक्तृता इतनी लम्बी होनी चाहिए कि लोग ऊब न जाएं और वर्ण्य विषय स्पष्ट हो पाए। गम्भीर बातों को भी अधिक से अधिक रुचिकर ढंग से रखना आवश्यक होता है।

(७) *भाषा*—सरल, रुचिकर तथा व्यंग्यपूर्ण ही प्रशस्त समझी

अनुसार शासित होना है उसको उसकी रूपरेखा और हानि लाभ आदि का कुछ बोध होना ही चाहिए।

लगभग तीन वर्ष के कठिन परिश्रम के उपरान्त भारतीय विधान परिषद् ने २६ नवम्बर १९४९ को भारतीय जनतन्त्र का विधान बनाने का कठिन कार्य पूरा किया। इस विधान की रूप रेखा बनाने वाली समिति के प्रधान डा० बी० आर० अम्बेदकर थे। इस पर सविधान परिषद् में ११४ दिनों तक वाद-विवाद होते रहे। इस विधान को तैयार करने में ६४ लाख रुपये व्यय हुए। इसकी ३९५ धाराएं है और ८ परिशिष्ट हैं।

इस विधान द्वारा भारत एक सर्वाधिकारपूर्ण प्रजातन्त्रात्मक जनतन्त्र घोषित किया गया है। उसकी प्रस्तावना में स्पष्ट कर दिया गया है कि सम्पूर्ण प्रभुता भारत की जनता से उत्पन्न होती है। न्याय, स्वतन्त्रता, समानता तथा भ्रातृत्व जैसी प्रजा-सत्तात्मक शासन प्रणाली की मुख्य विशेषताएं, विधान की प्रस्तावना में, उसके मुख्य उद्देश्यों के रूप में रखी गई हैं। विधान का स्वरूप जनतन्त्रात्मक है क्योंकि भारत का प्रधान अधिशासक कोई पैत्रिक राजा न होगा।

इसका ढांचा मूलतः संघीय है। उसके द्वारा संघ सरकार (केन्द्र) और राज्यों (प्रान्तों) की दो प्रकार की व्यवस्था की गई है। अपने-अपने क्षेत्रों में दोनों को पूर्ण अधिकार दिया गया है। किसी भी राज्य को संघ से पृथक् होने या अपना विधान स्वयं बनाने का अधिकार नहीं दिया गया है। इससे संघ अविच्छिन बना रहेगा। इस संघ में २८ राज्य और अंदमान व निकोबार द्वीपों के प्रदेश हैं।

मूल अधिकारः—इस विधान के अनुसार भारतवासी

के निम्नलिखित मूलाधिकार घोषित किए गए हैं—

(१) समानता का अधिकार (२) स्वतन्त्रता का अधिकार (३) शोषण के विरोध का अधिकार (४) धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार (५) सांस्कृतिक तथा शिक्षा सम्बन्धी अधिकार (६) साम्पत्तिक अधिकार (७) वैधानिक प्रतिविधानों का अधिकार।

१७वीं धारा द्वारा अस्पृश्यता दूर कर दी गई है। और उसको मानना अपराध माना गया है। २१वीं धारा द्वारा व्यक्तिगत स्वाधीनता की रक्षा की व्यवस्था की गई है।

वोट:—प्रत्येक वयस्क (Adult) को मत (Vote) देने का अधिकार है।

राष्ट्रपति:—भारत संघ का उच्चतम अधिकारी राष्ट्रपति या प्रधान होगा। उसका निर्वाचन प्रति ५वें वर्ष होगा। केन्द्र की दोनों परिषदों तथा राज्यों की विधायिका सभाओं के सदस्य उसका निर्वाचन करेंगे। विधान का उल्लंघन करने के अपराध में राष्ट्रपति को उसके पद से पृथक् किया जा सकेगा।

उपराष्ट्रपति:—केन्द्रीय व्यवस्थापक मण्डल के सदस्य आनुपातिक प्रतिनिधित्व की प्रणाली के अनुसार उपराष्ट्रपति का निर्वाचन करेंगे। अवधि वही ५ वर्ष होगी। राष्ट्रपति की अस्थायी अनुपस्थिति में उपराष्ट्रपति ही उसका कार्यभार संभालेंगे।

मन्त्री-परिषद्:—राष्ट्रपति की सहायता और परामर्श के लिए एक मन्त्रि-परिषद् होगी जो सामूहिक रूप से लोकसभा (निम्न-सभा) के प्रति उत्तरदायी होगी।

लोकमण्डल:—संघ का एक लोक-मण्डल (पार्लियामेंट)

होगा, जिसमें राष्ट्रपति और दो सभाएं होंगी। एक राज्यपरिषद् और दूसरी 'लोक-सभा' कहलाएगी। राज्यपरिषद् की अधिकतम सदस्य संख्या २५० होगी उनमें से १२ सदस्य राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत होंगे। शेष राज्यों के प्रतिनिधि होंगे। राज्यपरिषद् स्थायी संस्था है, जो भंग नहीं हो सकेगी, परन्तु तिहाई संख्या प्रति दूसरे वर्ष अवकाश ग्रहण करेगी। लोकसभा के सदस्य ५०० के लगभग होंगे। ये राज्यों के वयस्क मतदाताओं से निर्वाचित किए जाएंगे। ७,५०,००० व्यक्ति पीछे एक से कम और प्रत्येक ५,००,००० व्यक्ति पीछे एक से अधिक सदस्य नहीं होगा। इस सभा का कार्य काल वही ५ वर्ष नियत है।

चुनाव:—लोकसभा और राज्यों की व्यवस्थापिका सभाओं के लिए सदस्यों का निर्वाचन वयस्क मताधिकार के आधार पर होगा।

राज्य :—देशी राज्यों (प्रान्तों या रियासतों) की शासन व्यवस्था ठीक केन्द्र के समान हो होगी। इनमें भी शासन प्रबन्ध की लोकतन्त्रीय-पद्धति का अवलम्बन किया जाएगा। प्रत्येक राज्य में एक व्यवस्थापक मण्डल होगा। उसमें एक गवर्नर या राजप्रमुख होगा। किसी राज्य में व्यवस्थापिका सभा और व्यवस्थापिका परिषद् दोनों होंगी और किसी में व्यवस्थापिका सभा ही। राज्य की व्यवस्थापिका सभा में ५०० से अधिक और ६० से कम सदस्य नहीं होंगे।

पिछड़ी हुई जातियों के लिये सुरक्षा :— राज्यों की दोनों सभाओं में परिगणित जातियों, परिगणित कबीलों, आंग्ल-भारतीयों तथा अन्यान्य पिछड़ी हुई जातियों के हित की रक्षा

को दृष्टि में रख कर दस वर्ष पर्यन्त इनके लिये कुछ स्थान नियत किये गए हैं।

राज-भाषा :—'भारत संघ' की राजभाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी स्वीकार की गई। राज्यों को स्वतन्त्रता दी गई है कि वे अपने यहाँ चाहे हिन्दी को राजभाषा स्वीकार करें या अपनी प्रान्तीय भाषा या दोनों को। परन्तु अभी १५ वर्ष तक सर्वोच्च न्यायालयों में तथा कुछ एक अन्य विभागों में अंग्रेज़ी ही राजभाषा रहेगी। धीरे २ हिन्दी उसका स्थान लेती जाएगी और १५ वर्ष में हिन्दी का एकछत्र राज्य हो जाएगा।

संकटकालीन अधिकार :—देश पर जब कभी कोई आन्तरिक या बाह्य संकट आए तो राष्ट्रपति सकटकालीन स्थिति घोषित कर सकता है। परन्तु दो मास के अन्दर-अन्दर दोनों सभाओं से स्वीकृति ग्रहण करना आवश्यक है।

विधान में संशोधन :—यदि विधान में किसी अंश को संशोधन करने की आवश्यकता समझी जाएगी तो दोनों सभाओं के सदस्यों की कुल संख्या का अधिकांश या उपस्थित सदस्यों की संख्या का दो तिहाई भाग अपने मत से संशोधन कर सकेगा।

समालोचनाएं :—समाजवादी और साम्यवादी आलोचकों ने इसकी कटु आलोचनाएं की हैं। इस संविधान में आर्थिक व्यवस्था का उल्लेख नहीं किया गया। इसके अनुसार न देश समाजवादी ही बन सकता और न साम्यवादी ही। पूंजीपतियों को ही इससे बल प्राप्त हुआ है। अनुदार विचारों वाले लोग इसे पश्चिमीय संस्कृति का ही पोषक बताते हैं।

अमेरिका और इंगलैंड के संविधानों का अन्धानुकरण मान कर वे नाक भौंएं सिकोड़ते हैं।

मेरी सम्मति में सर्वथा सबकी इच्छा के अनुकूल संविधान का निर्माण तो असम्भव ही है परन्तु जहाँ तक बहुसंख्या के अधिकतम हित का सम्बद्ध है वहाँ तक यह संविधान सब प्रकार से सराहनीय है। उन्नति में बाधक रूढ़ियों की जड़ इसने काट दी है। समाज से कुचले हुए अछूतों और स्त्रियों का महान् उद्धार किया है। साम्प्रदायिकता को आगे के लिये निर्वासित सा कर दिया है। साथ ही यदि इसका कोई अंश कभी अनावश्यक जान पड़े तो बहुमत से संशोधित किया जा सकता है। इस लिये एकमत होकर भारत वासियों को इसे सहर्ष स्वीकार करके इसका पालन करना चाहिये। निकट भविष्य में इसका सुफल अवश्य ही हमारे लिये कल्याणकारी होगा ऐसी मेरी दृढ़ धारणा है।

अभ्यास

(१) धर्म और सम्प्रदाय।
(२) विश्व की शासनप्रणालियां।
(३) प्रगतिवाद।
(४) हिन्दी-गद्य का विकास।
(५) हिन्दी-पद्य का विकास।
(६) भारतीय स्वतन्त्रता का इतिहास।
(७) अहिंसा।
(८) रस।
(९) साम्प्रदायिकता।

(१०) भारत-विभाजन के परिणाम।
(११) साहित्य द्वारा मनुष्य-सेवा।
(१२) मानवधर्म।
(१३) क्या भारतभूमि के लिए मार्क्सवाद अनुकूल है?
(१४) गान्धीवाद।
(१५) विद्यार्थी और राजनीति।
(१६) हिन्दी गद्य की विविध प्रवृत्तियां।

❀ शमिति ❀